

भूलाभाई देसाई

आधुनिक भारत के निर्माता

भूलाभाई देसाई

लेखक
एम० सी० सीतलवाड

अनुवादक
मुकुट बिहारी वर्मा

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

माघ 1894 ● जनवरी 1973

मूल्य 5 00

निदेशक प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार पटियाला हाउस, नई दिल्ली 1 द्वारा प्रकाशित ।

क्षेत्रीय कार्यालय
बाटावाला चेम्बर्स, सर फीरोजशाह मेहता रोड, बम्बई 1
8, एसप्लनेड ईस्ट कलकत्ता 1
शास्त्री भवन 35 हड्डोस रोड, मद्रास 6

इण्डियन आर्ट प्रेस, कैलाश कालोनी मार्केट नई दिल्ली द्वारा मुद्रित ।

भूलाभाई की पत्नी

इच्छाबेन की

पुण्य स्मृति में

समर्पित

प्रस्तुत पुस्तक माला

इस ग्र थमाला का उद्देश्य भारत के उन स्वनामधन्य पुत्रो और पुत्रियो का जावनगाथा को प्रकाश मे लाना है, जि होने हमारे राष्ट्रीय जागरण अभियान तथा स्वाधीनता सग्राम म प्रमुख भाग लिया।

यह खेद की बात है कि कुछ अपवादो को छोडकर सामा यत इन महा पुरुषो और असाधारण देवियो की प्रामाणिक जीवनिया उपलब्ध नही है। पर तु इनक विषय म वतमान और आनवाली पीढियो को कुछ जानकारी होना आवश्यक है। अत इस अभाव को दूर करने क लिए ही इस ग्र थमाला की योजना बनाई गई। हमारा इरादा छोटी पुस्तका के रूप म अपन लब्धप्रतिष्ठ नताओ की ऐसी सरल सक्षिप्त जीवनिया प्रकाशित करना है जिनक लेखक अपन विषय की अच्छी जानकारी रखने वाल योग्य व्यक्ति हो। इस ग्रन्थमाला की पुस्तकें 200 स 300 पष्ठो तक की होगी। य पुस्तकें निश्चय ही, विस्तृत अध्ययन की दृष्टि से तयार नही की जा रही हैं और न हा इनका उद्देश्य ग्रन्य सागोपाग जीवनियो का स्थान ग्रहण करना है।

यद्यपि यह वाछनीय है कि इन जीवनिया को काल क्रमानुसार प्रकाशित किया जाए। कि तु एसा करना सम्भव प्रतात नही होता। वस्तुत इन जीवनिया का लिखने का भार उ ही व्यक्तिया का सौंपा जा सकता है, जो जीवनी के नायक के बारे म लिखने के लिए हर तरह स समथ हो। अतएव, कतिपय व्यावहारिक कारणो से इन जीवनिया के प्रकाशन म एतिहासिक क्रम का टूट जाना स्वाभाविक है। फिर भी यह आशा है कि कुछ ही समय के अन्दर प्राय सभी लब्धप्रतिष्ठ राष्ट्रीय नताओ की जीवनिया इस ग्र थमाला के अ तगत प्रकाशित हो जाएगी।

श्री आर० आर० दिवाकर इस ग्र थमाला के प्रधान सम्पादक हैं।

प्राक्कथन

जब मुझसे 'आधुनिक भारत के निर्माता' ग्रन्थमाला के लिए भूलाभाई देसाई की जीवनी लिखने के लिए कहा गया, तब उनसे प्राप्त वकालत के प्रशिक्षण की स्मृतियों तथा उनके साथ अपने दीर्घ सपर्क के कारण मैंने इस काम को सहर्ष शिरोधार्य किया ।

लेकिन मुझे लगता है कि मैंने दुस्साहस किया, क्योंकि मैंने सक्रिय राजनीति में कभी भाग नहीं लिया जबकि भूलाभाई की मुख्य सफलता राजनीति के क्षेत्र में ही रही । राष्ट्र में ऐसी द्रुतगति से परिवर्तन हुए हैं कि जिन घटनाओं से श्री देसाई का सबध रहा उनकी स्मृति धुधली पड गई है । ऐसी हालत में उन घटनाओं का चित्र खींचना और उस समय के राजनीतिक वातावरण को समझना आसान नहीं था । महत्वपूर्ण कागजपत्र उन्होंने सम्हाल कर नहीं रखे थे, इसलिए मेरा काम और भी कठिन था ।

सौभाग्यवश रमण देसाई और ए० जी० मुलगावकर इन दो मित्रों का सहयोग मुझे प्राप्त हो गया । भूलाभाई में इन दोनों की दिलचस्पी थी, इससे मेरे लिए ये बड़े सहायक सिद्ध हुए । इनका सहयोग पाकर हमने भूलाभाई के सपर्क में आनेवालों से जानकारी मांगी । उनके अनेक मित्रों ने अपने सस्मरण आदि लिखकर भेजे और कुछ ने भेंट करने पर जानकारी दी । इस तरह मूल्यवान सामग्री हमें उपलब्ध हुई, जिसका पुस्तक लिखने में पूरा उपयोग किया गया है । इन सबका मैं बड़ा कृतज्ञ हूं ।

देसाई और मुल्गावकर ने अखबारों और पुस्तकों से भूलाभाई सबधी सामग्री सग्रह की । इसके अलावा भूलाभाई के सपर्क आए लोगों ने जो सामग्री दी उससे नोट तयार कर उन्होंने मुझे दिया । आकाशवाणी के बम्बई केन्द्र में

करने वाले श्री एल० जी० भागवत ने भी इसमे उनकी सहायता की। यह परिश्रम साध्य काम था, जिसमे उन्हे एक वर्ष से अधिक समय लग गया। यह सच है कि वे ऐसी सहायता न करते तो इस जीवनी का लिखा जाना संभव नही था।

यह भी सौभाग्य की बात थी कि डा० एम मित्रा से भी मूल्यवान विवरण हमे उपलब्ध हो गए जिन्होने भूलाभाई को दो विभिन्न क्षेत्रो मे काम करते हुए देखा था। 'असम्बली की कारगुजारी' वाला अध्याय मुख्यत श्री वाई० एन० सुखटणकर द्वारा दिए गए विवरण से ही तैयार किया गया है जो उस समय केन्द्रीय असेम्बली मे नामजद सदस्य थे और भूलाभाई के कार्यकलाप को उन्होने स्वयं देखा था। श्री जा० एन० जोशी बारडोली के काम मे उनके सहायक थे और भूलाभाई के कई महत्वपूर्ण मुकदमो मे भी जूनियर की हैसियत से उन्होने काम किया था। भूलाभाई के कुछ मुकदमो, उनके व्यक्तित्व और बारडोली के बारे मे जो कुछ लिखा गया है वह उन्ही के विवरण के आधार पर है।

घरवालो का तो पूरा सहयोग मिलना स्वाभाविक ही था। श्रीमती माधुरी देसाई ने बडी मेहनत से पुराने कागजपत्रो तथा यरवदा जेल की उनकी डायरी को ढूढा जिसमे व्यक्तियो और घटनाओ के बारे मे भूलाभाई के विचार हैं। टाइप की हुई प्रतिलिपि के साथ उन्होने मूल सामग्री भी मुझे भेजने की कृपा की जिससे मैं यह देख सकू कि टाइप करने मे कोई गलती तो नही हो गई है। पत्रो और डायरी मे कही कही अक्षर ऐसे मिटे हुए थे कि उन्हे पढ सकना मुश्किल था। कम से कम परिवर्तन परिवर्धन के साथ उनकी संगति बिठाने की चेष्टा की गई है।

भूलाभाई ने जिस राजनीतिक स्थिति मे काम किया उसके वर्णन मे मैंने मुख्यत श्री आर० सी० मजूमदार की बहुमूल्य पुस्तक 'हिस्ट्री आफ द फ्रीडम मूवमेन्ट इन इडिया' को आधार बनाया है। उनकी पुस्तक से जो कुछ उद्धृत किया गया है, उसके अलावा भी राजनीतिक घटनाक्रम का मेरा वर्णन बहुत कुछ उसी के अनुसार है। इसके लिए मैं श्री मजूमदार के प्रति आभार प्रकट करता हू।

उन अनेक अन्य विशिष्ट लेखको का भी मैं आभारी हू जिनके ग्रथो की सामग्री का मैंने अपनी पुस्तक मे पूरा उपयोग किया है।

अत में मैं अपने जूनियर श्री ज० एम० मुखी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट किए बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने पुस्तक की पूरी पाण्डुलिपि को सावधानी से पढ़कर उपयोगी सुझाव दिए।

भूलाभाई का राष्ट्रीय नेता और प्रमुख वकील के रूप में सही और प्रामाणिक मूल्यांकन करने का मैंने प्रयत्न किया है। इसमें मुझे कहां तक सफलता मिली यह निर्णय करना पाठकों का और खासकर उनका काम है जो उन्हें जानते थे और उन्हें काम करते हुए देखने का जिन्हें सुअवसर मिला।

11, सफदरजंग रोड
नई दिल्ली।

विषय सूची

प्रारंभिक जीवन

भूलाभाई ने 1934 मे दिए एक भाषण म अपने को एक मामूली आदमी बताया था। उन्होने कहा था "मैं एक गरीब किसान क घर म पदा हुआ था और जब सात बरस का था तो गुजराती की प्रारंभिक शिक्षा के लिए मुझे रोज पाच मील पदल चलकर स्कूल जाना पडता था।"

भूलाभाई का ज म एक अनाविल ब्राह्मण परिवार म हुआ। पेशवाओं के समय से गुजरात के सूरत जिले के सामाजिक और प्रशासनिक जीवन मे इस जाति का महत्वपूण योग रहा है। यद्यपि अनाविल सदियो से खेती का ध धा करने लगे हैं, फिर भी उनका स्वभाव नही बदला। वे आजादी-पस द, अक्खड, खरे, स्पष्टवादी और विश्वसनीय होते हैं। इस जाति का एक वग पेशवाओ के समय पटटे पर जमीन लकर किसानो से मालगुजारी की वसूली करने लगा था। ऐसे लोगो को 'देसाई' कहा जाता था। ऐसा लगता है कि मालगुजारी की वसूली का काम करने वाले लगभग सभी बिचौलिये अनाविल ब्राह्मण ही थे। बाद मे जब किसानो स सीधे मालगुजारी वसूल की जाने लगी तो क्षतिपूर्ति के लिए देसाईया की भत्ते के रूप म कुछ रकम वशानुगत दी जाने लगी। भूलाभाई के परिवार को इस सिलसिले मे उसके हिस्से के 20 रुपये वार्षिक सरकार से मिलते थे।

भूलाभाई के पिता का नाम जीवनजी था। उनकी आर्थिक स्थिति बहुत मामूली ...ी। जीवनजी और उनके भाई खण्डूभाई को, जिनकी चार लडकियां थीं अक्सर रुपय ...से की बडी तगी रहती थी। जीवनजी वकालत करते थे। खण्डूभाई अदालत म ...ी और स्टाम्पफरोश थे। बाद मे जीवनजी सरकारी वकील (मुख्त्यारी) बने और

उन्हें निजी तौर पर वकालत करने की छूट भी मिल गई। इससे उनकी स्थिति सुधरी और रुपया पैसा इकट्ठा होने लगा। तब उन्होंने बलसाड के निकट चिनवाई में कुछ जमीन खरीदी। वह बहुत कुछ बंजर थी और आमदनी की दृष्टि से उसे मुनाफे का सौदा नहीं कहा जा सकता था। लेकिन उन्होंने उसकी अच्छी तरह जुताई की, पानी के लिए कुआं खुदवाया और उसमें न केवल हापुस (एलफेंजो) आमों की बगिया लगाई, बल्कि कुछ भाग में धान की खेती भी की। बाद में जब जमीन से कमाई होने लगी और उनकी समृद्धि बढ़ी, तो उन्होंने बलसाड में अपना एक मकान भी बनवा लिया। जीवनजी खुशमिजाज, संगी साथियों के बीच आनन्द लेने वाले और जिन्दगी मजे से बिताने वाले आदमी थे। उनकी पत्नी रमाबाई अच्छे खाते पीते परिवार की थी। वह पढ़ी लिखी नहीं थीं, स्वभाव से सीधी-सादी थी और पूजा पाठ में मगन रहती।

13 अक्तूबर 1877 को इस परिवार में पुत्र का जन्म हुआ। नवजात शिशु को लोग 'भूला' कहने लगे। इस नाम में यह कृतज्ञता भाव है कि मां बाप को भगवान ने ऐसा इकलौता बेटा दिया जो भूल से उनके यहां आ पहुंचा।

भूलाभाई का पालन-पोषण बचपन में मामा के यहां हुआ। वहीं गांव के प्राइमरी स्कूल में उनकी पढ़ाई हुई और उसमें वह गुजराती की सातवीं कक्षा तक पढ़े। जैसा उन्होंने बताया है, उसी स्कूल के लिए उन्हें रोज कई मील पैदल चलना होता था। इसके बाद वह बलसाड के अवाबाई हाई स्कूल में दाखिल हुए और अंगरेजी की पांचवीं कक्षा तक वहां पढ़े। कहते हैं कि बलसाड के स्कूल के दिनों में वह क्रिकेट खेला करते थे—और शायद यही एकमात्र खेल था जिसमें कभी उन्होंने रस लिया।

अपने इकलौते बेटे के लिए जीवनजी की महत्वाकांक्षा स्वाभाविक थी। वह चाहते थे कि वह या तो मशहूर वकील बने या फिर बड़ा सरकारी अफसर। इसलिए केवल 14 वर्ष की उम्र में, 1891 में उन्होंने उसे आगे की पढ़ाई के लिए बम्बई भेज दिया। यह उस समय की बात है जब बम्बई में न्यू हाई स्कूल कायम हो हुआ था, जो बाद में वहां के सर्वोत्तम स्कूलों में गिना जाने लगा। इस स्कूल ने भरडा और मजबान

दो ऐसे प्रिसिपल हुए जिनकी बडी प्रतिष्ठा थी । अंग्रेजी की बहुत बढिया पढाई और विद्यार्थी म अध्यापको द्वारा व्यक्तिगत दिलचस्पी लेने के कारण इस स्कूल ने बहुत नाम कमाया । बलसाड का नवागतुक विद्यार्थी शीघ्र ही स्कूल की विविध प्रवत्तियो म सक्रिय योगदान करने लगा और प्रिसिपल भरडा का प्रिय शिष्य बन गया । इस स्कूल म ज्यादातर विद्यार्थी पारसी थे । भूलाभाई के आनन्दी स्वभाव और उनकी विनोद-वत्ति म इस स्कूल म बिताए काल का निश्चय ही बडा योग है ।

बम्बई मे भूलाभाई के परिवार का न कोई मकान था और न ही कोई रिश्तेदार ही । इसलिए गोवालिया टक स्थित गोकुलदास तेजपाल छात्रावास म उनके रहने की व्यवस्था की गई । इसी इमारत मे कांग्रेस (भारतीय राष्ट्रीय महासभा) का पहला अधिवेशन हुआ था, जिसकी बाद मे वर्षों तक विभिन्न रूपो मे भूलाभाई ने सेवा की । कहते हैं कि भूलाभाई स्कूल और छात्रावास दोनो जगह अपने साथी विद्यार्थियो म बहुत लोकप्रिय थे । छात्रावास के उनके कुछ समकालीन बताते है कि जो विद्यार्थी उनकी तरह सम्पन्न परिवार के नही थे उनका वह बहुत ख्याल रखते थे । लेकिन बलसाड के स्कूल मे दूसरो को चिढाने और शरारत करके मजा लेने की वत्ति भी उनमे आ गई थी जिससे वह छात्रावास के अपने साथियो का मनोरंजन भी किया करते थे ।

1895 मे भूलाभाई ने मैट्रिक परीक्षा पास की और अपने स्कूल मे वह सर्वप्रथम रहे । उसके बाद वह एलफिस्टन कालेज म भरती हुए जो बम्बई म उच्च शिक्षा की एक प्रमुख संस्था है और जिसम पढे हुए अनेक व्यक्ति बहुत नामी हुए हैं । गुजरात से आने वाले विद्यार्थियो क लिए उस समय दूसरी भाषा के रूप म फारसी लेने का आम रिवाज था । भूलाभाई ने फारसी ही ली और प्रो० मिर्जा हैरत के विद्यार्थी हुए जिनके बारे म मशहूर है कि वह विद्या के भंडार थे और उनकी याददाश्त गजब की थी । वह विद्वान ही नही, शायर और बढिया अध्यापक भी थे । भूलाभाई उनके प्रिय शिष्यो म थे । बरसो बाद उनके साथी वकील उन्हे शुद्ध मुहावरेदार उर्दू का प्रयोग करते देख आश्चर्य म पड जाते थ, और यह तो सभी जानते है कि कई बार उन्होने मुकदमो म उर्दू म पैरवी ही नहीं की बल्कि सार्वजनिक सभाओ मे उर्दू म भाषण भी किए । इतिहास और अंग्रेजी के भी वह बहुत योग्य विद्यार्थी थे ।

कालेज म विद्यार्थियो की सभाओं म वह अक्सर बोला करते थे। जिस स्वाभाविकता और प्रवाह के साथ वह अगरेजी म भाषण करते थे, उससे उनके साथी बड़े प्रभावित होते थे।

भूलाभाई का यूनिवर्सिटी जीवन बड़ा शानदार रहा। इन्टरमीजिएट और बी० ए० की परीक्षाओं म उन्होंने न केवल प्रथम श्रेणी पाई, बल्कि बी० ए० की परीक्षा म इतिहास म सर्वाधिक अक प्राप्त करने के कारण उन्हें वर्ड्सवर्थ पुरस्कार के अलावा छात्रवृत्ति भी मिली। रोमन इतिहास म भी वह सर्वप्रथम रहे और अर्थशास्त्र म उनका स्थान बहुत ऊचा रहा। एम० ए० म उन्होंने भाषाए ली और प्रो० मैकमिलन से शिक्षा पाई। प्रो० मैकमिलन उस समय कालेज के स्थानापन्न प्रिंसिपल थे। गुजरात कालेज म भूलाभाई के प्राध्यापक नियुक्त होने पर उन्होंने लिखा था "मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि अगरेजी और इतिहास के वह बहुत बढ़िया शिक्षक साबित होगे, क्योंकि एम० ए० की कक्षा म वह सबसे मेधावी छात्र थे और हर चीज की गहराई म जाने का उनमे लगन थी। कक्षा मे व्याख्यान देने म उन्हे अगरेजी भाषा और साहित्य के अपने ज्ञान से बहुत मदद मिलेगी। इस कालेज के फेलो के रूप म पढ़ाने का कुछ अनुभव भी उन्हें है। प्रो० मुलर की अस्थायी अनुपस्थिति मे उन्होंने कालेज की कक्षाओं मे अगरेजी पढ़ाई थी, जिसके लिए वह पूरी तरह योग्य थे श्री देसाई न केवल तेज विद्यार्थी थे, बल्कि जिमखाना कमेटी के सदस्य और डिबेटिंग सोसायटी के उपप्रधान भी थे।"

कहा जाता है कि बी० ए० की परीक्षा मे यूनिवर्सिटी भर मे दूसरा स्थान पाने पर उन्हें विदेश म पढ़ाई के लिए भारत सरकार की छात्रवृत्ति मिलने की सभावना थी, लेकिन सयोगवश लगभग उसी समय उनके पिता गभीर रूप से बीमार हो गए और 1899 म उनकी मृत्यु हो गई। तब भूलाभाई ने कानून की पढ़ाई करने का निश्चय किया और एल-एल० बी० की पढाई के साथ-साथ अहमदाबाद के गुजरात कालेज मे अगरेजी तथा इतिहास के प्राध्यापक की नौकरी कर ली।

उस समय का एक प्रसग उल्लेखनीय है। बात यह हुई कि भूलाभाई के नौकरी पर जाने से पहले ही गुजरात कालेज के विद्यार्थियो तक यह खबर पहुच गई थी कि एक

ऐसा नौजवान प्राध्यापक बनकर आ रहा है जिसने एम० ए० अंगरेजी साहित्य तथा फस्ट क्लास आनर्स के साथ पास किया है। स्वभावत विद्यार्थियो को अपने नए अध्यापक को देखने की बडी उत्सुकता थी। भूलाभाई मध्यम कद और इकहरे बदन के तेजस्वी युवक थे। उनके उस समय के एक विद्यार्थी का कहना है कि जैसे ही पुस्तक हाथ मे लिए भूलाभाई क्लास म आए और व्याख्यान के लिए मच पर चढे, विद्यार्थियो ने शरारत से पैंसिलें खटखटाना तथा बैंचो को थपथपाना शुरू कर दिया। यही नही, कागजी तीर भी कमरे मे जोरो से उडने लगे। भूलाभाई ने यह सब देखा, लेकिन इसस जरा भी विचलित नही हुए। बिना किसी उत्तेजना के उन्होने क्लास पर एक नजर डाली, एक क्षण सोचा और फिर स्पष्ट और शिष्ट भाषा मे कहा "दोस्तो, आप सभी सभ्य हैं, ऐसा मैं मानता हूँ और इसी तरह के व्यवहार की आपसे आशा रखता हू।" विद्यार्थी तो समझ रहे थे कि हमारी शरारत से नए प्राध्यापक गुस्से म लाल हो जाएगे और भत्सना करेंगे। जब ऐसा नही हुआ तो उन्हें बडी निराशा हुई, बल्कि उत्तेजक परिस्थिति मे भी भूलाभाई के शालीन रुख ने उन्हें बिल्कुल परास्त कर दिया। उन्हें देखकर तथा उन्होने जो कुछ कहा था, उसका अर्थ समझकर सभी विद्यार्थियो को अपने व्यवहार पर अफसोस हुआ और चुपचाप अपनी किताबें खोलकर वे ध्यानपूवक उनका भाषण सुनने लगे। इस घटना की खबर सारे कालेज मे फलना स्वाभाविक ही था और उसके बाद भूलाभाई का ऐसा रग जमा कि उनके प्रत्येक भाषण म विद्यार्थी हाजिर ही नही रहते थे, बल्कि पूण शान्ति और ध्यान से उनकी बातें सुनत थे।

प्राध्यापक के रूप मे भूलाभाई के सस्मरण उनके एक विद्यार्थी न इन शब्दो में लेखबद्ध किए हैं "भूलाभाई जसे ही होठ खोलते, शब्दो की धारा बहने लगती। बोलने मे उन्ह प्रयत्न नही करना पडता था। वक्तत्व शक्ति का वह कोई प्रदशन नही करत थे। फिर भी वह जो कुछ कहते, उससे श्रोता मुग्ध हो जात थे। भाषणो मे वह पाठ्य पुस्तको तक ही सीमित नही रहत थे। अगरेजी भाषा पर उनका अदभुत अधिकार था, उनकी प्रतिपादन शली म कोई कमी नहीं थी विचारक्षेत्र बडा व्यापक था और विषय पर उनकी पूरी पकड थी। इन कारणो से उनके प्रवचन सचमुच बडे उपयोगी और ज्ञानवधक होते थे।'

मुझे भी कुछ महीने गुजरात कालेज मे भूलाभाई से अगरेजी पढ़ने का सुयोग मिला है। वह न केवल योग्य और प्रेरणा देने वाले प्राध्यापक थे, वरन प्रत्येक विद्यार्थी म वह बहुत हद तक व्यक्तिगत दिलचस्पी लेते थे। वह उनसे विविध विषयो पर निबन्ध लिखवाते और प्रत्येक निबन्ध की अलग-अलग जांच करके हर एक को उस बारे म आगे अध्ययन के सुझाव देते।

जसा कि उन दिनो आम रिवाज था, भूलाभाई जब 1892 मे स्कूल म पढ़ रहे थे, तभी 15 वर्ष की छोटी उम्र म, इच्छाबेन के साथ उनका विवाह हो गया। प्राध्यापक होने पर शुरू मे वह एक प्रतिष्ठित अनाविल ब्राह्मण के घर म रहे। उनका नाम भामाभाई कृपाराम था और वह गुजरात के एक उच्च पदस्थ सरकारी अधिकारी थे। उनका दफ्तर अहमदाबाद म ही था। बाद म भूलाभाई ने अहमदाबाद मे अलग मकान लिया और अपनी पत्नी के साथ गृहस्थ जीवन बिताने लगे। कठिनाई के वक्त विद्यार्थियो के लिए उनके द्वार सदा खुले रहते थे। इस प्रकार भामाभाई कृपाराम के पडोस मे रहते हुए इस तरुण दम्पति ने सुखी जीवन व्यतीत किया। इच्छाबेन के लिए तो वे दिन बहुत ही सुख के रहे, क्योंकि उस वक्त तक भूलाभाई व्यस्त वकालती जीवन म नहीं पड़े थे।

काम म व्यस्त न होने पर भूलाभाई विविध विषयो की पुस्तकें पढने मे लीन रहते थे। कभी कभी कुछ समान विचारवाले मित्रो के साथ भी वह शाम का वक्त बिताते थे। उनके ऐसे मित्रो मे एक थे उनके साथी प्रोफेसर आनन्दशकर ध्रुव, जो सस्कृत के धुरधर पडित थ। भूलाभाई की बौद्धिक प्रतिभा से प्रो० ध्रुव बड़े प्रभावित थ। उन्होने आग्रह करके भूलाभाई स गुजराती पत्र 'वसत' के लिए लेख लिखवाए, जिसका सपादन वह खुद करते थे। भूलाभाई की महान बौद्धिक प्रतिभा को देखकर उन्होने ही भूलाभाई को प्राध्यापक का काम छोड़कर बम्बई मे कानून के क्षेत्र मे आगे बढने के लिए प्रेरित किया था।

अहमदाबाद म भूलाभाई तीन वर्ष रहे। इस बीच उन्होंने एल० एल० बी० की परीक्षा पास कर ली और उसके बाद बम्बई हाईकोर्ट की एडवोकेट की परीक्षा के लिए कडी मेहनत की। उनके पुराने कागजो मे 15 दिसम्बर 1905 का लिखा एक छोटा सा परचा है, जिससे परीक्षाफल से पहले की उनकी मनोदशा का पता चलता

है। उसमें लिखा है "क्या होगा, इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। फिर भी इस तरह का कुछ विश्वास जरूरी है कि मैं पास हो जाऊंगा।"

और "कृतज्ञता का मैं अन्त तक नहीं छोड़ूंगा, क्योंकि मुझे लोगों से बहुत अनुग्रह मिला है।" उसी में आगे था "कभी-कभार, चमक उठने के सिवा मुझ में शायद कोई गुण नहीं है। मुझे और अधिक परिश्रमी होना चाहिए तथा अपनी कल्पनाशक्ति को नियन्त्रित करना चाहिए।" उस पर्चे से यह भी पता चलता है कि आत्मचिन्तन का स्वभाव उनका तरुणावस्था में ही बन गया था।

उनका विश्वास सही साबित हुआ और परीक्षा में वह पास रहे। 22 दिसम्बर 1905 को बम्बई हाईकोर्ट में एडवोकेट के रूप में उनका नाम दर्ज हो गया। इसके बाद उनका वकालती जीवन शुरू हुआ, जिसमें उन्होंने तेजी से उन्नति की और खूब ख्याति पाई।

2

वकालत

भूलाभाई ने 1906 म बबई हाईकोट म वकालत शुरू की। हाईकोर्ट का उस समय का वातावरण आज से बहुत भिन्न था। बेंच और बार, यानी न्यायाधीश और वकील, दोनो के लिए निस्सदेह वह सक्रमणकाल था।

हाईकोट की स्थापना से पहले मुफस्सिल म जो अदालतें थी, उनमे पैरवी का काम अमीन, मुसिफ मुख्यार, वकील आदि कई किस्म के लोग करते थे और वे सब भारतीय होते थे। लेकिन सुप्रीम कोट म किसी भारतीय के वकालत का काम करने का कोई उल्लेख नही मिलता। शायद इसका कारण यह हो कि मुफस्सिल अदालतो के मामलो की बडी अदालत मे अपील की उस समय व्यवस्था नही थी। हाईकोट की स्थापना के बाद ही सदर दीवानी और सदर फौजदारी अदालतें उस में मिला दी गइ और अपीलो की सुनवाई उसमे होने लगी। वकील या प्लीडर भी तभी से हाईकोट म पहुचने शुरू हुए।

बबई मे हाईकोट की स्थापना होने पर, कलकत्ता और मद्रास के हाईकोर्टों की तरह, उसमे भी नीचे की अदालतो के फसलो की अपील तथा सीधे मुकदमो की सुनवाई का काम शुरू हुआ। हाईकोट के इन कामो को 'एपिलेट साइड और 'ओरिजिनल साइड' कहा जाता था। मुकदमों की सीधी सुनवाई का क्षेत्र बबई द्वीप और शहर के दीवानी और फौजदारी मामलों तक ही सीमित था, जबकि अपीलें मुफस्सिल अदालतो के फसलो की होती थी। एसी हालत म यह स्वाभाविक था कि शुरू म 'आरिजिनल साइड' मे वकालत का एकाधिपत्य अगरेजो का रहा, जबकि अपील पक्ष मे भारतीयो का एकाधिपत्य न रहते हुए भी बहुमत हुआ। अपीलें अधिकाश मुफस्सिल

से होती थी और झगडा प्राय जमीन के पट्टे, उत्तराधिकार या बटवारे का होता था, जिसके लिए लगान मालगुजारी की बारीकियो और हिदू-मुसलमानो के जातिगत रीति रिवाज व परपराओ की जानकारी आवश्यक थी। ये काम भारतीय वकील ही बखूबी कर सकते थे। इसीलिए उस समय अगरेज बरिस्टरो की प्रधानता होते हुए भी अपील पक्ष म भारतीय वकीलो का जोर हुआ—यहा तक कि अगर फौजदारी या अन्य अपीलो म अगरेज बरिस्टर को मुख्य वकील बनाया जाता तो भी भारतीय वकील को उसकी सहायता के लिए रखना आवश्यक था। भारतीय वकीलो को अगरेजो के बराबर आने म अभी देर थी, फिर भी अपील पक्ष मे भारतीय वकीलो की सख्या बढने लगी थी। ये योग्यता और अनुभव मे किसी से कम नही थे।

ओरिजिनल साइड मे, यानी मुकदमो की सीधी सुनवाई मे, स्थिति इससे भिन्न थी। बदरुद्दीन तयबजी और तलग जसे कुछ विख्यात वकीलो ने यद्यपि इस दिशा मे भी, उन्नीसवी सदी समाप्त होने से पहले ही अपना स्थान बना लिया था, लेकिन ज्यादातर मामले अगरेज बरिस्टरो के पास ही जाते थे। अगरेजो मे इनवेरेरिटी, मक्फसन लाउण्डेस और ब्रैनसन जसे कुछ बरिस्टर निस्सदेह बहुत होशियार थे, लेकिन दूसरे अगरेज वकीलो की भारी कमाई सिर्फ उनके अगरेज होने के कारण ही थी। बबई के मुकदमेबाजो का बरिस्टरो की श्रेष्ठता म लगभग अधविश्वास था और वे भारत मे शिक्षित वकील की बजाए विदेश मे पढे बरिस्टर को ही रखने पर जोर देते थे। इसी कारण इग्लण्ड से बरिस्टरी पास कर आनेवाले नौजवान भारतीयो को भी भारत मे वकालत पढे एडवोकेट पर तरजीह मिलती थी। ऐसा समय काफी अर्से बाद ही आया जब मुवक्किल अपने सालिसिटरो से इग्लण्ड म पढे बरिस्टरो के बजाए भारत मे शिक्षित एडवोकेटो से ही अपने मामलो की पैरवी कराने को कहने लगे।

सर लारेंस जेनकिन्स ने जो 1899 म बबई के चीफ जस्टिस बने थे, भारतीय वकीलो को बहुत प्रोत्साहन दिया। उनकी सलाह पर कुछ होशियार और होनहार तरुण भारतीय वकील ओरिजिनल साइड मे गए। ऐसा उस समय इस नियम के अनुसार हुआ कि अपील का काम करने वाला कोई वकील यदि चाहे तो एक साल

काम बंद करके अपना नाम ओरिजिनल साइड के एडवोकेट के रूप में दर्ज करा सकता है। इसके अलावा एक बहुत कड़ा इम्तिहान पास करके भी कोई भारतीय वकील ओरिजिनल साइड का एडवोकेट बन सकता था। भूलाभाई देसाई 1905 में यही इम्तिहान पास करके ओरिजिनल साइड के एडवोकेट बने थे।

भूलाभाई के एडवोकेट बनने के समय ओरिजिनल साइड में भारतीय वकीलों के प्रवेश की प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी और कुछ मशहूर अंगरेज बैरिस्टरों के साथ साथ बहादुरजी पादशाह, जिन्ना और चिमनलाल सीतलवाड़ जैसे भारतीयों की वकालत भी खूब चमक उठी थी। ओरिजिनल साइड में इन लोगों की बड़ी प्रतिष्ठा और ख्याति थी। भूलाभाई से दो वर्ष पूर्व जे० बी० कांगा भी ओरिजिनल साइड के एडवोकेट बन चुके थे। ये दोनों ही कालांतर ओरिजिनल साइड में नवागंतुक वकीलों में प्रमुख बन गए।

उस समय जबकि वकील समुदाय में अधिक संख्या अंगरेज बैरिस्टरों की थी और चीफ जस्टिस भी अंगरेज (सर लारेंस जेन्किंस) थे, भूलाभाई को अपनी योग्यता का सिक्का जमाने में अपने कुछ गुजराती सॉलिसिटर मित्रों से बहुत मदद मिली और उनकी बदौलत उन्हें कई मुकदमे मिले। फिर तो थोड़े ही समय में उनकी वकालत चमक उठी और बूढ़े वकीलों का ध्यान उनकी तरफ गया। पैनी बुद्धि और धाराप्रवाह भाषण के साथ साथ उनकी खुशमिजाजी और मिलनसारी ने वकीलों और सॉलिसिटरों में उनको लोकप्रिय बना दिया। इन गुणों के कारण जूनियर होते हुए भी उनके पास बहुत काम आने लगा।

उनकी सधी हुई स्मरण शक्ति ने भी आगे चलकर वकालत में उन्हें बहुत मदद की। कहा जाता है, वकालत के प्रारंभिक काल में एक बार वह लाइब्रेरी में बैठे एक मुकदमे का अध्ययन करते हुए पैरवी की दलीलों के लिए विस्तृत नोट ले रहे थे कि संयोग से ओरिजिनल साइड के वकीलों में सर्वप्रमुख मि० इनवरॉरिटी की निगाह उन पर पड़ी। उन्होंने कागज छीनकर फाड़ दिए और नौजवान एडवोकेट को नोट लेने की बुरी आदत छोड़ने की सलाह दी। इनवरॉरिटी स्वयं भी शायद ही कभी

पैरवी करते हुए नोटो का सहारा लेते थे। दीवानी या फौजदारी किसी भी मुकदमे म लम्बी बहस करते हुए भी वह सदा अपनी याददाश्त का ही भरोसा करते थे। एक प्रमुख वकील के बारे में मुझे अच्छी तरह याद है कि एक बार परवी करते समय उनके नोट कही इधर उधर हो गए और वह बडी परेशानी म पड गए थे।

भूलाभाई न, जब वह बिलकुल नए और जूनियर थे, जवाहरात के गबन और विश्वासघात के एक मामले मे सफाई पक्ष की ओर से इनवरेरिटी के साथ काम किया। अभियुक्त अनूपराम कई साल सूरत के नवाब का दीवान रह चुका था और उस पर इलजाम था कि उसने नवाब के साथ विश्वासघात किया और उनके कुछ जवाहरात का गबन किया है। एक इलजाम म तो परवी इनवरेरिटी न की और दूसरे म, जो 2,000 रु० मूल्य की हीरे की अगूठी के गबन का था, भूलाभाई ने। मामला बडा पेचीदा था, क्योकि नवाब के पास अनूपराम का एसा पोस्ट काड मौजूद था जिसमे अगूठी उनके पास होन तथा उनकी हिदायत क मुताबिक उसे रखने की बात थी। अगूठी, ऐसा मालूम पडता है, नवाब के आदेश पर एक अगरेज अफसर को रिश्वत मे दी गई थी। यह ऐसी बात थी जिसे अनूपराम अदालत मे खुले तौर पर कहने को तैयार नही था, क्योकि इसका कोई लिखित सबूत न था। भूलाभाई सूरत मे जाकर सारा मामला समझ आए थे और पेचीदगी के बावजूद पूरे दिन की अपनी बहस मे उन्होंने इस इलजाम से अपने मुवक्किल को बरी करा लिया। दीवानी के ऐसे वकील के लिए जिसे वकालत शुरू किए अभी दो ही साल हुए थे, यह निस्सदेह बहुत श्रेय की बात थी।

लकिन इससे भी दिलचस्प और असाधारण दीवानी मामला था, हाजी बीबी बनाम आगाखा वाला, जिसमे भूलाभाई को काफी शोहरत मिली। उस समय उनको वकालत करते केवल तीन साल हुए थे। हाजी बीबी, तीसरे आगाखा के चाचा की विधवा लडकी थी। आगाखा पर दावा यह था कि खोजा सप्रदाय के लोग उन्ह जो भेंट देते हैं, वह सिफ उनके अपने लिए नही बल्कि परिवार के सभी सदस्यो के निर्वाह के लिए होती है। दूसरे यह कि उसके पिता की सपत्ति के प्रबधक द्वारा आगाखा को सपत्ति देने का कागज धोखाधडी से प्राप्त किया गया है। मुकदमे मे एक मजहबी मुद्दा भी उठाया गया था कि आगाखा के खोजा अनुयायी इस्लाम धम

स्वीकार करने के समय से ही बारह इमामों म विश्वास करते थे अड़तालीस इमामों मे नहीं। माग यह थी कि पहले आगाखां की सपत्ति म परिवार के सदस्य की हैसियत से हाजी बीबी का भी हिस्सा मिले और उसके पिता की सपत्ति आगाखां को मिलने का आदेश रद्द किया जाए। खोजा सप्रदाय का बबई तथा सिंध मे बड़ा जोर था और मामला उनके धमगुरु पर था, इसलिए मुकदमे मे बहुसख्या म उनकी उपस्थिति स्वाभाविक थी और कुछ उत्तेजना भी थी। दोनो ही तरफ के वकील चोटी के थे। भूलाभाई मुद्दई पक्ष म, बहादुरजी और चिमनलाल सीतलवाड जसे वरिष्ठ वकीलों के साथ थे। मुद्दई पक्ष गुरू म बहादुरजी ने ही प्रस्तुत किया, लकिन बाद म इसे भूलाभाई पर छोड दिया गया। इसके बाद ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई, जिसमे मुकदमे म सनसनी फ्रा गई और मुद्दई के वकील को पत्वी करने से इनकार करना पड़ा। जज रसेल ने इस घटना का वणन करत हुए लिखा कि पहले तो मुद्दई के वकील ने यह आपत्ति उठाई कि आपको इस मुकदमे की सुनवाई नही करनी चाहिए, क्योंकि आपकी आगाखां से दोस्ती है। इस पर आगाखां के वकील ने कहा कि इस प्रकार तो सभी जजो पर एतराज किया जा सकता है। अस्तु इसके बाद मुद्दई के वकील ने गवाहो स कुछ ऐसे सवाल किए जिनसे उनकी धार्मिक भावना को चोट पहुचती थी। उन्होंने कहा कि अगर ये जवाब सवाल प्रकाशित हुए तो बबई म मुसलमानो म उत्तेजना फल जाएगी। इसके बाद मुद्दालेह आगाखां तर्तीय से भी कोई सवाल पूछा गया जो मेरी समझ मे उत्तेजक था। मेरे मना करन पर भी सवाल पूछा गया। उसके बाद जब फिर वसा ही सवाल पूछा गया तो मैंने अदालत म मौजूद दर्शकों को, जिनम बहुत बडी सख्या म खोजा लोग थे, कमरे से हटा दिया। इस पर मुद्दई के वकील ने पत्वी करने से इनकार कर दिया और मुकदमे से हट गए। मुद्दालेह के वकील के अनुरोध पर मुकदमे का फसला मुद्दई की गर मौजूदगी म किया गया और फसला आगाखां के पक्ष म हुआ। इस प्रकार यद्यपि भूलाभाई के मुवक्किल की हार हुई, पर इससे उनको सभी लोग जान गए।

1908 का वष भूलाभाई और इच्छाबेन के लिए महत्वपूण रहा। इसी साल इनके पुत्र धीरूभाई का जन्म हुआ। यह अपने माता पिता की इकलौती सतान थे। इच्छाबेन के लिए ये दिन बडे सुख के थे। जो वकील बहुत व्यस्त होते है वे अक्सर अपनी स्त्री बच्चो के नही रहत क्योंकि उन्हे हमेशा मुवक्किलो से घिरे और अपने

काम मे व्यस्त रहना पडता है। लेकिन भूलाभाई अभी इस स्थिति को नही पहुचे थे। मिलने जुलने वाले इच्छाबेन से अक्सर यह प्रश्न कर डालते थे कि आपके सिर्फ एक ही बच्चा क्यो हुआ ? वह यही जवाब देतीं कि हमार परिवार की यही परपरा है और, फिर कहती 'शेरनी एक ही बच्चा जनती है।''

कागा और भूलाभाई की तुलना करना अप्रासगिक नही होगा, क्योकि दानो ही वकालत के पेशे म नए नए आए थे और बबई हाईकोर्ट म उनकी वकालत दिनोदिन चमक रही थी। काम की विविधता और उसके परिणाम की दृष्टि से, जूनियर वकीलो म उन दिनों ये दोनो प्रमुख थे। दोनो ने ही ओरिजनल साइड म एडवोकेट की परीक्षा पास की थी, जो उन दिना बडी कडी थी। कागा न वह परीक्षा 1903 मे पास की थी और भूलाभाई ने 1905 म। कागा का दिमाग बडा साफ था और उनको नजीरा की गजब की याद थी। नजीरो की जानकारी से ज्यादा कानूनी उसूला की पकड को महत्व देते थे। कागा सीधे मामले की तह तक पहुचत थे, जबकि भूलाभाई बहुत सूक्ष्म बुद्धि और प्रखर मस्तिष्क के थे और इस कारण कई बार मामले को पेचीदा बनाकर रास्ता निकालते थे। शुरू शुरू मे कागा कुछ अटकते हुए बोलने थे और ऐसा असर नही डाल पाए कि वह सफल वकील बनेंगे, यद्यपि कानूनी दक्षता के साथ बाद म अपनी इस कमी का उ होने दूर कर लिया था और उनके बोलने मे प्रवाह आ गया था। इसके विपरीत भूलाभाई का शुरू से भाषा और वाक्शैली पर आश्चर्यजनक अधिकार था और प्रसगानुसार वह बडे ओजस्वी हो जाते थे। बाद के दिना मे पता नही क्यो उनकी दलीलें कुछ उलझी हुई होने लगी और कभी कभी उन्हे समझना मुश्किल हो जाता था। लेकिन उनका सबसे बडा गुण उनका समझाने का ढग था। जज के दिमाग से उलझने का वह सीधा प्रयत्न नही करते थे, अपने मुद्दे को वह धीरे धीरे आगे बढाते और जब जज विपरीत राय व्यक्त करते तो वह उससे विवाद न करते, बल्कि अपनी बात को दूसरे ढग से कहते। समझाने और कायल करने की शक्ति तो उनमे ऐसी जबरदस्त थी कि एक मामले मे जजो को मैंने स्वय यह कहते सुना कि भूलाभाई इसम पैरवी कर रहे हैं इसलिए हम बहुत सावधान रहना होगा और उनकी दलीला की पूरी छानबीन करनी होगी, नहीं तो हम उनकी बात म आ जाएगे।

कागा और भूलाभाई दोनो ही अपने मुकदमों की तयारी बड़ी मेहनत म

करते थे। एडवोकेट के रूप म दोनो ईमानदार थ और ऐसी कोई बात न करत थे जा अनुचित हा। विवदा म रहन पर भी वे मित्रता बनाए रहत और एक दूसरे स सहयाग करते। वाजिब समझौते की गुजाइश होने पर मामला तय कराने की काशिश करना दोनो का ही विशेष गुण था। यह कहने की ता जरूरत ही नहीं कि मुवक्किलों का दोनो पर पूरा विश्वास था।

1928 म यह कहा जाता था कि भूलाभाई की वकालत बडी तेजी स चमकी और सात वष की अल्प अवधि म ही उनके मातहत काम का अनुभव प्राप्त करन के लिए कई नए वकील आए और अनुभव प्राप्त करके बडे वकील बन गए। इसके बाद तो इस पेशे म वह और भी ऊचे चढे और 1913 या उससे भी पहले, उन्होंने अपने चम्बर म काम का अनुभव प्राप्त करने के लिए अपने आस-पास अनेक ऐसे नए वकीलो को इकट्ठा कर लिया जो बाद म खुद ही चोटी के वकील बन गए। इनम मैं, कन्हैयालाल माणिकलाल मुशी और एम बी देसाई ही नही थे, बल्कि कागा के जज नियुक्त हो जाने पर एच जे कानिया भी हमारे बीच आ गए थे।

भूलाभाई के पास काम सीखने वाले जूनियर वकील शाम को वहा पहुचते थे। पर भूलाभाई बडे व्यस्त वकील थे और यही वक्त था जब मुवक्किल और सालिसिटरो से घिर रहते। उनके साथ भूलाभाई की जो मत्रणाए चलती रहती, उनम शामिल होन का सुयोग प्रशिक्षणार्थी वकीलो को शायद ही कभी मिलता। इसमे उनस लाभ उठाना सभव नही था। यों भी भूलाभाई उन्ह कोई सीधा प्रशिक्षण नही देते थे और कभी कभी तो वह बडी सख्ती और बेरुखी से पेश आते थे। यही व्यवहार उनका उन सालिसिटरो के साथ भी था जो मुकदमे लाकर उन्हे देते थे। प्रशिक्षण का उनका सामान्य तरीका यह था कि वह अपने जूनियर को किसी मुकदमे का मसविदा तैयार करने को देत या उसके बारे म राय व नजीरें जुटाने का काम दत। नि सदेह प्रशिक्षणार्थी उस पर अपना दिमाग लडाता और बडी मेहनत स मसविदा तयार करता तथा कानूनी मुद्दो की खोज करके उन्हे लेखबद्ध करके उन्ह देता। लेकिन मैं नही समझता कि इनसे भूलाभाई या अन्य वरिष्ठ वकीलो ने कभी फायदा उठाया हो, क्योंकि उनके बारे मे कोई राय उन्होने शायद ही कभी व्यक्त की। प्रोत्साहन तो जूनियरो को कभी मिला ही नहीं। बात यह थी कि उनकी बुद्धि इतनी प्रखर थी और अपने ऊपर उन्हें इतना अधिक विश्वास था

कि अपने से प्रशिक्षण पानेवालों की योग्यता की दाद देने का उन्हें ख्याल ही नहीं होता था। फिर भी इसमें कोई शक नहीं कि उनके यहां काम सीखने वालों को तरह-तरह के मुकदमों की पैरवी के लिए तैयार किए गए मसाले के अध्ययन की जो सुविधा वहां मिली वह उनके बहुत काम आई। उनके मातहत प्रशिक्षित वकीलों में से अधिकांश ने आगे चलकर वकालत में तथा अन्यत्र जो नाम कमाया उसमें निस्संदेह भूलाभाई जैसे प्रख्यात और बम्बई हाईकोर्ट की ओरिजनल साइड में वर्षों तक संभवतः सबसे व्यस्त वकील के सान्निध्य का श्रेय है।

भूलाभाई के वकालती जीवन की एक रोचक घटना उल्लेखनीय है। उस समय ओरिजिनल साइड के लगभग सभी प्रमुख भारतीय वकील पगड़ी पहनकर हाईकोर्ट में पैरवी करने जाते थे। बाद में जब भारतीय वकीलों की संख्या बढ़ी और प्रमुख अंगरेज बैरिस्टरों की जगह उन्होंने ली तो अधिकांश भारतीय वकीलों ने सिर का बोझ (पगड़ी) हटाकर अंगरेजी वेशभूषा धारण करना शुरू कर दिया। बहादुरजी, तल्यारखां और चिमनलाल सीतलवाड इनमें प्रमुख थे पर भूलाभाई और कांगा ने ऐसा नहीं किया। भूलाभाई उस समय महाराष्ट्रीय ढंग की लाल पगड़ी पहनते थे। बार बार कहने और यदाकदा जोर डालने पर भी जब भूलाभाई उसे छोड़ने को तैयार नहीं हुए तो चिमनलाल सीतलवाड को एक शरारत सूझी। भूलाभाई काम के भारी दबाव के बावजूद दोपहर के भोजन की छुट्टी के वक्त वकीलों के कामन रूम में ही बैठकर चाय पिया करते थे। चाय पीते पीते वह मित्रों से गपशप करते या अपने जूनियर वकील और सालिसिटर से चल रहे मुकदमे की चर्चा में लीन रहते। एक दिन जब अपनी पगड़ी और चोगा मेज पर रख वह बातें कर रहे थे तो चिमनलाल को शरारत सूझी। भूलाभाई हाथ मुंह धोने गए थे चिमनलाल उनकी पगड़ी को उठाकर अपने चेम्बर में ले गये। भूलाभाई अधूरी पैरवी छोड़कर आए थे और अदालत में वापस जाने की जल्दी में थे। जस्टिस मार्टिन के पास मुकदमा था। वह अनुशासन के बड़े पाबन्द थे और अदालत में निश्चित पोशाक में कोताही बर्दाश्त नहीं करते थे। लेकिन कोई चारा नहीं था। अतः पगड़ी न मिलने पर भूलाभाई नंगे सिर ही सीधे जज के कमरे में पहुंचे और अपनी विपदा का हाल सुनाया। मार्टिन के पास भी कोई उपाय नहीं था। बुरा लगने पर भी उन्हें भूलाभाई को पैरवी की छूट देनी पड़ी। उसके बाद भूलाभाई ने पगड़ी

का आग्रह छोड अगरेजी वेशभूषा धारण कर ली और आधुनिक फशन के कपड़े पहनने लगे।

प्रथम विश्व युद्ध के अतिम वर्षों म, यानी 1918 और 1919 मे, कुछ ऐसी घटनाए हुई, जिन्होने भूलाभाई और कागा दोनो का ओरिजिनल साइड की वकालत म खूब मालदार बनाया। युद्ध की समाप्ति के समय कपडे के दामो म उतार चढाव आया। उससे कपडे की खूब सटटेबाजी होने लगी। लेकिन युद्ध की समाप्ति पर जब भाव गिर तो कुछ व्यापारियो ने पहले के बढे भावो पर किए सौदो का भुगतान करने से इन्कार किया। इस पर भारी तादाद म मुकदमे चले। चीफ जस्टिस मक्लीड उन दिनो रोज 20-30 ऐसे मुकदमो को निपटा देते थे। मुकदमो की बाढ के कारण ही एक एक दिन म 20 25 मुकदम सुन लिए जाते थ। इसम कागा और भूलाभाई को खूब कमाई हुई, क्योकि ऐसे अधिकाश मामले उन्ही के पास आते थे और हर एक मुकदमे मे वे ही दोनो पक्षो के वकील होते थे।

कागा और भूलाभाई दोनो की ही कमाई इस तरह खूब बढी। मगर भूलाभाई ने बहुत जल्द कागा से बाजी मार ली और सभवत वर्षों तक बम्बई के वकीलो मे उनकी वकालत ही सबसे बढी चढी रही और उन्होने ही सबसे ज्यादा कमाई की। चम्बर जज के बोड मे होने वाले प्राय सभी मुकदमो म वह वकील होते और एक ही दिन मे वह अक्सर सभी तरह के 30 40 तक मुकदमो म खडे होते थे। इसके अलावा उन दिनो ओरिजिनल साइड मे सप्ताह के बीच बुधवार की छुटटी रहा करती थी जिसका लाभ उठाकर ओरिजिनल साइड के प्रमुख वकील उस दिन अपीली साइड मे अपीलो की परवी करते थ। भूलाभाई के लिए यह असाधारण बात नही थी कि बुधवार के दिन लगभग एक दजन अपीलो की वह परवी करते थे।

वकालत के इस भारी काम को भुगताने की भूलभाई ने एक अनोखी तरकीब निकाली थी। उन दिनो ओरिजिनल साइड मे वकालत करने वाले वकीलो को दूसरे वकील की माफत परवी करने की छूट थी। भूलाभाई ने इसका लाभ उठाया। उनके पास सीखने वाले अनेक नए वकील थे, जो अपने काम म होशियार थ। इसलिए भिन्न भिन्न अदालतो मे मुकदमे लेने मे उन्हे कोई दिक्कत नही थी। असली रूप मे

होता यह था कि एक अदालत में वह पैरवी कर रहे होते, और दूसरी में उनसे प्रशिक्षण लेने वाले दो-तीन जूनियर वकील उनकी तरफ से मामले निपटाते।

यह तरीका काफी लम्बे अर्से तक चला। इस तरह अपने सहायकों से काम करवाकर एक ही समय कई अदालतों में होने वाले मुकदमों की फीस उन्होंने कमाई। आश्चर्य की बात है कि अनेक मामलों में बड़े उदार दिल के होने पर भी जिन जूनियर वकीलों के सहारे वह ऐसी कमाई करते थे उन्हें उस काम के लिए उन्होंने कभी कुछ नहीं दिया। यह सही है कि इन वकीलों ने खुशी से ही ऐसा किया क्योंकि इससे उन्हें काम का अनुभव हुआ और अदालत में उनकी साख जमी। पर भूलाभाई ने इस तरह जो कि सही तरीका नहीं था, जो भारी कमाई की, उससे उन अनेक वकीलों को ईर्ष्या होना स्वाभाविक था। उनकी साख कुछ जम चुकी थी, पर उन्हें मुकदमे तभी मिल सकते थे जब भूलाभाई इस तरह अंधाधुंध एक साथ कई अदालतों के मुकदमे न लेते। नतीजा यह हुआ कि बार एसोसिएशन में शिकायत की गई, जिसने जांच कमेटी मुकर्रर की और उसके बाद यह तरीका बंद हो गया।

भूलाभाई के मुकदमों में सालिसिटर सूरजमल बी० मेहता द्वारा 'बाम्बे क्रानिकल' के अंगरेज संपादक बी० जी० हार्निमैन पर चलाया गया मानहानि का मुकदमा बड़ा सनसनीदार रहा। हार्निमन भारतीयों में बहुत लोकप्रिय थे। वह हमेशा भारतीयों का पक्ष लेते थे। सूरजमल ने 'बाम्बे क्रानिकल' में निकले दो लेखों को मानहानिकारक बताकर उन पर पच्चीस हजार रुपये का दावा किया था।

मामला इस प्रकार था कि सालिसिटर सूरजमल के एक मुवक्किल तात्या साहब होल्कर की संपत्ति हाजी अहमद हाजी दादा ने खरीदनी मंजूर की थी, लेकिन उस संपत्ति का पहले ही किसी और से सौदा किया जा चुका था और उसने इस बिना पर मुकदमा चलाकर सफलता भी पा ली थी। उस मुकदमे में सूरजमल ही तात्या साहब का सालिसिटर था। 'बाम्बे क्रानिकल' में छपे लेख में सूरजमल पर यह आरोप लगाया गया था कि उसके बाद उसी ने हाजी दादा को उकसाकर अपने मुवक्किल पर मुकदमा चलवाया और उसे यह आश्वासन दिया कि मैं तात्या से

20 या 25 हजार रुपया क्षतिपूर्ति का दिलवा दूगा। इसके लिए हाजी से 3 हजार रुपये लेने की बात तय हुई और सूरजमल ने सौ रुपया महीना पाने वाले अपने एक क्लर्क के नाम इस रकम के लिए हाजी से प्रोनोट लिखा लिया। बाद म मामला 9 000 रुपये पर तय हुआ। पर सूरजमल ने दादा से पूर्व निश्चित तीन हजार की ही माग की। दादा ने इस बिना पर इनकार किया कि क्षतिपूर्ति का रुपया बीस हजार से बहुत कम मिला है। इस बीच सूरजमल का वह क्लर्क मर गया और सूरजमल ने उसके भाई से दादा के खिलाफ प्रोनोट के तीन हजार की वसूली का दावा कराया। दादा ने मुकदमे में सारी स्थिति स्पष्ट कर दी और क्लर्क का भाई भी यह न बता सका कि मेरे परलोकवासी भाई ने ऐसा क्या काम किया था जिसके बदले म उसे इतने रुपये मिलते। तब सूरजमल ने स्वय प्रोनोट की तसदीक कर भाई के दावे का समर्थन किया। लेकिन जिरह म दादा के इस आरोप की सफाई वह नही दे पाया कि मैने स्वय अपने मुवक्किल के खिलाफ मुकदमा करवाया था। दूसरे जवाब भी उसके सतोषजनक नही थे। ऐसी हालत म जिरह के बीच ही भाई की तरफ से, जो कि उस मुकदमे का वादी था एकाएक प्रतिवादी (दादा) को मुकदमे का खर्च देने की रजामदी के साथ मुकदमा खत्म कर देने की दरख्वास्त पश हुई और सूरजमल ने न तो उसका विरोध किया, न सालिसिटर के धधे के दुरुपयोग के इल्जाम को गलत सिद्ध करने का मौका देने की माग की। जज ने इस पर टिप्पणी की कि मुद्दई ने मुकदमा वापस लेकर बुद्धिमानी ही की।

इसी पर 'मुवक्किल और सालिसिटर' शीर्षक से 'बाम्बे क्रानिकल' ने लिखा कि यदि मुकदमे म सामने आई बातें सच हैं और यह आरोप सही है कि सूरजमल ने जानबूझकर अपने एक मुवक्किल को दूसरे मुवक्किल के खिलाफ मुकदमे के लिए उकसाया, तो सालिसिटर के सम्मानपूर्ण धधे के लिए उपयुक्त व्यक्ति नही हो सकता। इसी के विरुद्ध सूरजमल का मानहानि का दावा था जो 1916 से 1917 तक चला और अत म फैसला सूरजमल के खिलाफ और हार्निमन के पक्ष म रहा। शुरू म मुकदमा जस्टिस मैक्लोड के सामने पेश हुआ। उन्होने हार्निमन के खिलाफ फसला दिया। इस मुकदमे से काफी उत्तेजना पैदा हुई, क्योकि यूरोपियन समाज हार्निमन से इस कारण नाराज था कि वह भारतीयो का पक्ष लेते थे।

मुकदमे की अपील की गई और प्रधान जज स्काट ने यह निर्णय दिया कि हार्निमन ने अच्छी नीयत से सार्वजनिक महत्व के विषय पर टिप्पणी की। यद्यपि उनके साथी जज हीटन की राय हार्निमन के खिलाफ थी, परन्तु प्रधान जज का फैसला माना गया और हार्निमन मुकदमा जीत गए। इसकी अपील तीन जजों की बेंच के सामने हुई और तीनों का फैसला हार्निमन के पक्ष में हुआ।

इस अपील में हार्निमैन की तरफ से बहादुरजी और चिमनलाल सीतलवाड़ के साथ भूलाभाई भी वकील थे। उन्होंने यद्यपि जूनियर के रूप में काम किया लेकिन मुकदमे की सफलता में उनका बहुत योग रहा।

कांगा तो बराबर दीवानी मामले ही लेते थे, पर भूलाभाई अक्सर फौजदारी मामले भी ले लेते थे। कुछ फौजदारी मामलों में तो उन्हें विशिष्ट सफलता भी मिली। लेफ्टिनेंट कर्नल चार्ल्स ग्लेन कालिंस पर चले फौजदारी के मामले का उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। कर्नल कालिंस 1916 में दो महिलाओं के साथ विश्व भ्रमण कर रहे थे। भारत यात्रा के समय रुपया कम हो जाने पर उन्होंने बंबई व दिल्ली के कुछ जौहरियों को बैंक ड्राफ्ट दिया और उनसे जवाहरात खरीदे। बैंकों ने ड्राफ्ट का भुगतान करने से इनकार कर दिया। मामला 1 लाख 60 हजार रुपये के भुगतान का था और कालिंस उस समय अमरीका लौट चुका था। इसलिए जिन तीन जौहरियों को भुगतान होना था, उनमें से एक के आग्रह पर वारण्ट जारी किए गए और नवम्बर 1917 में न्यू ओरलीन्स में कालिंस को गिरफ्तार कर उसे भारत लाने की कारवाई की गई। कोई पांच साल से ज्यादा वक्त इसमें लग गया और इस बीच उसे लगभग एक हजार दिन अमरीका की विविध जेलों में काटने पड़े। उसे भारत लाया गया। यहां भी उसे कई महीने हिरासत में रहना पड़ा। अंगरेजों में इससे बड़ी हलचल थी। इसका इसी से पता चलता है कि बम्बई के तत्कालीन गवर्नर की पत्नी भी अदालत में कालिंस के मुकदमे की कारवाई देखने आई थीं। भूलाभाई ने इसमें कालिंस की तरफ से पैरवी की। कांगा एडवोकेट जनरल हो चुके थे, मुद्दई पक्ष में थे।

कालिंस ने अपना मुकदमा अंगरेजों की प्रमुख सालिसिटर फर्म के सुपुर्द किया

था पर अगरज मालिसिटरो ने भूलाभाई को ही सफाई पक्ष की पैरवी के लिए रखा। भूलाभाई ने ऐसी बढ़िया पैरवी की कि बम्बई के जूरियों ने शायद ही सुना हो। परिणामत कालिम छोड़ दिए गए। भूलाभाई के प्रति कृतज्ञता से गदगद होकर कालिम की जिस तरह हिचकियां बंध गई, वह दृश्य हृदय द्रावक था।

जैनों के तीर्थस्थान पारसनाथ शिखर का मामला भी बड़ा दिलचस्प है। वकील के रूप में भूलाभाई की कार्यपद्धति पर भी उससे प्रकाश पड़ता है। उनके साथ जूनियर के रूप में इस मुकदमे में काम करने वाले एक वकील ने उसका विवरण दिया है। इस तीर्थस्थान पर पूजा के अधिकार को लेकर जैन सम्प्रदाय के दो वर्गों में मुकदमा चला था। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदाय के जैन यहां तीर्थ यात्रा को जाते और पूजा पाठ करते हैं। उसका प्रबन्ध बराबर श्वेताम्बरों के हाथ में रहा था और 1918 में उन्होंने पालगंज के राजा से उसकी मिल्कियत खरीद ली थी। इसके बाद 1920 में अपने इस अधिकार का उपयोग कर उन्होंने पहाड़ी के शिखर पर खतरियां तथा रात में चौकसी के लिए चौकीदारों की नियुक्ति की और वहां आने वाले तीर्थयात्रियों के लिए धर्मशालाओं के साथ साथ जैनों, पुजारियों और वहां काम करने वाले कर्मचारियों के लिए मकान बनाने भी शुरू किए। दिगम्बरों ने पवित्र शिखर पर फाटक और भवन बनाने पर आपत्ति की। उनका कहना था कि इससे गिरि शिखर पर पूजा के उनके अधिकार में हस्तक्षेप होता है और उनके शास्त्रों के मतानुसार शिखर अपवित्र होता है। साथ ही पूजा विधि पर भी मतभेद था। श्वेताम्बर लोग तीर्थकरों के चरण चिह्नों पर तबक तथा अन्य पूजा सामग्री चढ़ाकर उनकी पूजा करते थे। झगड़ा इस बात पर था कि दिगम्बर कहते थे कि चरण धोने का हक हमारा है और श्वेताम्बर कहते थे कि ऐसा नहीं किया जा सकता। श्वेताम्बरों ने कुछ नए चरणचिह्न बनाए थे। उन पर भी मतभेद था।

अदालत में मामला आने पर हजारीबाग की मातहत अदालत (सबार्डिनेट कोर्ट) ने मुद्दई (दिगम्बरों) के हक में फैसला देते हुए उनकी पूजा विधि को मान्य रखा और श्वेताम्बरों द्वारा फाटक तथा भवन बनाने पर रोक लगा दी। श्वेता

म्बरो ने पटना हाईकोट मे इसकी अपील की। यह 1928 की बात है। बहुत बडी फीस देकर श्वेताम्बरो ने इसमे भूलाभाई को अपना वकील बनाया था।

सही स्थिति की जानकारी हासिल करने के लिए भूलाभाई पारसनाथ शिखर गए। उसकी चोटी तक जाकर चरणचिह्नो आदि को प्रत्यक्ष देखा और शनिवार को पटना पहुचे। अपील की सुनवाई सोमवार को होनी थी। बम्बई से रवाना होने से पहले उन्हें जिल्दबद जो कागजात दिए गए, उनमे मातहत अदालत मे की गई दलीलो और उसके फसले के अलावा अन्य दस्तावेज थोडे ही थे। और कोई सामग्री उन्ह नही दी गई थी। एक सहायक जूनियर उनके साथ था। पटना पहुचने पर उन्ह 1000 पृष्ठो की एक और जिल्दबद किताब दी गई जिसमे अपील सम्बन्धी कागजात थे। अपील का फसला बहुत से कानूनी मुद्दो, मातहत अदालत मे पश हुई शहादतो तथा स्थानीय काश्तकारी कानून के आधार पर होना था। इन सबके अध्ययन के लिए वक्त पर सारी सामग्री का मिलना जरूरी था, पर यहा तो काश्तकारी कानून की कापी तक नही थी। भूलाभाई का इस पर नाराज होना स्वाभाविक था। जब शाम का श्वेताम्बरो के प्रतिनिधि आनदजी कल्याणजी के आदमी य चीजें लेकर उनके पास आए, तो वह उन पर बरस पडे, क्योकि सारी सामग्री का ध्यान पूवक अध्ययन करने के लिए वक्त नही रहा था। लकिन अपील श्वेताम्बरो के लिए बहुत महत्व की थी और वह उन्ह जिताने का निश्चय कर चुके थे। इसलिए कुछ न कुछ करना ही था। अत उन्होने 1000 पृष्ठो की नई किताब की जिल्द फाडकर अदालत मे पेश किए गए कागजो को अलग किया और अपने साथ मामले का अध्ययन करने वाले सहायक वकील को उनमे से काम के कागज छाटने के लिए सौपकर, महत्व के शेष भाग को अपने अध्ययन के लिए रखा। इसके बाद टनेंसी एक्ट की सम्बधित धाराओ पर सरसरी नजर डाल मामले पर नए सिर से विचार शुरू कर दिया।

अपने दिमाग को ताजा करने के लिए भूलाभाई अपने सहायक के साथ हवाखोरी के लिए कार म चल दिए। कार म जाते हुए एक शब्द भी वह नही बोले और मुकदमे के बारे म चिन्तन करते रहे। खाने मे भी उस रात उनका खास ध्यान न था और बहुत जल्दी अपने सोने के कमरे म चले गए। जिस बगले मे

ठहराए गए थे, उसी म एक अलग कमरे म उनके सहायक का स्थान मिला था। रात के कोई 1 बजे उन्होने आकर अपने सहायक का दरवाजा खटखटाया और बड उत्साह के साथ जोर से कहने लगे "पा लिया, पा लिया।" बात यह थी कि मुकदमे के सभी पहलुओ पर गभीरता से विचार करके उन्होंने दलील का ऐसा मुद्दा ढूढ निकाला था, जो उनके खयाल म उनके मुवक्किल के काम का था। अपने सहायक को उन्होने वह दलील सुनाई और पूछा कि यह दलील ठीक है या नही? सहायक ने कहा ठीक है। उन्होने कहा, 'मेरा मुह देखकर ठीक न कहना, सचमुच दलील ठीक हो, तभी ठीक कहना।'

इसके बाद सोमवार को अपील की सुनवाई होने पर उन्होंने उसी दलील से साथ बहस शुरू की। वह तीन घण्टे तक धारा प्रवाह बोलते रहे। इसके बाद जज ने विपक्ष के वकील को अपना पक्ष पेश करने को कहा। विपक्ष मे दिगम्बरो की ओर से कलकत्ता के मशहूर अगरेज बरिस्टर पघ थे, जिनके साथ सहायता के लिए कोई जूनियर वकील भी आए थ। फसला भूलाभाइ के पक्ष मे ही रहा और श्वेताम्बरो की अपील की मुख्य बातें मान ली गई।

भूलाभाइ ने जिस तरह इस मुकदमे की परवी की, उससे पता चलता है कि कठिन परिस्थिति म उनका दिमाग कसे काम करता था।

अपील का जब फसला हुआ उस समय भूलाभाई इगलैंड मे थे। वहा से उन्होने अपने सहायक को एक पत्र मे लिखा "यहा मैं पघ से मिला। हमारी अपील के फसले पर उन्होने कहा 'एक को छोड बाकी सब मुद्दो म मेरी जीत रही लेकिन अपील म जीत तुम्हारी हुई।"

पहाडी शिखर को लेकर भूलाभाई का एक दूसरा मुकदमा भी बडा दिलचस्प है। काठियावाड के तत्कालीन पालीताणा राज्य मे स्थित शत्रुजय पवत के मामले म उन्होने जो योगदान किया उससे वकील के रूप म उनके इस गुण का पता चलता है कि मुकदमे म वाजिब समझौते की गुजाइश हो तो उसके लिए वह तयार ही नही रहते बल्कि प्रयत्न भी करते थे।

शत्रुजय पवत भी जैनो का तीथस्थान है। प्राचीन काल के कुछ मदिर वहा हैं जिनमे प्रनिष्ठापित प्रतिमाओ की श्वेताम्बर लोग पूजा करते हैं। इनका प्रबध आनदजी कल्याणजी नाम की सस्था करती है, जिसके पास इसके लिए मुगलो की सनद है। जनो को इस पवत की सनद मिलने के बहुत समय बाद पालीताणा दरबार के पास यह इलाका आया। तीथयात्रियो की सुरक्षा के लिए रखोपा के रूप म श्वेताम्बरो ने पालीताणा दरबार को एक निश्चित रकम देना स्वीकार किया। ब्रिटिश सरकार के हस्तक्षेप से इस विषय मे श्वताम्बर सप्रदाय और पालीताणा दरबार के बीच जो इकरारनामा हुआ, उसके अनुसार 40 वष तक हर साल 15,000 रुपये श्वेताम्बरो द्वारा पालीताणा दरबार को दिए जान की बात तय हुई। दोनो पक्षो के बीच का झगडा ब्रिटिश सरकार के सीधे हस्तक्षेप स तय हुआ था, लेकिन बाद म इस पर जोर दिया गया कि कोई भी विवाद खडा होने पर जनो को पहले दरबार के पास ही फसले के लिए जाना चाहिए। 40 साल की अवधि समाप्त हो जाने पर, 1926 म, पालीताणा दरबार ने राजकोट स्थित अगरेज सरकार के एजेंट का आवेदन भेजा कि इस तरीके का बजाए दरबार को तीथयात्रियो पर कर लगान की प्रथा फिर से शुरू करने दी जाए। जना ने इस पर आपत्ति की। उन्होने कहा कि अपना मामला सीधे एजेंट के पास रखने का हम हक है जो चाहे तो हमारे आवेदन पत्र की नकल दरबार का भेज सकते हैं। इस पर लम्बा विवाद चला। आखिर एजेंट ने जनो का आवेदन सीधे स्वीकार कर लिया और दानो पक्षो का अपना अपना मामला समझाने के लिए बुलाया। उस वक्त जनो की तरफ से चिमनलाल सीतलवाड थे और पालीताणा दरबार की ओर से भूलाभाई। दानो पक्षो की बातें सुनकर एजेंट वाटसन ने जन सप्रदाय द्वारा पालीताणा दरबार का हर वष दी जान वाली रकम बढाकर एक लाख रुपये निश्चित की और दरबार तथा जनो के बीच सम्बन्ध की व्याख्या करते हुए कहा कि केवल ऐसे मामलो म ही जनो का सीधे ब्रिटिश सरकार के पास जाने का हक है जो बहुत महत्वपूण हो।

स्पष्ट ही यह निणय जनो के प्रतिकूल था, इसलिए उन्होने सपरिषद गवनर जनरल के यहा अपील की। लाड इर्विन ने 1923 की मई म शिमला म उसकी सुनवाई रखी। उस समय भूलाभाई दार्जिलिंग म थे। वहीं से दरबार ने उन्हें

बुलवाया और जैनों की ओर से चिमनलाल सीतलवाड ने परवी की। दोनों पक्षों की दलीलें सुनकर लार्ड इर्विन ने उन्हें आपस मे समझौता करने के लिए कहा। उसके बाद जो हुआ, वह स्वयं चिमनलाल सीतलवाड के अनुसार इस प्रकार है 'मैंने और भूलाभाई ने आपस में बातचीत करके समझौते की कुछ शर्तें निश्चित कीं, जिन्हें दोनो पक्षों को समझाकर, राजी करने की कोशिश की। पर जैनों द्वारा हर साल दरबार को कितनी रकम दी जाए, इस पर समझौता नहीं हो सका। तब तय हुआ कि दोनो पक्षों द्वारा स्वीकृत शर्तें स्वीकृति के लिए लार्ड इर्विन को देकर वार्षिक रकम तय करने का काम उन पर छोड दिया जाए। हमारी समझ में कितनी रकम वाजिब होगी, यह आपस में विचार करके निजी तौर पर भूलाभाई ने और मैंने, रवानगी में लार्ड इर्विन को बता दिया। हमारी राय के अनुसार ही वाइसराय ने 40 साल के लिए 60 हजार रुपये की रकम प्रतिवर्ष तय की और सभी पक्षों ने उसे स्वीकार कर लिया।"

1927 तक भूलाभाई ने वकालत में इतनी सफलता प्राप्त कर ली थी कि सारे देश मे उनकी ख्याति हो गई थी और वह देश के एक प्रमुख वकील माने जाने लगे थे। इस तरह कोई 40 साल तक उन्होने वकालती जीवन बिताया। इसमें शक नहीं कि राजनीतिक क्षेत्र मे उन्होंने राष्ट्र की महान सेवा की, फिर भी यह कहना गलत नहीं होगा कि उनका क्षेत्र वकालत ही था। उनकी बडी सफलता वकालत मे ही रहा, और देश की हाईकोर्टों में उनके जोरदार दलीलों की धाक बधी थी। उनके जीवन का अंतिम अध्याय भी, आजाद हिंद फौज के अफसरों के मुकदमे से ही सम्बंधित रहा जिन्हें अपनी कानूनी कुशलता और भाषण शक्ति से उन्होंने न केवल कानून के भारी दण्ड से बचाया बल्कि राष्ट्र के हित में एक बहुत बडी राजनीतिक विजय भी प्राप्त की।

उनके समकालीन तथा जूनियर वकीलों ने वकालत में उनकी भारी सफलता के विविध कारण बताए हैं। उनकी अद्भुत कार्यक्षमता, पैनी बुद्धि और तुरंत मामले की तह तक पहुचने की आश्चर्यजनक शक्ति का सभी ने बखान किया है। कहा गया है कि प्रभावोत्पादक दलील देने में अपने सभी साथियों को उन्होंने मात कर दिया था। उनके एक आलोचक ने भी यह स्वीकार किया है वकील के रूप में

भूलाभाई ने बडी प्रखर बुद्धि का परिचय दिया।" एक चीफ जस्टिस ने, जो उन्हें अच्छी तरह जानते थे, कहा है "भूलाभाई का दिमाग बडा तेज था, भाषण शैली कायल करने वाली थी और दलील के मुद्दे बिलकुल ठीक होते थे। अपने इन गुणो के कारण वह कहीं भी चमके बिना नही रहते, ऐसा मेरा विश्वास है।" औरो ने भी उनकी प्रखर बुद्धि, अद्भुत स्मरण शक्ति और प्रभावशाली भाषा की सराहना की है। उनके चेम्बर म काम करने वाले एक जूनियर ने उन्हे 'घोर परिश्रमी, प्रखर बुद्धि, चतुर और अत्यन्त प्रभावशाली वकील" बताया है।

मैं उनके साथ कई मुकदमो म रहा और बाद म कई मामलो म उनके विपक्ष मे भी रहा। इसलिए मैं भी उन्हे अच्छी तरह जानता हू। नि सदेह वह कठोर परिश्रमी थे, लेकिन यह गुण तो प्राय सफल वकीलो मे होता ही है। कानून और कानून के उसूलो की जानकारी भी सभी वकीलों के लिए बहुत जरूरी है और वकालत म सफलता प्राप्त करने वाले अधिकाश लोगो म वह बहुत हद तक होती ही है। भूलाभाई म दूसरो की अपेक्षा जो विशेषता थी, वह मेरे ख्याल म यह थी कि उनकी बुद्धि बहुत प्रखर थी भाषण कायल करने वाला तथा भाषा बडी अच्छी थी। वकालत के इस गुर को वह पूरी तरह जानते थे कि जज को कैसे प्रभावित करना चाहिए। अपनी प्रखर बुद्धि से वह जज के रग-ढग, हाव भाव और सवालो से जान लेते थे कि उसका दिमाग किस दिशा मे काम कर रहा है। इसके बाद वह अपनी मीठी शैली म इस तरह पक्ष का प्रतिपादन करते थे, मानो जज के मन म जो है उसी की पुष्टि कर रहे हैं और जब जज उससे प्रभावित हो जाता, तब अचानक दलीलो को ऐसा मोड देते जिससे जो वह स्वय चाहते उसकी पुष्टि होती। इसम वह विविध युक्तियो से काम लेते और ऐसी स्थिति पैदा कर देते कि जज के उनकी बात गले उतरे बिना नही रहती। यही कारण है कि अनेक मामलो म जज ने शुरू मे जो रुख लिया, उससे लगभग बिलकुल उलटा उसके निर्णय मे सामने आया। जिन लोगो को अवसर उन्हे पैरवी करते देखने का मौका मिला, उन सबने उनकी जज को कायल करने की शक्ति को लक्षित किया। भूलाभाई की प्रतिभा या ज्ञान कानून के किसी विशेष क्षेत्र तक सीमित न था। किसी भी कानूनी मामले के सभी पहलुओ को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से वह समझ लेते थे। शायद इसका कारण यह हो कि अपनी भारी और विविध वका-

लत मे तरह तरह के मामलो का अध्ययन करते हुए उनका दिमाग इतना तेज हो गया था कि विविध प्रकार की और पेचीदी से पेचीदी समस्याओ का भी वह तुरन्त समझ लेत थे।

स्वय भूलाभाई वकालत मे अपनी सफलता का कारण क्या मानते थे, यह एक प्रामाणिक सूत्र से पता चलता है। एक नौजवान वकील ने, जो भूलाभाई का मित्र था और उनकी जोरदार पैरवी तथा अपनी बात दूसरे के गले उतार देने की उनकी शक्ति से चकाचौंध हो गया था, उनसे पूछा कि यह शक्ति आपने कैसे पाई ? कहते हैं कि इस पर भूलाभाई ने जवाब दिया "मेरे मित्र, यह सच है कि मैं अपने मुकदमों मे जी जान लगा देता हू, लेकिन सच पूछो तो यह ईश्वर की देन है, जिसका मैं पूरा लाभ उठा रहा हू।"

अनेक वर्ष उनके निकट सपर्क मे रहने पर मैं कह सकता हू कि यह सच है कि कभी कभी वह डीग हाकते थे और अपने कारनामो का बढा चढाकर बखान करते थे। इसम भी शक नही कि अपनी बहुमुखी क्षमता पर उनका इतना विश्वास था कि अपनी गलती को वह आसानी से स्वीकार नही करते थे, मगर उनके इस बाहरी रूप के पीछे एक ऐसा मानवतापूर्ण और दयालु व्यक्तित्व छिपा हुआ था, जो बडा भावुक था और जिसम कठिनाई तथा मुसीबत म पडे लोगो के लिए गहरी सहानुभूति भरी हुई थी।

3

राजनीतिक जीवन का आरम्भ

भूलाभाई स्वभावत नरमदली थे। इसीलिए कांग्रेस म उत्साहपूर्वक काम करने पर भी उग्रपथी नही बन। राजनीतिक क्षेत्र मे उनका प्रवेश भी कुछ धीमा और भटकता हुआ सा ही हुआ।

राजनीति म उन्ह लाने का श्रेय चिमनलाल सीतलवाड को दिया जाता है जिन्ह उनका गुरु, पथप्रदशक, मत्रदाता और मित्र बताते हैं। लेकिन यह ठीक नही जान पडता। भूलाभाई का राजनीति म सवप्रथम प्रवेश तो एनी बसण्ट के होम रूल लीग आन्दालन के साथ हुआ मालूम पडता है। उसकी ओर वह कसे आकर्षित हुए, यह ता मालूम नही, पर शायद अपने सालिसिटर मित्र छोटूभाई वकील के कारण वह इस आदोलन मे आए। छाटूभाई होम रूल आदालन के उत्साही कायकर्त्ता थे।

इस आदोलन म विभिन्न राजनीतिक विचारा वाले अनेक व्यक्ति एक मच पर आ गये थे। 1918 म ब्रिटिश सरकार लडाई के लिए रगरूटो की भर्ती और युद्ध प्रयास को जोरदार बनाने म सभी भारतीय नेताओ का सहयोग प्राप्त करना चाहती थी। लेकिन उसन शासन म अधिक भाग की भारतीय माग की उपेक्षा की और केवल यथासमय विचार का ही आश्वासन दिया। यह शायद उस कानून की पूवसूचना थी जिसन आगे जाकर 1919 के भारतीय शासन विधान का रूप लिया। तिलक, जिन्ना, जयकर और हार्निमन जसे लोग होम रूल लीग आदोलन म शामिल हो चुके थे, भूलाभाई भी कुछ समय तक उसके सक्रिय सदस्य रहे।

एनी बसण्ट उन दिनो 'भारत मे देशभक्तो की आराध्यदेवी' बन गई थी।

होम रूल लीग के सयुक्त तत्वावधान म 10 जून, 1918 को, हुई एक सभा म व्य
इस बात पर जोर दिया कि काग्रेस और लीग (मुस्लिम लीग) दानो को ज
हो, वही व्यवस्था भारत को स तुष्ट कर सकती है। उसके बाद भी उनकी यह
विचारधारा रही और 3 अगस्त, 1918 को उन्होंने कहा कि "माण्टफोड योजना
थोडी सी स्थानीय स्वराज्य के पुट के साथ भारत म तानाशाही तत्र को ही जारी
रखा गया है।"

हार्निमन द्वारा सपादित 'बाम्बे क्रानिकल' मे 10 जून, 1918 के अक मे होम रूल लीग के दृष्टिकोण को अच्छे ढग से उपस्थित किया गया। उसम बताया गया कि ब्रिटेन के युद्ध-प्रयास मे सहायता देने के लिए इ डियन डिफेंस फोर्स कमेटी बनाई गई थी, जिसके अध्यक्ष चिमनलाल सीतलवाड थे और सदस्यो म औरो के अलावा भूलाभाई भी थे। इसी सिलसिले म 9 जून, 1918 को बम्बई के टाउनहाल मे बम्बई प्रा त की 'वार कानफ्रेंस' (युद्ध परिषद्) हुई। बम्बई के गवनर लार्ड विलिंगडन उसके सभापति थे। युद्ध प्रयास को आगे बढाने की उत्सुकता के बावजूद वह शासन सुधार के बारे मे कोई वचन देने को तयार नही थे। कार्रवाई शुरू करते हुए उ होने कहा, "इस काम (युद्ध प्रयास) मे हमारी सहायता के लिए सभी के सयुक्त सहयोग की चि ता और उत्सुकता के बावजूद, मैं जानता हू कि ऐसे भी लोग हैं जिनका जनता पर काफी असर है और जिनम स अनक होम रूल लीग नाम के राजनीतिक सगठन के सदस्य है। इनकी प्रवृत्तिया पिछले कुछ सालो से इस तरह की रही हैं कि जब तक मैं उन से खुलकर बात न कर लू और उनको समझ न लू तब तक मैं यह विश्वास नही कर सकता कि वे वास्तव मे हमे सहयोग देना चाहते हैं। आगे उन्होंने यह भी कहा, "दिल्ली म हुई कानफ्रेंस के बाद ऐसे कुछ लोगो ने जो भाषण किए या लेख लिखे उनका पिछले कुछ सप्ताह म मैंने अच्छी तरह अध्ययन किया है। उह देखते हुए मैं यह विश्वास नही कर सकता कि इस काम के लिए जिस सयुक्त प्रयत्न की जरूरत है, उसम वे साथ द सकेंगे। उनकी स्थिति यह मालूम पडती है कि परिस्थिति की गभीरता को हम स्वीकार करते हैं, लेकिन जब तक निश्चित अवधि के भीतर होम रूल (स्वराज्य) देने का वादा न किया जाए और अन्य मामलों म भी आश्वासन न दिए जाए तब तक हम जनता

मे युद्ध के लिए उत्साह पदा नही कर सकते और न रगरूटो की भर्ती मे सफलता पा सकते हैं। मैं जानता हू कि सौदेबाजी की बात से वे इनकार करेंगे, लेकिन मैंने उनकी स्थिति काफी अच्छी तरह बता दी है और मैं ईमानदारी से मानता हू कि उनकी मदद बहुत उपयोगी नही होगी। निश्चित अवधि म स्वराज की माग पर उन्होंने कहा, "वे अच्छी तरह जानते हैं कि राजनीतिक सुधारो का सारा सवाल इस समय ब्रिटिश मन्त्रिमडल के हाथ मे है इसलिए जसा वचन व चाहते हैं, उसे देना वाइसराय या अन्य किसी के लिए बिलकुल असम्भव है।"

कानफ्रेंस मे पहला प्रस्ताव पश होते ही गवनर ने कहा कि उसमे किसी तरह का सशोधन मैं स्वीकार नही करूगा। तिलक को सबसे पहले उस पर बोलने को बुलाया गया। उन्होने अपनी और होम रूल लीग की सम्राट के प्रति गहरी वफादारी प्रकट करते हुए कहा "यह प्रस्ताव मेरे विचार मे एक दृष्टि से दोषपूर्ण हैं, लेकिन खेद की बात है कि जो काय विधि अपनाई गई है उसके अन्तगत मैं इसम सशोधन उपस्थित नही कर सकता।" इस पर गवनर ने कहा कि तिलक सशोधन पेश करना चाहते हो तो ऐसा नही हो सकता, यह शुरू मे ही कहा जा चुका है। तिलक ने कहा कि मैं सशोधन पेश नही कर रहा हू। इसके बाद उन्होंने कहा कि 'सरकार को सहयोग देने के लिए कुछ बातें आवश्यक हैं। घर की रक्षा घर के शासन के बिना नही हो सकती।" वह और कुछ कह उससे पहले ही [illegible] ने उन्हे टोका और कहा कि मैं राजनीतिक बहस नही होने द सकता। तिलक [illegible] भी बोलने लगे तो गवनर ने उन्हे रोक दिया। इस पर तिलक कानफ्रेंस [illegible] गए। उसके बाद नरसिंह चिन्तामण केलकर के बोलने की बारी था, [illegible] के पहले ही गवनर ने कहा कि मैं राजनीतिक बहस नही होने [illegible] भी हार्निमन आदि के साथ कानफ्रेंस छोडकर चले गए। [illegible] आई। उन्होने कहा —"आपने होम रूल पार्टी की ईमानदारी [illegible] जाहिर किया इससे मुझे मामूली दुख नही, बहुत [illegible] मुझे इसका विरोध करना ही होगा। हामरूल पार्टी [illegible] साम्राज्य की रक्षा म मदद देने के लिए [illegible] जितना कि और कोई हो सकता है [illegible]

ने भी होमरूल वालो पर लगाए इस आरोप का खण्डन किया कि उनमे ५। का अभाव है।

गवर्नर लार्ड विलिंगडन ने हस्तक्षेप करते हुए कहा, "जिन्ना ने मेरी की है। मै उन्हे कुछ नही कहना चाहता। लेकिन मेरे खयाल म मैंने होमरूल वाल की राजभक्ति पर सदेह नही किया है।" जिन्ना ने कहा कि यदि आप देखें और बता सकें कि मैंने गलत अर्थ लगाया है तो मैं अपना विरोध वापस ले लूगा। गवर्नर ने अपने भाषण का वह अश पढा तो जिन्ना की बात ही सही निकली। पर बडी उत्तेजना फैली और एक बडे अफसर जिन्ना पर चिल्लाये, "बैठ जाओ!" तब गवर्नर ने यह कहते हुए सभा समाप्त कर दी कि होमरूल वाले सरकार का समर्थन करने के लिए शर्तें लगाना चाहते हैं। पर यह साम्राज्य पर सकट का समय है इसलिए बम्बई प्रान्त मे रहने वाले साम्राज्य के हर नागरिक से मैं आशा करूगा कि उनमे साम्राज्य के प्रति कर्त्तव्य का पूरा भान हो।' इस तरह कानफ्रेंस समाप्त हुई और उसके बाद बहिर्गमन करने वाले तिलक प्रभृति नेताओ ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसका शीर्षक था 'लार्ड विलिंगडन की ज्यादती।'

तिलक और दूसरे के द्वारा सभा का त्याग भूलाभाई को पसन्द नही आया यह बाद की घटनाओ से स्पष्ट है। वह इस लिए कि कुछ समय बाद दक्षिण अफ्रीका के सम्बन्ध मे भी लार्ड विलिंगडन के सभापतित्व मे ऐसी ही एक सभा हुई बम्बई होमरूल लीग के प्रतिनिधि के रूप मे जिन्ना जयकर, भूलाभाई और हार्निमन को उसम निमन्त्रित किया गया। होमरूल लीग की कमेटी मे उस पर विचार करके निश्चित किया गया—कि तिलक को बोलने म रोकने के विरोध-स्वरूप किसी को उसमे नही जाना चाहिए। भूलाभाई इससे सहमत नही थे। इसलिए उन्होने होमरूल लीग से इस्तीफा दे दिया और उस सभा म शामिल हुए। इस तरह होमरूल लीग की प्रवृत्तियो मे उनका सहयोग थोडे ही समय रहा। काग्रेस वालो ने इसके लिए उनकी आलोचना की और सबसे ज्यादा आलोचना उस बल्साड नगर म हुई जहा के वे रहने वाले थे।

अनेक वर्षों बाद 1934 मे अपने एक भाषण मे उन्होने इस घटना का इ

प्रकार उल्लेख किया—"मुझे आपके सामने यह स्वीकार करने में शर्म नहीं कि 1917 के आसपास गवर्नर लार्ड विलिंगडन का साथ देने के लिए, जो अब भारत के वाइसराय हैं, मैंने होम रूल लीग से इस्तीफा देकर अपना राजनीतिक जीवन खत्म कर लिया था। लार्ड विलिंगडन ने कहा था कि युद्ध पराधीन राष्ट्रों को स्वाधीन करने के लिए लड़ा जा रहा है और अंगरेजों की बातों पर उस समय मुझे पूरा विश्वास था।"

एनी बसण्ट के विचार कुछ ही महीनों में बदल गए। बंबई में हुए कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में (सितम्बर 1918) उनके अनुयायी काफी थे और उनका असर भी बहुत था। लेकिन दिल्ली में हुए अधिवेशन (दिसम्बर 1918) में उनका वह प्रभाव नहीं रहा। कारण स्पष्ट था। रौलट बिल का उन्होंने समर्थन किया और उसके बाद न केवल वह नरमदलियों का समर्थन करने लगीं, बल्कि शासन सुधारों की योजना में संशोधन के लिए कांग्रेस द्वारा इंगलैंड को प्रतिनिधि मंडल भेजने का भी उन्होंने विरोध किया। इसके बाद 1919 के शासन सुधार सामने आने पर, 1922 में, उन्होंने यह कहकर उनका समर्थन किया कि इनसे भारत को स्वतंत्रता मिल सकती है। सच तो यह है कि 1920 के बाद से ही राजनीति में उनका कोई स्थान नहीं रहा था। फिर भी यह मानना ही पड़ेगा कि भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय राजनीति के एक बहुत नाजुक दौर में श्रीमती बसण्ट ने बड़ा काम किया और राजनीतिक तथा सांस्कृतिक, दोनों ही दृष्टियों से, भारत के राष्ट्रीय पुनरुत्थान में उनका महान योग रहा। स्वराज्य के विचार को भारत भर में फैलाने में जिस उत्साह से उन्होंने काम किया, उसे भारत कभी नहीं भूल सकता।"[1]

1919 में चिमनलाल सीतलवाड को सरकार ने सर का खिताब दिया। तब भूलाभाई ने उन्हें बधाई देते हुए लिखा था— 'आपके इस सम्मान से मैं बड़ा खुश हूं। ऐसा लग रहा है मानो यह सम्मान मेरा ही है। निस्संदेह किसी वकील को ऐसा सम्मान मिलने का यह पहला ही अवसर है।'

---

[1] आर सी मजूमदार की 'हिस्टरी आफ फ्रीडम मूवमेण्ट इन इंडिया' से (खंड 4 पृ० 44 45)

चिमनलाल सीतलवाड होनहार नौजवानों को राजनीति में आने के लिए हमेशा प्रोत्साहन देते थे। 1923 में उन्होंने भूलाभाई देसाई को बंबई सरकार की कार्यकारी परिषद का सदस्य बनाने की कोशिश की। उस समय वह स्वयं एक्जीक्युटिव कौंसिल के सदस्य थे, लेकिन कुछ निजी कारणों से पदत्याग करना चाहते थे। चुन्नीलाल मेहता को, जो उस समय वहां एक मिनिस्टर थे, कार्यकारी परिषद का सदस्य बनाने का सुझाव आया, लेकिन चिमनलाल सीतलवाड का विचार था कि 'मिनिस्टरों को तो पूरी तरह स्वतंत्र होना चाहिए। सरकारी नौकरों पर उनकी नजर नहीं रहनी चाहिए विशेषकर उन पदों पर जो गवर्नर के हाथ में हों।' इस विचार से सहमत हो गवर्नर भूलाभाई को वह पद देने के लिए तैयार हो गए। भूलाभाई उस समय इंगलैण्ड में थे, इसलिए भारत मंत्री लार्ड पील की मार्फत 22 मई, 1923 को, उन्होंने भूलाभाई को यह संदेश भेजा—"आपको बंबई सरकार की कार्यकारी परिषद की सदस्यता स्थायी रूप से स्वीकार करने के लिए कहा जाने वाला है। पिछली बार जब आपसे मैंने इस बारे में बात की थी तो आपने मेरी इच्छा और सलाह मानने की रजामन्दी दिखाई थी। मेरी निश्चित राय और इच्छा है कि सार्वजनिक हित में आपको त्यागपूर्वक इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। मिलने पर सब स्पष्ट करूंगा। मैं यह पद छोड़ रहा हूं लेकिन यह अच्छी तरह समझ लें कि मेरा पदत्याग सरकार से किसी मतभेद के कारण न होकर अन्य कारणों से है। इसलिए पद स्वीकार करने में जरा भी संकोच न करें। कृपया तार से सहमति भेजें और बताएं कि आप कब तक वहां से चल सकेंगे। जल्दी से जल्दी पद ग्रहण करने की कोशिश करें। पत्नी ठीक होगी ऐसी आशा है।"

इसके दूसरे ही दिन बंबई के गवर्नर का विधिवत नियुक्तिपत्र भी पहुंच गया। लेकिन भूलाभाई की पत्नी इच्छाबेन कैंसर के रोग से पीड़ित थी। इसलिए भूलाभाई पद स्वीकार नहीं कर सके। एक तरह से यह अच्छा ही हुआ, क्योंकि चिमनलाल सीतलवाड के सार्वजनिक जीवन के व्यापक अनुभव के बावजूद यह कहा जा सकता है कि भूलाभाई ने 1923 में कार्यकारी परिषद की सदस्यता स्वीकार कर ली होती तो राष्ट्र उनकी उस बहुमूल्य सेवा से वंचित ही रहता जो अपने जीवन के शेष तेईस वर्षों में उन्होंने की।

1922 और 1923 भूलाभाई के लिए चिंता और मुसीबत के वर्ष रहे। इच्छाबेन 1922 में एकाएक बीमार हो गई थीं। जब यह पता चला कि कैंसर का महा रोग उन्हें लग गया है तो स्वभावत: उन्हें अपने बच्चे की चिंता हुई जो उस समय मुश्किल से 14 साल का था। धीरूभाई (पुत्र) हट्टे कट्टे तो कभी नहीं रहे थे। इसस बीमार पड़ जाने पर मां को उनकी चिंता अलग सताने लगी। उनकी मनोदशा उनके पत्र से जानी जा सकती है, जो हमें उपलब्ध उनका शायद एकमात्र पत्र है। 17 जुलाई, 1922 का यह पत्र भूलाभाई देसाई को यूरोप भेजा गया था। प्रियतम संबोधन के साथ उसमें लिखा था

"इस समय मेरी जो मनोदशा है उसकी कोई कल्पना नहीं कर सकता। डाक्टर की सलाह पर मुझे चलना पड़ता है। आशा करती हूं कि आपसे भेंट होगी, लेकिन शायद न हो पाए। मिलना हो भी जाए तो ज्यादा समय तक हम साथ नहीं रह पाएंगे। मुझे विश्वास नहीं कि इस दुनिया में अब मैं ज्यादा दिन रहूंगी। मृत्यु के बारे में ज्यादा सोचती भी नहीं। खयाल सिर्फ यही आता है कि मेरे सारे काम अधूरे पड़े हैं। धीरू अभी छोटा ही है। चंदू (एक मित्र की कन्या, जिसे उन्होंने गोद ले लिया था) का मैं अपने सामने ब्याह कर देना चाहती थी। यह भी मेरी इच्छा थी कि रणछोड़ (भतीजा) मेरे सामने ही अपनी परीक्षा में पास हो जाए। ऐसी बहुत सी बातें मन में ही रह जाएंगी।

"मेरी जिंदगी में ऐसा वक्त कभी नहीं आया जिसमें हम जीवन का आनन्द ले सकें। और जब आया तो रोग ने घेर लिया। मुझे तो ऐसा लगता है कि भगवान ने मुझे दूसरों की चिंता करने के लिए ही पैदा किया था। अपने भावुक स्वभाव के कारण अच्छी बुरी बातों का मेरे ऊपर बहुत असर पड़ता है। इससे मुझे बहुत कष्ट उठाना पड़ा है मेरे लिए संतोष की बात यही है कि आप स्वस्थ हैं और धीरू भी पूरी तरह रोगमुक्त हो गया है। अपने लिए मुझे कोई चिंता नहीं। यह बात जरूर मुझे खलती है कि मेरे न रहने से आपको तकलीफ होगी। पिछले दिनों मैंने बहुत सोच विचार किया। मैंने आज तक किसी का बुरा नहीं किया, जरूर भला किया। यही मेरे लिए संतोष की बात है। मेरे पीछे आप रंज न करें। न मेरे

पेट का ही किसी तरह दुगी हान दें। इस बात का मुझे निश्चय है कि आप उन कोई दुःख नहीं होने देंगे फिर भी मां की ममता ऐसा कहन के लिए मुझे प्रेरित करती है। मेरे बेटे का ज्यादा खयाल करना, अगर घधे का कम। रणछोड का मुझसे बहुत स्नेह है। मेरे लिए उस बहुत दाख होगा। उसका भविष्य बनाना। धीरू की तरह वह भी अभी बहुत छोटा है। दुनिया उसने नहीं देखी है। इसलिए उस पर प्रेम रखना और उसे लायक बनाना। दिल का वह बहुत अच्छा है, पर तगावी और चुप्पा है सा र ही भावुक भी बहुत है। मेरे पीछे धीरू अकेला पड जाएगा। वह धीरू का अकेलापन दूर करेगा और सब तरह स उसकी मदद करेगा। चन्दू मुझ से बहुत स्नेह रखती है। मेरी हीरे की अगूठी उसके विवाह पर उसे देना। साथ ही मेरी एक कसीदेवाली साडी भी। उस अपनी बेटी की तरह समझना और वसा ही उस पर प्रेम रखना। धीरू के अपनी कोई बहन नहीं है। इसलिए उसे भी यहा समझाना कि चन्दू को वह अपनी बहन मान और उसस वैसा ही स्नेह करे। ऐसा न कर सके तो फिर भगवान जमी प्रेरणा दें वसा करना।

"मेरे सब गहने और जवाहरात मुहरबन्द बक्से म भरकर धीरू की दुल्हन के लिए सुरक्षित रख देना। अपनी आधी सपत्ति धीरू को देना। उसकी अच्छी तरह देखभाल करना और उच्च शिक्षा दिलाकर योग्य बनाना।

"तीथल की अपनी बाडी (बगीची) का ध्यान रखना। साल म कम से कम एक बार उसे देखने जरूर जाना। इससे मेरी आत्मा को बडा सुख मिलेगा। तीथल की और चनवाई की वाडिया धीरू के सिवा और किसी को न देना। न किसी और को उनका भागीदार ही बनाना। धीरू के लिए अच्छी दुल्हन ढूढना, किसी विलायती गुडिया से उसे ब्याह न करने देना। ऐसी चुडल को अगर मेरे पवित्र घर मे लाए तो मेरी आत्मा को बहुत पीडा होगी और सभी को उससे कष्ट उठाना पडेगा। श्रद्धालु और धर्मभीरु माताओं के पुत्रों को तो पारिवारिक जीवन की शुद्धता पर खास ध्यान रखना चाहिए। आपकी माता जी सत स्वभाव की महिला थी। आप भी धर्मराज की तरह शुद्ध चरित्र हैं। मैं तो अभी भी ऐसा ही मानती हूँ। इसलिए अपना शेष जीवन भी इसी तरह का बिताए और परमात्मा को इस बात का साक्षी

रखें कि आपके शुद्ध चरित्र और मा के नाम पर धब्बा न लगे यही मेरी हार्दिक इच्छा है और मुझे विश्वास है कि आप इसे जरूर पूरा करेंगे ।"

देश म कोई एक साल तक लम्बी शल्य चिकित्सा कराने पर भी इच्छाबेन की बीमारी म कोई सुधार नहीं हुआ तब 1923 म भूलाभाई उन्हें इलाज के लिए लन्दन ले गए । पुत्र भी उनके साथ ही रहा । मगर लन्दन के इलाज से भी कोई लाभ नहीं हुआ । तब साल के अन्त म वह बम्बई लौट आई और कुछ ही महीनों बाद उनका देहान्त हो गया ।

अपनी बीमारी की भारी वेदना के बावजूद इच्छाबेन की चित्तवृत्ति बराबर स्थिर रही । घर-गृहस्थी के मामले उन्होंने निपटा लिए थे, अपने पुत्र तथा इष्टजनों के लिए व्यवस्था कर दी थी साथ ही तीथल और चिनवाई की जिन बाडियों से उन्हें बडा प्रेम था, उनके बारे म भी आदेश दे दिए थे । इससे उन्हें कोई मानसिक अशान्ति नहीं रह गई थी ।

इस प्रकार कोई तीस बरस के सुखी दाम्पत्य जीवन का अन्त हुआ । गाव की होने पर भी इच्छाबेन बहुत विशालहृदय थी और अहमदाबाद के सुखी दिनों मे उनका घर हमेशा मेहमानों से भरा रहता था । बाद म तो उनका परिवार इतना सम्पत्तिशाली हो गया था जिसकी उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी । फिर भी उनका जीवन सादा और आडम्बरहीन ही रहा । शुरू शुरू मे गर्मी की छुट्टियो मे वह भूलाभाई के साथ पहाड पर जाया करती थी । लेकिन उच्च समाज का उन्हें कोई आकर्षण नही था । बाद मे जब लगभग हर साल भूलाभाई विदेश जाने लगे तो उन्होंने बलसाड से कुछ मील की दूरी पर समुद्र के किनारे अपने लिए एक बगला बनवा लिया था । वही उनका दरबार लगा रहता था । सभी रिश्तेदारों की उनके यहा भीड रहती । वह अपने को हमेशा किसी न किसी काम मे व्यस्त रखती थी । जाति के सयाने लडके लडकियो के ब्याह और जीविका की उन्हें चिन्ता रहती और इसके लिए उनकी थली हमेशा खुली रहती । चिनवाई के खेतो म काम करने वाले सभी नौकरों और उनके घरवालो की भी वह प्रेमपूर्वक देखभाल करती थी ।

1926 के माच महीने म जब भागा, जो उस समय बबई मे ... थे, गर्मी की छुट्टियो म विलायत जाने लगे तो भूलाभाई से उनकी अनुपस्थिति म एडवोकेट जनरल का काम करने का कहा गया। उनके नाम म इमसे कोई वृद्धि नही होने वाली थी, मगर यह इसकी स्वीकृति थी कि बबई के वकीलों के वह मुखिया हैं। इसलिए उन्होंने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया।

भूलाभाई कई वष लिबरल पार्टी मे भी रहे। 1927 म बम्बई म लिबरल फेडरेशन का जो अधिवेशन हुआ, उसम उन्होंने साइमन कमीशन के बहिष्कार मुख्य प्रस्ताव का अनुमोदन किया मालूम पडता है। ऐसा करते हुए 25 दिसम्बर 1927 को उन्होंने जो भाषण किया, वह कई दष्टियो से महत्वपूण है। उससे उनकी राजनीतिक विचारधारा का पता चलता है। इससे पता चलता है कि उनकी नजर म भारत की नागरिक प्रशासकीय सेवाओ के भारतीयकरण स जल और थल सेना के भारतीयकरण की मांग ज्यादा जरूरी थी। बाद मे जब 1934 के आखिरी दिनों मे वह केन्द्रीय असम्बली म काग्रेस पार्टी के नेता हुए, तब भी उनका यही मत था।

भारत मत्री लाड बरकेनहेड के वक्तव्य का उल्लेख करते हुए अपने भाषण म भूलाभाई ने कहा था, "वह यह कहते हैं कि यदि इस देश से ब्रिटिश जल थल सेना को हटा लिया जाए और देश उनके सरक्षण से वचित हो जाए तो हम स्वराज का बात भूल जाएगे। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ यह बात बार बार कहते हैं, मगर ब्रिटिश सरकार ने सेना का भारतीयकरण करने का कभी कोई प्रयत्न नही किया। जल थल सेना भी उसी तरह शासन का अग है जिस तरह प्रशासन, मगर हम भारतीयों की उसम कही पहुँच नहीं है। यह भी कुछ आश्चय की ही बात है कि काग्रेस के पिछले 30 40 वष के कायकाल म भी हमारा इस ओर ध्यान नही गया और यूरोप म महा युद्ध छिडने पर ही इस ओर हमारा ध्यान आकर्षित हुआ कि स्वराज की सरकारी माग म हमारा सबसे कमजोर मुद्दा जल थल सेना के उच्च पदो पर भारतीयो का सवथा अभाव ही है। सिविल सर्विस म तथा शासन के हर विभाग मे अधिक पदो की माग तो हमने हमेशा की, विधान सभाओ म विभिन्न प्रकार के सुधारो की भी माग की और न्याय और शासन को पृथक करने के लिए भी आन्दोलन किया, मगर इस

तरफ कोई ध्यान नहीं गया। पुराने प्रस्तावों का अवलोकन करें तो यह बात खले बिना नहीं रहेगा कि हमने शायद यह मान लिया था कि जल थल सेना में हमारे लिए कोई स्थान नहीं हो सकता।'

यह उल्लेखनीय है कि उन दिनों यद्यपि वह लिबरल पार्टी में थे, फिर भी उनकी विचारधारा काफी गरम थी। प्रस्ताव (साइमन कमीशन के बहिष्कार) का समर्थन करते हुए आगे उन्होंने जो कुछ कहा, उससे यह स्पष्ट है, 'हमें प्रस्ताव के परिणामों का भय दिखाया जाता है। सर मोरोपंत जोशी ने दबी जबान से अखबारों द्वारा कल्पित दंगों का डर दिखाया है। मैं उन लोगों में से हूं जो इस तरह की परिस्थिति उत्पन्न होने पर उससे बहुत विचलित नहीं होते, और ऐसा अकारण नहीं है। यूरोप के पिछले महायुद्ध के समय जब स्वतंत्रता के लिए लड़ाई की जा रही थी, तब क्या कभी किसी ने उसके खर्च का हिसाब लगाया था? खर्च होने वाली धनराशि या वह कहां से आएगी इसको आर्थिक समस्या के रूप में किसी ने देखा था? उसे तो स्वतंत्रता और सिद्धांतों की लड़ाई माना गया, जिसे इस तरह की छोटी बातों से ऊपर रखकर, उसके लिए किसी भी तरह के त्याग और बलिदान को बड़ा नहीं समझा गया। और हम इतने डरपोक हो गए हैं कि दो चार सौ की प्राणहानि की महज संभावना ही हमें भयभीत कर देती है। हमें इस बात को समझ लेना चाहिए कि हमारे साथ वैसा ही बर्ताव होगा जिसके हम पात्र हैं। जो कुछ मिले उसे ही चुपचाप स्वीकार कर लेने का यही नतीजा होगा कि अगली बार उससे भी कम मिलेगा। भारतीय समस्या को जब हम पार्टी और निजी स्वार्थों से ऊपर रखने लगेंगे, और देश के सभी विचार के लोगों को एक साथ लाने के लिए जब हम प्रयत्नशील होंगे केवल तभी यथार्थ उन्नति की दिशा में आगे बढ़ना शुरू होगा, और तभी साम्राज्य के अंदर स्वराज प्राप्ति के लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए वैधानिक सुधारों की हमारी मांग पर कोई कारगर कार्रवाई होगी। हम सभी यह क्या न कहें—अलग अलग रास्तों पर हम भले ही चलें, लेकिन जब लक्ष्य सभी का एक है तो हम कंधे-से-कंधा भिड़ाकर क्यों न खड़े हों?

4

बारडोली की पैरवी

1922 मे गाधीजी न असहयोग आदोलन तज करने की घोषणा की और इसके लिए बारडोली मे करबन्दी आन्दोलन छेडन का निश्चय किया गया। उसके पाच दिन बाद ही चौरीचौरा की दुघटना हुई। तब काग्रेस की कार्यसमिति और महासमिति ने प्रस्तावित आन्दोलन रोक दिया। इसके बाद ही गाधीजी गिरफ्तार कर लिए गए और अहमदाबाद क जिला जज ब्रूमफील्ड न उन्हे कद की सजा दी।

भारतीय स्वतत्रता के इतिहास म इसके बाद 1928 म फिर बारडोली का प्रसग आता है, जब वहा करब दी का आन्दोलन शुरू हुआ। इस आन्दोलन का भारत के सत्याग्रह आन्दोलन के इतिहास म बडा महत्वपूर्ण स्थान है। इस सत्याग्रह की सफलता के कारण बबई सरकार न बारडोली के मामले की जो जाच कराई, उसमे भूलाभाई का बडा योग रहा। उसम उन्होने बारडोली के किसानो का पक्ष प्रस्तुत किया और कानूनी तौर पर सत्याग्रहियो की कारवाई को उसी तरह ठीक सिद्ध किया जिस तरह कि अपने जीवन के उत्तरकाल म फौजी अदालत (कोर्ट माशल) मे आजाद हिन्द फौज के सनिको की परवी करत हुए देश और ससार के सामने यह सिद्ध कर दिया कि कानून की दृष्टि से भी उन्हे राजद्रोह का अपराधी नही कहा जा सकता।

बारडोली सूरत जिले के ठेठ पूरब म स्थित तालुका है। तालुके का क्षेत्र फल 222 वगमील है और उसम 137 गाव हैं। 1926 म वहा की जनसख्या 87 000 थी और उसम ज्यादातर किसान थे, जिसम लगान की रकम 4,30,263 रु० निश्चित

की गई थी । बम्बई प्रान्त मे प्रचलित प्रथा के अनुसार 1926 म नया बन्दोबस्त होना था । मालगुजारी की दर रयतवारी बन्दोबस्त के दूसरे किसी भी प्रांत से बम्बई प्रान्त मे अधिक थी, कास्त वाली जमीन पर यह अन्य जिलो से गुजरात के जिला म ज्यादा थी और गुजरात म भी सूरत जिले म सबसे ज्यादा । नए बन्दोबस्त म जो मालगुजारी तय की जाती उसके खिलाफ अदालत में आवाज नही उठाई जा सकती थी, क्योंकि सरकार को जमीन का मालिक मानकर यह सारा मामला उसी की मर्जी म माना गया । मालगुजारी तय करना सरकार का काम था और अपनी इच्छानुसार चाहे जिस तरीके स वह एसा कर सकती थी ।

मालगुजारी का जो नया बन्दोबस्त 1926 म होना था, उसका काम बम्बई सरकार ने प्रान्तीय सेवा के डिप्टी कण्ट्रोलर पद पर काम कर रहे एम० एस० जयकर को सौंपा । जयकर को ऐसे काम का पहले से कोई अनुभव नहीं था । 1924 म उ होने यह काम शुरू किया और कोई पाच महीने म ही अपनी रिपोर्ट तयार कर ली । अपनी रिपोर्ट म उन्होने मौजूदा मालगुजारी म 25 प्रतिशत वृद्धि की सिफारिश की और 23 गावो को कृषि लाभ की दृष्टि से निचले वग से ऊचे वग मे कर दिया, जिसके फलस्वरूप ताल्लुके के सारे लगान मे 30 प्रतिशत की वृद्धि हो गई । इस वृद्धि के लिए उ होने य कारण दिए

(1) यातायात के साधन काफी बढ़ गए है, जिनमे ताप्ती वली रेलवे की बडी लाइन खुलना भी है, (2) जनसख्या म कोई 3,800 की वद्धि हो गई है (3) दूध देने वाले पशुओ और बैल गाडियो की सख्या बढ गई है, (4) चारो तरफ अच्छे बने पक्के मकानो को देखकर लगता है कि लोगो की खुशहाली बढ रही है, (5) कालीपरज लोगों म शिक्षा विस्तार और मद्यनिषेध स उनकी हालत सुधरी है, (6) खाद्य पदार्थों और कपास के दामो म असाधारण वद्धि हुई है (7) खेत मजदूरो की मजदूरी दूनी हो गई है और (8) जमीन के दाम बढ़ गए हैं, उसके मुकाबले मालगुजारी अनुपात से कम हुई है ।

भूमि कर म 30 प्रतिशत वृद्धि की सिफारिश का मुख्य आधार जयकर ने इस तथ्य को बनाया कि ताल्लुके की उपज का कुछ मूल्य पिछले बन्दोबस्त के वक्त से निश्चित रूप मे 15,08,077 रु० बढ गया है ।

जयकर की यह रिपोर्ट प्रकाशित नहीं की गई, ताल्लुके के सदरमुकाम को केवल उसकी नकल भेजी गई। उस पर विचार करने के लिए ताल्लुका कांग्रेस कमेटी ने एक समिति बनाई, जिसने उसका अध्ययन कर उसकी सिफारिशों की आलोचना की। बारडोली के किसानों ने मालगुजारी वृद्धि के खिलाफ एतराज पेश किए, पर कोई परिणाम न निकला। तब जनवरी 1927 में अपनी एक सभा कर उन्होंने रेवन्यू मिनिस्टर के पास प्रतिनिधि मंडल भेजने का निश्चय किया। रेवन्यू मिनिस्टर ने उनकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया।

जयकर की रिपोर्ट बन्दोबस्त के कमिश्नर के पास गई तो उसकी पड़ताल करके वह इस नतीजे पर पहुंचे कि प्रस्तावित वृद्धि विश्वसनीय आंकड़ों पर आधारित नहीं है। जयकर ने बन्दोबस्त का जो आधार ग्रहण किया था उसे अमान्य कर उन्होंने बन्दोबस्त का आधार जमीन के लगान को माना। इसके लिए जयकर की रिपोर्ट में जमीन की बिक्री और लगान का जो विवरण परिशिष्ट रूप में दिया हुआ था, उसे सही मानकर, उसके आधार पर, उन्होंने मालगुजारी में 29 प्रतिशत वृद्धि की सिफारिश की।

बन्दोबस्त अफसर और बन्दोबस्त कमिश्नर, दोनों ने अपनी रिपोर्ट में जो कहा था, उस पर विचार कर उनके द्वारा सुझाई हुई 30 और 29 प्रतिशत वृद्धि की जगह आखिर में सरकार ने 22 प्रतिशत वृद्धि की सिफारिश की। जुलाई (1927) में प्रकाशित सरकारी प्रस्ताव द्वारा सरकार ने बन्दोबस्त कमिश्नर की उस सिफारिश को मान लिया जिसमें गांवों के बिलकुल नए वर्गीकरण और खासकर 32 गांवों को ऊपर के वर्ग में करने के लिए कहा गया था। इसका नतीजा यह हुआ कि उन गांवों में मालगुजारी 50 से 60 प्रतिशत तक बढ़ गई।

बन्दोबस्त अफसर और बन्दोबस्त कमिश्नर ने वृद्धि के जो कारण दिए थे, उन पर किसानों और कांग्रेस द्वारा नियुक्त समिति ने विचार किया। जो बातें आपत्तिजनक लगीं, उन्हें अखबारों में प्रकाशित किया, साथ ही प्रस्तावित वृद्धि के विरुद्ध सरकार के पास भी आवेदन पत्र भेजे जिनमें बताया गया कि जयकर ने संबद्ध सामग्री का अध्ययन नहीं किया। वह न तो गांवों में गए और न लगान की तफसीली बातों

का उन्होंने अध्ययन किया। इनके बारे में रिपोर्ट के परिशिष्ट में उन्होंने जो तथ्य दिए हैं, वे सही नहीं बल्कि भ्रांत हैं। इन सब पर विचार करके सरकार ने अंत में 22 प्रतिशत वृद्धि निश्चित की।

इस पर बारडोली के किसानों ने सितम्बर 1927 में अपना सम्मेलन करके बढ़ी हुई रकम न देने का निश्चय किया। वल्लभभाई पटेल से उन्होंने अपना नेतृत्व करने के लिए कहा। तब यह तजवीज हुई कि किसान पुरानी दर से तो मालगुजारी दे दें, पर जितना बढ़ाया गया है वह अदा करने से इनकार करें। नया बन्दोबस्त ठीक नहीं था। इसलिए आम भावना यही थी कि जब तक सब मामलों पर ठीक तरह और न्यायपूर्वक विचार न हो जाए तब तक बढ़ी हुई मालगुजारी न दी जाए। कुनबी, अनाविल, कालीपरज और पारसी आबादी वाले गांवों का सम्मेलन कर उनके प्रतिनिधियों की भावना जान लेने के बाद 6 फरवरी, 1928 को वल्लभभाई ने बंबई के गवर्नर को एक पत्र लिखा। उसमें उन्हें परिस्थिति की जानकारी देकर नए बन्दोबस्त से किसानों के साथ होने वाले भारी अन्याय का हाल बताया और पर्याप्त अधिकारयुक्त निष्पक्ष न्यायाधिकरण नियुक्त कर लोगों को उसके सामने अपना मामला पेश करने का मौका देने के लिए कहा। आवश्यक होने पर इसके लिए गवर्नर से मिलने की इच्छा भी उन्होंने व्यक्त की।

11 फरवरी 1928 तक जब उन्हें इसका कोई जवाब नहीं मिला, तो 12 फरवरी को बारडोली में वह फिर किसानों से मिले और सारी स्थिति उन्हें समझाकर कहा, "जो स्थिति है उसमें पूरी विनम्रता के साथ मैं आपको यही सलाह दे सकता हूं कि सरकार जब तक आपकी बात न माने, तब तक आप लगान बिलकुल ही न दें। यह आप साफ समझ लें कि सरकार के पशुबल से आप केवल अपने कष्टसहन और दृढ़ निश्चय के द्वारा ही लड़ सकते हैं। लोग कष्टसहन के लिए तैयार हो जाएं तो शक्तिशाली से शक्तिशाली जुल्मी हुकूमत भी उनके आगे टिक नहीं रह सकती। सवाल रुपयों का नहीं, बल्कि आत्मसम्मान का है। मनमाने तरीके से मालगुजारी तय करने की स्वच्छंद सरकारी पद्धति का आपको विरोध करना है। सरकार जब तक सब मामले की जांच के लिए कोई निष्पक्ष न्यायाधिकरण नियुक्त न करे या मालगुजारी की वृद्धि के अपने हुक्म को मंसूख न कर दे, तब तक

हमारी लड़ाई जारी रहगी बहुत सभव है कि सवर सिसान के लिए मदस सरकार आपके मुखिया पर ही प्रहार करे। जि होंने प्रस्ताव पेश किया है उन की जमीने सभवत सबसे पहले जब्त होगी। आप ऐसी बातो से विचलित न हो। लड़ाई के लिए तयार हो, और लड़ाई को तयार हो तो फिर डटकर लड़ें।"

विभि न गावो से आए विविध जातियो के प्रतिनिधियो न तब यह स्वीकार किया, "बारडोली ताल्लुके के निवासियो का यह सम्मेलन बारडोली के नए ब दोबस्त म की गई मालगुजारी वृद्धि को मनमानी, गरकानूनी और अत्याचार पूण कारवाई मानकर सभी किसानो को सलाह देता है कि जब तक सरकार ब दोबस्त की दरो पर ही मालगुजारी की रकम पूर भुगतान के रूप म लेने को तैयार न हो, या जब तक घटनास्थल पर ही जांच पडताल द्वारा ब दोबस्त म सशोधन का सारा मामला तय करन के लिए निष्पक्ष यायाधिकरण की नियुक्ति न करे, तब तक बढी हुई दर से मालगुजारी कोई न द।"

इस तरह वल्लभभाई के नेतत्व म सत्याग्रह करन और बढा हुआ भूमिकर न देने का निश्चय किया गया। सारे ताल्लुके म सत्याग्रह की योजना बडी सावधानी के साथ तयार की गई। ताल्लुके भर मे इससे जोश छा गया और कानूनभग की भावना लोगो मे आ गई, क्योंकि उ ह अपने पक्ष क यायोचित होन म पूरा विश्वास था। सरकार न यह कहकर सत्याग्रह की अवहेलना करने की कोशिश की कि एक बाहरी आदमी इसका सचालन कर रहा है।

वल्लभभाइ न सारी स्थिति गाधीजी को बताई। उन्हे विश्वास हो गया कि किसानो का पक्ष यायोचित है। वल्लभभाई का सरकार से जो पत्र व्यवहार हुआ था उसका अध्ययन करके गाधीजी न अपने पत्र 'यग इण्डिया' म इस सबध म एक लेख लिखा। आ दोलन का पक्ष लेते हुए उसम उन्होंने लिखा—'इसम यह आग्रह नही है कि सरकारी निणय के विरुद्ध लोगो की बात सही है, बल्कि सारे मामले की जाच के लिए निष्पक्ष यायाधिकरण की नियुक्ति की माग की गइ है और एसा न किया जाने पर करवद्धि क विरुद्ध शा तिपूण आ दोलन करने की बात है जिसम जमीन जब्ती सहित सभी तरह के कष्टसहन को तयार रहना होगा।" उ होने

यह भी लिखा—"प्रस्तावित सत्याग्रह यद्यपि स्थानीय है और निश्चित उद्देश्य के लिए है, फिर भी इसका सार्वदेशिक महत्व है। क्योंकि बारडोली जैसा ही हाल देश के अन्य अनेक भागो का है। इसके अलावा परोक्ष रूप से स्वराज्य की लड़ाई पर भी इसका असर पड़ेगा, क्योंकि जिस आन्दोलन से हम अपने प्रति हो रहे अन्याय का बोध हो और उसके शांत प्रतिरोध के लिए बल और अनुशासन प्राप्त कर हम कष्ट सहने के आदी बनें, हम स्वराज के निकट पहुंचाएगा।"

सत्याग्रह की वल्लभभाई के नेतृत्व में प्रथम तैयारी हो ही रही थी कि किसानो पर नए बंदोबस्त के हिसाब से मालगुजारी जमा करने के नोटिस तामील होने लगे। मालगुजारी न जमा करने पर तलाटियों (पटेल) को किसानो की संपत्ति जब्त करने के हुक्म भी साथ ही मिल गए। लेकिन किसान इससे विचलित नहीं हुए। वल्लभभाई इस समय सरदार कहे जाने लगे थे। उन्होंने किसानो को बताया कि "सबसे बड़ी जरूरत यही है कि आप डरें बिल्कुल नहीं।" सरकार ने लोगो को डराने दबाने के लिए सभी तरह की दण्डात्मक कारवाई की। बढ़ा हुआ राजस्व न देने वालो की जमीन जब्त की, माल असबाब कौड़ियो के मोल नीलाम किया, साथ ही जो पशुधन किसानो को सबसे प्यारा था, उसको भी जब्त कर कौड़ियो के मोल बेचा। यह सब बड़े आपत्तिजनक तरीको से हुआ। सत्याग्रहियो की संपत्ति खरीदने कोई आगे नहीं आता था, इसलिए सरकार बिक्री का नाटक करती थी। किसानो को आतंकित करने के लिए उन पर सरकारी नोटिस तामील करने और उनके माल की जब्ती का काम पठानो को सौंपा गया। सरकार की प्रतिष्ठा दांव पर थी, इसीलिए किसानो को सताने और आतंकित करने के लिए हर तरह के उपाय किए गए। यह मामला ऐसा था कि उसका असर न केवल स्थानीय बल्कि सार्वदेशिक होने वाला था, क्योंकि उसमें भारत पर हुकूमत कर रही ब्रिटिश सरकार के नैतिक और कानूनी आधार को ही चुनौती थी।

मनमानी का बड़ा साम्राज्य था, लेकिन बारडोली के लोग अंत तक लड़ने के लिए दृढ़निश्चय थे। सरकारी अफसरो का उन्होंने बहिष्कार किया और ताल्लुके में सारा सरकारी कामकाज ठप्प हो गया। इतने पर भी उनकी सारी प्रवृत्तियां

अहिंसात्मक रहा, क्योंकि वे अपना आन्दोलन वल्लभभाई के नेतृत्व में चला रहे थे और उनका अहिंसा पर बड़ा आग्रह था। किसानों की कीमती जमीनें जब्त कर नाममात्र के मूल्य पर बेच दी गई। किसानों की सारी संपत्ति उनकी जमीन ही थी, वही जब्त कर बेच दी गई तो उनके पास संपत्ति के नाम पर कुछ भी नहीं रहा। लेकिन इस तरह बरबाद हो जाने पर भी अपने इस निश्चय पर वे अडिग रहे कि सर्वनाश हो जाने पर भी लगान अदा नहीं करेंगे। सत्याग्रह का सारा आन्दोलन शांतिपूर्ण रहा। कर वसूली के लिए किसानों को सभी तरह के प्रलोभन दिए गए, मगर उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सरकार ने यह दावा जरूर किया कि कुछ लोगों ने रकम जमा करा दी है, पर वह कोरा ढोंग था और सच्चाई यह है कि सरकार किसानों से कुछ भी वसूल नहीं कर पाई थी।

सत्याग्रह आन्दोलन जिस तरह चल रहा था, उसके कारण विभिन्न दलों के नेताओं ने उसकी सराहना की। इतना ही नहीं, केन्द्रीय असेम्बली के अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल तथा विभिन्न प्रान्तों के अनेक प्रमुख व्यक्तियों ने उसका समर्थन भी किया। सबने महसूस किया कि यह ऐसा मामला है जो सारे देश के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। आन्दोलन जब पूरे जोर पर था, सरदार पटेल ने लोगों से कहा, 'पशुबल (सैन्य शक्ति) से दुनिया में कोई ब्रिटिश सरकार को नहीं हरा सकता। वह चाहे तो सारे ताल्लुके को नेस्तनाबूद कर सकती है। इसलिए सरकार की उत्तेजक कारवाइयों के बावजूद उंगली भी उसकी तरफ न उठाओ। आत्मरक्षा के अधिकार के बावजूद, जिसको मैं बहुत महत्त्व देता हूं मैं कहूंगा कि अपशब्द और मारपीट पर भी आप उत्तेजित होकर बदले में प्रहार न करें। इस तरह का जरा भी बहाना मिलने पर निश्चय ही सरकार की बन आएगी और हमने अब तक जो सफलता प्राप्त की है, वह सब धूल में मिल जाएगी।'

आन्दोलन में भाग लेने वाले कई किसानों और दूसरे लोगों पर मुकदमे चलाकर उन्हें कैद की सजा दी गई। सभी किसानों के अलावा सभी पेशों वाले, स्त्री, पुरुष और बच्चों ने आन्दोलन में भाग लिया। उन सभी को सरकार के क्रूर दमन का शिकार होकर सभी तरह के कष्ट सहन पड़े। समझौते के प्रयत्न भी हुए, पर कोई सफलता नहीं मिली।

आखिर बम्बई के गवर्नर और भारत के गवर्नर जनरल ने आपस मे विचार किया । उसके बाद ह्वाइट हाल (लन्दन) और शिमला के बीच विचार विनिमय हुआ । इस विचार-विनिमय म जब यह अच्छी तरह महसूस कर लिया गया कि इस आन्दोलन को कुचल देना कठिन है, तब सरकार वसी कमेटी नियुक्त करने को तयार हुई जिसका सरदार पटेल न सुझाव दिया था । कमेटी की नियुक्ति सम्बन्धी बातचीत म सरकार न यह स्वीकार किया कि किसानो की जो जमीन जब्त करके बची गई है वह सब उन्ह वापस कर दी जाएगी, सभी कदी छोड दिए जाएगे और (सत्याग्रहियो से सहानुभूति के कारण) जिन तलाटियो (पटेलो) को नौकरी से अलग किया गया है उन सबको बहाल कर दिया जाएगा । महादेव देसाई के शब्दो म इस तरह उस आन्दोलन का अन्त हुआ जिसे शातिपूर्ण किसानो ने सत्य और कष्ट सहन को अपना हथियार बनाकर एस शत्रु के खिलाफ चलाया था जो चाहता तो किसी भी दिन अपनी पाशविक शक्ति म उन्ह नेस्तनाबूद कर सकता था । बारडोली सत्याग्रह के फलस्वरूप जो समझौता हुआ वह सच पूछा तो सत्य और अहिंसा की ही विजय था । सरदार के नेतृत्व मे सफलतापूर्वक चलने वाला यह तीसरा आन्दोलन था, यानी स्वराज प्राप्ति क माग पर बढते हुए जितनी मजिलें पूरी करन का उन्ह गौरव मिला उनम यह तीसरी मजिल थी । इसम कोई शक नही कि यह राष्ट्र की एक महान नतिक विजय थी ।

बम्बई सरकार न जो जाच कमेटी बनाई उसम आर० एस० ब्रूमफील्ड को जुडीशियल मम्बर क रूप म रखा गया और एम० आर० मक्सवेल का रेवेन्यू मेम्बर के रूप म । कमेटी को लोगो की इस शिकायत की जाच करनी थी कि मालगुजारी की वद्धि लण्ड रेवन्यू कोड (भूमिकर सहिता) के अनुसार नही है और शिकायत के सत्यासत्य की जाच के बाद यह भी बताना था कि वद्धि करनी हो तो कितनी करनी चाहिए ।

कमेटी की जाच न केवल बारडोली के बल्कि समूचे भारत के किसानो के लिए बहुत महत्व की थी, साथ ही व्यापक राजनीतिक प्रश्नो पर भी उसका प्रभाव पड सकता था । इसलिए गाधीजी इस बात के लिए उत्सुक थे कि बारडोली के

किसानो का पक्ष दश म किसी अत्यन्त योग्य वकील द्वारा पेश किया जाए। इसके लिए भूलाभाई पर उनकी नजर गई। वह यह जानते थे कि भूलाभाई जिले के ही निवासी हैं, वहा के किसानो की दशा का उन्ह पता है और हुए प्रात के भूमिकर प्रशासन का व्यापक अनुभव प्राप्त करने का उन्हें अवसर मिला है। यह भी उन्ह पता था कि काग्रेस म न होते हुए भी वह देशभक्त हैं। इसलिए भूलाभाई को उन्होंने पत्र लिखा और वल्लभभाई उनके पास उसे ले गए। पत्र में उन्होने लिखा था "मैं आपकी पूरी मदद चाहता हूं। जाच कमीशन की नियुक्ति का जहा तक सवाल है, हमने उसमे सफलता पा ली है। न्याय ही होगा, इसका तो मुझे निश्चय नही है, पर कम से कम अन्याय म रुकावट तो होगी ही।" भूलाभाई गाधीजी को इनकार नही कर सकते थे। उन्होंने तुरन्त उनकी बात मान ली।

कमीशन की अनौपचारिक बैठक मे 5 नवम्बर, 1928 को भूलाभाई ने जनता के परोकार के रूप मे किसानो के पक्ष का प्रतिपादन किया। उन्होने लैण्ड रेवेन्यू कोड की दफा 107 को अपने पक्ष का आधार बनाया। उन्होने बताया कि इसके अन्तर्गत खेती की जमीन के लगान मे विचार करते हुए बन्दोबस्त अफसर और बन्दोबस्त कमिश्नर खेती से होनेवाले मुनाफे का ही विचार करने को बाध्य हैं। लगान के आकडे कुछ मामलो म ही खेती की सही कमाई का पता लगाने म सहायक हो सकते हैं, लेकिन एकमात्र इसी आधार पर कोई निर्णय नही लिया जा सकता, जैसा कि इस मामले म बन्दोबस्त कमिश्नर ने किया है। आगे उन्होने यह भी कहा कि लगान का आधार बारडोली जैसे इलाके के लिए असगत है, जहा कि पट्टे पर दिया गया क्षेत्र बहुत कम है और जो आकडे इकट्ठे किए गए है उनकी ठीक जाच नही की गई। इसलिए खेती की शुद्ध कमाई या लाभ वही माना जाएगा, जो उपज के मूल्य म से काश्त पर आई लागत निकालकर बचे। उनका कहना था कि काश्त की लागत म मजदूरी, बीज तथा पशुधन (जीवित और मृत) के मूल्य, ब्याज और मूल्य—ह्रास या घिसाई की रकम शामिल होगी।

भूलाभाई के इस तरह किसानो के पक्ष का मोटा विवरण देने के बाद जाच

का बाजाब्ता काम 1928 की 14 नवम्बर को शुरू हुआ और 1929 की जनवरी के अंत तक चला। जाच अधिकारी जब गांवों में जांच करने गए तो कई प्रमुख व्यक्ति तथा जनता के प्रतिनिधि उनके साथ गए, जिन्होंने उनके काम में सहायता की। लगान सम्बन्धी ब्योरे उन्होंने तैयार किए जिन्हें जांच कमीशन ने स्वीकार किया। जनप्रतिनिधियों के इस सहयोग को कमीशन ने स्वीकार ही नहीं किया बल्कि उसकी इन शब्दों में सराहना भी की—"अपने ढंग से बहुतेरी उपयोगी जानकारी इकट्ठी करने के अलावा इन सज्जनों ने हमारे कार्यक्रम वाले प्रत्येक गांव में हमारे वहां जाने से पहले ही पहुंचकर वहां के लगान और जमीन के सौदों सम्बन्धी पूरे विवरण हमारे लिए व्यवस्थित रूप से संग्रह कर दिए। उनके कारण सही जानकारी प्राप्त करने में हमें बहुत सहायता मिली। जिस सच्चाई तथा निष्पक्षता से हमारी ऐसी सहायता की गई, उसका और हमारी जाच के लिए वह कितनी मूल्यवान रही, उल्लेख किए बिना हम नहीं रह सकते।"

भूलाभाई ने इस सामग्री का बड़ी कुशलता के साथ उपयोग किया। इसके आधार पर उन्होंने जाच कमीशन को बताया कि लगान का आधार सर्वथा अविश्वसनीय और गुमराह करने वाला है, जिसे किसी भी तरह बंदोबस्त में संशोधन का आधार नहीं बनाया जा सकता। उसका सच्चा आधार तो खेती से होने वाला मुनाफा ही हो सकता है। उन्होंने फी एकड़ और प्रत्येक खेत की उपज की तफसील दी। उसमें होने वाली सब तरह की फसल का पूरा ब्योरा देकर यह भी बताया कि बाजार भाव से उसका क्या मूल्य हुआ एवं उस पर आई सब तरह की लागत का हिसाब लगाकर सिद्ध किया कि खेती में लाभ के बजाए किसानों को घाटा-ही घाटा रहा है।

भूलाभाई ने बताया कि खेती में किसानों को साल दर साल घाटा ही उठाना पड़ा है और ऐसी हालत में राजस्व वृद्धि का बोझ वे बर्दाश्त नहीं कर सकते—साथ ही ऐसे आंकड़ों और ब्योरों से इस बात को सिद्ध किया जिनकी सच्चाई को चुनौती नहीं दी जा सकती थी और जिन्हें जांच अफसरों ने स्वयं भी स्वीकार किया था। इस पर ब्रूमफील्ड ने कटाक्ष करते हुए कहा, "मि० देसाई, थैकरे की 'वनिटी फेयर' पुस्तक आपने पढ़ी है?" भूलाभाई के 'हां' कहने पर ब्रूमफील्ड

बोले, "यह भी आप जानते है कि उसमे एक परिच्छेद इस बारे मे भी है। सालभर कुछ कमाई किए बिना भी वसे मजे उडाए जा सकते हैं ?" ऐसे समय मे भूलाभाई गभीरतापूर्वक अपने मामले को समझा रहे थे, ब्रूमफील्ड का ऐसा सुनकर वहा उपस्थित सरदार पटेल को गुस्सा आ गया और तेज आवाज मे उन्होने कहा, "इस तरह की बकवास और गुस्ताखी का क्या मतलब ? भूलाभाई, बहस बन्द कर दें, क्योकि जब अधिकारी गभीर नही तो बहस से क्या लाभ ?" यह कहकर जी० एन० जोशी के साथ, जो इस मामले मे भूलाभाई की सहायता कर रहे थे, वह सुनवाई वाले तम्बू से बाहर चले गए। भूलाभाई से भी उन्होने चलने को कहा, पर वह विचलित नही हुए। वह जानते थे कि किसानो का जो प्रस्तुत कर रहा हू उसका न केवल स्थानीय बल्कि सार्वदेशिक महत्व है। इसलिए अपनी व्यावहारिक और सूक्ष्म बुद्धि से काम ले, उन्होने अपनी दलीलें जारी रखी, मानो कुछ हुआ ही नही। इसका यह नतीजा हुआ कि उसके बाद अंत तक उनकी दलीलें खामोशी और गभीरता के साथ सुनी गई।

जिन आठ बातो के आधार पर बन्दोबस्त अफसर ने राजस्व बढाने की सिफारिश की थी, उनका विश्लेषण करके भूलाभाई ने बताया कि इनमे से कोई भी कसौटी पर खरी नही उतरती। इसका यह नतीजा निकला कि जाँच करने वाले अफसरो ने बन्दोबस्त अफसर के लगान सम्बधी आकडो को बिलकुल व्यर्थ बताकर रद्द कर दिया। लगान सम्बधी आकडो के बारे मे उन्होने कहा, "किसी भी ताल्लुके के पूरे भाग की स्थिति का इनसे कोई भान नही होता।" खेती से होने वाले वास्तविक लाभ को आधार मानने का तरीका अस्वीकार करते हुए उन्होने कहा कि उसे स्वीकार करें तो मालगुजारी की मौजूदा दरो मे बहुत कमी नही करनी पडेगी। लगान के आधार पर ही नया बन्दोबस्त करने की उन्होने सिफारिश की और गाँवो का नए वर्गीकरण करने के पक्ष मे भी निर्णय किया।

इस जाच का मुख्य परिणाम यह हुआ कि जाच से पहले दोनो ताल्लुको के राजस्व मे जो 1,87,492 रु० की वृद्धि की गई थी, वह घटाकर 48,648 रु० कर दी गई। इसका मतलब यह हुआ कि दोनो ताल्लुको का मिलाकर वहा के किसानो पर कोई 1,40 000 रु० वार्षिक बोझ कम हो गया। पर इस आर्थिक लाभ

से भी ज्यादा लाभ यह हुआ कि जनता के इस दावे की पुष्टि हो गई कि अधिकारियो ने नए बन्दोबस्त म जो वद्धि की, वह यथार्थ स्थिति और कानून की दृष्टि से ठीक नही थी। जाच अफसरो ने इस बात को स्वीकार किया कि किसानो की शिकायत बेबुनियाद नही थी और इस तरह सारे मामले की निष्पक्ष जाच के लिए सत्याग्रह का औचित्य पूरी तरह सिद्ध हुआ। जाच कमीशन की रिपोर्ट का यह अंश इस दृष्टि से उल्लेखनीय है "आकडो के प्रयोग की प्रचलित पद्धति हमारी राय मे सिद्धान्तत ठीक नही है, अन्य जिला मे चाहे जो हो लेकिन गुजरात के इस भाग के लिए तो यह उपयोगी नही है, जहा जमीन के पटटे और बिक्री पर अनेक बातो का असर पडता है।"

बारडोली सत्याग्रह की सफलता के फलस्वरूप जाच कमीशन की सिफारिशो को देखते हुए पजाब मे लाखो रुपया की छूट दी गई और मध्य प्रदेश म मालगुजारी वसूली स्थगित की गई। बम्बई प्रान्त मे नए बन्दोबस्त की जो कारवाई होने वाली थी, वह भी खत्म कर दी गई। इस प्रकार बारडोली सम्बन्धी जाच के फलस्वरूप परोक्ष रूप से जो लाभ हुआ, वह भी कुछ कम महत्व का नही था।

भूलाभाई ने इस मामले मे अनेक दिन किसानो के पक्ष प्रतिपादन के लिए सगृहीत तथ्यों आकडो ब्योरो आदि सामग्री के गभीर अध्ययन मे लगाए। जनता के प्रतिनिधियो और कुछ अर्थशास्त्रियो न इसमे उनकी सहायता की। इस तरह सब तथ्यो को हृदयगम करके बडी कुशलतापूर्वक शात और अविचलित रहते हुए, उत्तेजना और भावुकता से अपने को दूर रख, उन्होने किसानो का पक्ष उपस्थित किया। इसका जाच अफसरो पर बहुत असर पडा। भूलाभाई को भी इससे किसानो की स्थिति अच्छी तरह जानने का अवसर मिला और देश की वास्तविक आर्थिक समस्या से वह भलीभाति परिचित हो गए। साथ ही इससे वह पटेल, गाधी और काग्रेस के निकट ही नहीं आ गए बल्कि उनके भावी जीवन पर भी उसका बहुत प्रभाव पडा।

इस तरह बारडोली के किसानो का पक्ष कुशलतापूर्वक उपस्थित करके

भूलाभाई ने देश के किसानो की बडी सेवा की, क्योंकि जाच कमीशन के निष्कर्षों का देश भर मे सरकारी राजस्व नीति पर असर पडा। स्वय भूलाभाई ने इस बारे मे कहा है, 'अपनी सारी सपत्ति की जब्ती का खतरा उठाकर भी किसानो ने निश्चय किया कि हम बढा हुआ राजस्व नही देंगे, जिससे भारतीय जनता को हम यह बता सकें कि सत्याग्रह द्वारा लक्ष्य सिद्धि असभव नही है सत्याग्रह अपने सामित और तत्कालीन उद्देश्य मे सफल भी हुआ। बम्बई सरकार ने उसके फल स्वरूप काग्रेस की सहायता से इस आश्वासन के साथ जाच कमीशन नियुक्त किया कि जाच के फलस्वरूप न केवल बढा हुआ राजस्व ही माफ किया जा सकेगा बल्कि जरूरत हुई तो मौजूदा दर म भी कमी की जा सकेगी इस सम्बध मे हम छह सात महीन गाव-गाव घूमे और अत म जाच के फलस्वरूप एसा निणय प्राप्त किया जिससे बढे हुए राजस्व से तो मुक्ति मिली ही, साथ ही प्रत्यक्षत स्वीकार न करते हुए भी परोक्ष रूप से सरकार ने राजस्व म 10 प्रतिशत कमी करना मजूर कर लिया।"

सत्याग्रह मे जनता को जो विजय मिली उससे ब्रिटिश सरकार और उसकी प्रतिष्ठा को बडा गहरा धक्का लगा। साथ ही भाग्य के भरोसे चुपचाप कष्ट सहन करने वाले किसानो को अपनी शक्ति का भान हुआ। इसी आदोलन के फलस्वरूप वल्लभभाई, सरदार पटेल के रूप मे सामने आए और भूलाभाई जनता के परोकार के रूप म।

5

काग्रेस मे प्रवेश और कारावास

इसस आग भूलाभाई की प्रवत्तिया काग्रेस की गतिविधि स सबद्ध है। इसलिए 1929 स आग राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रगति पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

मद्रास के काग्रेस अधिवेशन (1927) म काय समिति को दश की अन्य स्थाओ के प्रतिनिधियो के सहयोग से भारत के लिए स्वराज्य का विधान तयार रके, इसे बाद म होने वाले विशेष सम्मेलन म पेश करने का काम सौंपा गया। इके अनुसार मोतीलाल नहरू की अध्यक्षता म सवदलीय समिति बनी, जिसकी रपाट 1928 म लखनऊ म हुए (हिन्दू मुसलमानो के) सवदल सम्मेलन ने स्वीकार की। इसमे औपनिवेशिक स्वराज्य का प्रतिपादन किया गया था। पर दिसम्बर 1928 मे कलकत्ता के काग्रेस अधिवशन म पूण स्वाधीनता की माग उठी। जवाहर-लाल नेहरू और सुभाष बोस इडिपेंडेंस लीग का सगठन कर इस बात के लिए लोक त भी तयार कर रहे थे कि हमारा लक्ष्य पूण स्वाधीनता स कम नही होना चाहिए। म भावना के कारण गाधीजी न समझौत के रूप म यह सुझाया कि ब्रिटिश पाल-मेंट (औपनिवेशिक स्वराज्य सम्बन्धी) इस विधान को इस वर्ष (31 दिसम्बर 1929) अत तक ज्यो का-त्यो स्वीकार कर ले तो काग्रेस इसे अपना लेगी। और पूण वाधीनता का प्रचार करन म यह प्रस्ताव बाधक नही होगा।'

समझौते के रूप म किए गए काग्रेस के इस प्रस्ताव स राजनीति का सक्रिय आदोलन एक तरह स टल गया। 1929 का साल शाति से बीतने की आशा थी। लेकिन ऐसा नही हुआ और आतकवादी आदोलन अचानक नए सिरे से भडक

भूलाभाई ने देश के किसानो की बडी सेवा की, क्योकि जाच कमीशन के
का देश भर मे सरकारी राजस्व नीति पर असर पडा। स्वय भूलाभाई ने
म कहा है, "अपनी सारी सपत्ति की जब्ती का खतरा उठाकर भी कि
निश्चय किया कि हम बढा हुआ राजस्व नही देंगे, जिससे भारतीय जनता
यह बता सकें कि सत्याग्रह द्वारा लक्ष्य सिद्धि असभव नही है सत्या
सीमित और तत्कालीन उद्देश्य म सफल भी हुआ। बम्बई सरकार ने उस
स्वरूप काग्रेस की सहायता से इस आश्वासन के साथ जाच कमीशन नियु
कि जाच के फलस्वरूप न केवल बढा हुआ राजस्व ही माफ किया जा सकेग
जरूरत हुई तो मौजूदा दर मे भी कमी की जा सकेगी इस सम्बन्ध म
सात महीने गाव-गाव घूमे और अत म जाच के फलस्वरूप ऐसा निर्णय प्रा
जिससे बढे हुए राजस्व से तो मुक्ति मिली ही, साथ ही प्रत्यक्षत स्वीकार
हुए भी परोक्ष रूप से सरकार ने राजस्व म 10 प्रतिशत कमी करना म
लिया।"

सत्याग्रह मे जनता का जो विजय मिली, उससे ब्रिटिश सरकार औ
प्रतिष्ठा को बडा गहरा धक्का लगा। साथ ही भाग्य के भरोसे चुपचाप क
करने वाले किसानो को अपनी शक्ति का भान हुआ। इसी आदोलन म
वल्लभभाई, सरदार पटेल के रूप म सामने आए और भूलाभाई जनता क
के रूप म।

के आदेश को चुपचाप शिरोधार्य किया। ऐसा लगता है कि मोतीलाल नेहरू और गाधीजी कौंसिलो के बहिष्कार के पक्ष म हो रहे थे। जवाहरलाल नेहरू समाजवाद म अपनी आस्था लगातार प्रकट करत रह और काग्रेस म वामपथियो का नेतृत्व भी उ ह प्राप्त था। इतने पर भी 1927 मे यूरोप मे लौटने के बाद वह भी गाधीजी के प्रभाव मे आ रहे थे। अगले काग्रेस अधिवेशन के लिए गाधीजी ने उन्ही को अध्यक्ष बनाने का प्रस्ताव किया। उसके बाद से ही सुभाष बोस और जवाहरलाल नेहरू एक दूसरे स अलग होते गए हालाकि सुभाष बोस भी उन्ही की तरह युवको के नेता और काग्रेस मे वाम पक्ष के प्रतिनिधि थे।

31 अक्तूबर 1929 को वाइसराय लार्ड इरविन न लदन स वापसी पर एक घोषणा की। वह ब्रिटिश सरकार के बुलाने पर विचार विनिमय के लिए वहा गए थे। घोषणा म उन्होने कहा ब्रिटिश सरकार ने मुझे यह स्पष्ट घोषित करने का अधिकार दिया है कि 1917 की घोषणा म यह अभिप्राय असदिग्ध रूप स है कि भारत के सवधानिक विकास का स्वाभाविक लक्ष्य उसको उपनिवेश का दर्जा देना है।"

काग्रेस ने 31 दिसम्बर तक का जो अल्टीमेटम दिया था उसकी दृष्टि से वाइसराय के इस वक्तव्य को समझौते का कदम समझा गया क्योकि इसम भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य का अतिम लक्ष्य स्वीकार किया गया था। गाधीजी और मोतीलाल नेहरू ने एक वक्तव्य म इस घोषणा की सराहना की और भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य विधान बनाने मे सहयोग देने का प्रस्ताव किया। प्रस्तावित गोलमेज सम्मेलन (सवदल सम्मेलन) मे उन्होने काग्रेस को प्रमुख प्रतिनिधित्व देन का सुझाव रखा और इस बात की माग की कि उसमे यह विचार न हो कि औपनिवेशिक सविधान की योजना बनाना ही उसका काम होना चाहिए। मगर काग्रेस म एक वग ऐसा भी था जो इस विचार से सहमत नहीं था और गोलमेज सम्मेलन मे भाग लेने के खिलाफ था। इतने पर भी गाधीजी और मोतीलाल नेहरू की बात ही चली। दोनो नेता 23 दिसम्बर को वाइसराय से मिले और उनसे भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने का निश्चित आश्वासन मागा। लेकिन वाइसराय ऐसा नहीं कर सके और 31 अक्तूबर 1929 को उन्होने जो वक्तव्य दिया था, उससे आगे जाने मे उन्होने

उठा। साइमन कमीशन विरोधी प्रदर्शन का नेतृत्व करते हुए लाहौर में लाला लाजपतराय पुलिस की मार से बुरी तरह घायल हुए और उसके कुछ समय बाद ही उनकी मृत्यु भी हो गई, जो उस मार के ही फलस्वरूप हुई समझी जाती है। इसकी प्रतिक्रिया में दिल्ली में केंद्रीय असेम्बली के अंदर जब उसकी बैठक हो रही थी, बम फेंका गया और भगतसिंह, बटुकेश्वरदत्त तथा कई अन्य व्यक्ति उसके लिए गिरफ्तार हुए। 1929, के मध्य में पंजाब षड्यंत्र का मुकदमा चला। जेल में दुर्व्यवहार के खिलाफ भगतसिंह सहित कुछ कैदियों ने भूख हड़ताल शुरू की। अनशन करने वालों की हालत जब नाजुक हो गई तो देश में प्रचंड आंदोलन हुआ। जगह-जगह लोगों ने आवाज उठाई कि राजनीतिक कैदियों के साथ मानवता का व्यवहार होना चाहिए। आखिर सभी कैदियों को समझा बुझाकर अनशन छोड़ने को राजी किया गया। लेकिन बंगाल के यतीन्द्रनाथ दास फिर भी अडिग रहे और अनशन करते हुए 13 सितम्बर, 1929 को वह शहीद हो गए। आयरलैंड में ऐसी ही परिस्थिति में शहीद होने वाले वीर टेरेंस मकस्विनी के परिवार वालों ने इस अवसर पर जो संदेश भेजा, वह बड़ा मर्मस्पर्शी था। सन्देश यह था—

"यतीन्द्र दास की मृत्यु से हमें बहुत दुख हुआ और साथ ही गर्व भी। भारत जरूर आजाद होगा।"

यतीन्द्रनाथ दास की शहादत ने स्वभावतः युवक वर्ग की स्वाधीनता की भावना को उत्तेजित किया और क्रांतिकारी आन्दोलन को भी उससे बढ़ावा मिला। गांधी जी ने अपने सिद्धान्त के कारण इस अनशन का समर्थन नहीं किया और न 'यंग इंडिया' में इसका कोई उल्लेख किया।

खुद कांग्रेसी भी कई मामलों में परस्पर विरोधी विचारों के मालूम पड़ते थे। केन्द्रीय असेम्बली में कांग्रेस दल के नेता मोतीलाल नेहरू बंगाल में असेम्बली के नए चुनाव लड़ने की तैयारी कर रहे थे। इसी बीच 15 जुलाई 1929 को कांग्रेस कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव द्वारा कौंसिलों से पदत्याग करने का कांग्रेसजनों को आदेश दिया। यह कम आश्चर्य की बात नहीं थी कि जो मोतीलाल नेहरू बंगाल की कांग्रेस पार्टी को चुनाव लड़ने का प्रोत्साहन दे रहे थे, उन्होंने कांग्रेस कार्यसमिति

के आदेश का चुपचाप शिरोधार्य किया। ऐसा लगता है कि मोतीलाल नेहरू और गाधीजी कौंसिलो के बहिष्कार के पक्ष मे हो रहे थे। जवाहरलाल नेहरू समाजवाद मे अपनी आस्था लगातार प्रकट करते रहे और काग्रेस मे वामपथियो का नेतृत्व भी उन्हे प्राप्त था। इतने पर भी 1927 मे यूरोप मे लौटने के बाद वह भी गाधीजी के प्रभाव मे आ रहे थे। अगले काग्रेस अधिवेशन के लिए गाधीजी ने उन्ही को अध्यक्ष बनाने का प्रस्ताव किया। उसके बाद मे ही सुभाष बोस और जवाहरलाल नेहरू एक दूसरे से अलग होते गए हालाकि सुभाष बोस भी उन्ही की तरह युवको के नेता और काग्रेस मे वाम पक्ष के प्रतिनिधि थे।

31 अक्तूबर 1929 का वाइसराय लार्ड इरविन ने लदन से वापसी पर एक घोषणा की। वह ब्रिटिश सरकार के बुलाने पर विचार विनिमय के लिए वहा गए थे। घोषणा मे उन्होने कहा "ब्रिटिश सरकार ने मुझे यह स्पष्ट घोषित करने का अधिकार दिया है कि 1917 की घोषणा मे यह अभिप्राय असदिग्ध रूप से है कि भारत के सवधानिक विकास का स्वाभाविक लक्ष्य उसको उपनिवेश का दर्जा देना है।"

काग्रेस ने 31 दिसम्बर तक का जो अल्टीमेटम दिया था, उसकी दृष्टि से वाइसराय के इस वक्तव्य को समझौते का कदम समझा गया क्योकि इसमे भारत के लिए औपनिवेशक स्वराज्य का अतिम लक्ष्य स्वीकार किया गया था। गाधीजी और मोतीलाल नेहरू ने एक वक्तव्य मे इस घोषणा की सराहना की और भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य विधान बनाने मे सहयोग देने का प्रस्ताव किया। प्रस्तावित गोलमेज सम्मेलन (सवदल सम्मेलन) मे उन्होने काग्रेस को प्रमुख प्रतिनिधित्व देने का सुझाव रखा और इस बात की माग की कि उसमे यह विचार न हो कि औपनिवेशिक सविधान की योजना बनाना ही उसका काम होना चाहिए। मगर काग्रेस मे एक वर्ग ऐसा भी था जो इस विचार से सहमत नहीं था और गोलमेज सम्मेलन मे भाग लेने के खिलाफ था। इतने पर भी गाधीजी और मोतीलाल नेहरू की बात ही चली। दोनो नेता 23 दिसम्बर को वाइसराय से मिले और उनसे भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने का निश्चित आश्वासन मागा। लेकिन वाइसराय ऐसा नहीं कर सके और 31 अक्तूबर 1929 को उन्होने जो वक्तव्य दिया था, उससे आगे जाने मे उन्होने

अपनी असमर्थता प्रकट की । औपनिवेशिक स्वराज्य की दिशा में तत्काल आगे कदम का कोई आश्वासन न मिलने के कारण गांधीजी निश्चित रूप से स्वाधीनता के पक्ष में हो गए । इसके फलस्वरूप कांग्रेस क्षेत्र में उनका प्रभाव और भी बढ़ा ।

1929 के दिसम्बर में लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ । जवाहरलाल नेहरू उसके अध्यक्ष थे । स्वाधीनता के लिए उनमें बड़ा उत्साह था । उनके अध्यक्ष होने से कांग्रेस का वह अधिवेशन बड़ा जोशीला रहा । जैसी कि सम्भावना थी, उसकी कार्रवाई से कांग्रेस लार्ड इरविन के प्रस्ताव से और दूर हो गई । कांग्रेस द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव में कहा गया कि वर्तमान परिस्थितियों में गोलमेज कान्फ्रेंस में कांग्रेस के भाग लेने से कोई लाभ नहीं होगा । इसलिए यह कांग्रेस कलकत्ता में हुए पिछले साल के अपने अधिवेशन के प्रस्ताव के अनुसार घोषणा करती है कि कांग्रेस के विधान की धारा 1 में दिए गए 'स्वराज्य' शब्द का अर्थ पूर्ण स्वाधीनता होगा, साथ ही नेहरू (सर्वदलीय) कमेटी द्वारा तैयार की गई सारी योजना को खत्म करते हुए आशा करती है कि आगे से सभी कांग्रेस जन अपना पूरा ध्यान भारत के लिए पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने में ही लगाएंगे ।

प्रस्ताव में कांग्रेस जनों तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने वाले अन्य लोगों से यह भी कहा गया कि भविष्य में कौंसिलों के चुनाव में वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई भाग न लें और "कौंसिलों या उनकी कमेटियों में इस समय जो भी कांग्रेस जन हों वे इस्तीफा दे दें ।" प्रस्ताव का वह अंश भी इससे कम महत्वपूर्ण नहीं था जिसमें कांग्रेस महासमिति को यह अधिकार दिया गया कि 'जब भी वह ठीक समझे कुछ चुनी हुई जगहों में या और कहीं आवश्यक एहतियात के साथ करबन्दी सहित (सविनय अवज्ञा) सत्याग्रह का कार्यक्रम शुरू कर सकती है ।' सत्याग्रह आंदोलन को फिर से शुरू करने की तजवीज निःसंदेह गांधीजी ने इसलिए सामने रखी ताकि नौजवान और क्रांतिकारी अहिंसा की लड़ाई में शामिल होने का अवसर पाकर हिंसात्मक कारवाइयों से विरक्त हो इधर आ जाएं ।

कांग्रेस के दृष्टिकोण में लाहौर अधिवेशन में जो तब्दीली आई, उससे देश में सर्वत्र उत्साह की लहर दौड़ गई । 31 दिसम्बर की आधी रात को जैसे ही कांग्रेस

के अल्टीमेटम की अवधि समाप्त हुई, काग्रेस अध्यक्ष भव्य जुलूस मे रावी नदी के तट पर आए और उन्होने भारतीय स्वाधीनता का तिरंगा झण्डा लहराया। अद्ध रात्रि का समय और लाहौर की कड़ाके की सर्दी के बावजूद असख्य जनसमुदाय उस ऐतिहासिक दृश्य को देखने के लिए वहा उपस्थित था। तिरगा झण्डा ज्यो ज्यो ऊपर चढा, भारी जनसमुदाय हर्षविभोर हो उठा और भारत के गौरवमय भविष्य की नई आशा का सचार हुआ।

2 जनवरी 1930 को काग्रेस की नई कार्यसमिति की बैठक हुई और उसके आदेशानुसार फरवरी 1930 म विभिन्न प्रान्तो के काग्रेसी सदस्यो ने कौंसिलो से इस्तीफे दे दिए। स्वाधीनता के विचार को व्यापक बनाने के लिए कार्यसमिति ने 26 जनवरी को सारे देश म स्वाधीनता दिवस मनाने का निश्चय किया। इसके लिए उस दिन ग्रहण करने के लिए कार्यसमिति ने स्वाधीनता का प्रतिज्ञापत्र तैयार किया, जिसमे कहा गया कि "हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रो की भाति स्वतत्रता को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं" और विश्वास व्यक्त किया कि "भारत को अगरेजो से सम्बन्ध विच्छेद करके पूर्ण स्वराज्य (स्वाधीनता) प्राप्त करना चाहिए।" कहने की जरूरत नही कि स्वाधीनता दिवस सारे देश मे सभी जगह बडे उत्साह के साथ मनाया गया।

अब सभी लोग सविनय अवज्ञा रूपी सत्याग्रह की प्रतीक्षा करने लगे, जिसका लाहौर काग्रेस के प्रस्ताव मे जिक्र था और जिसका शुरू होना गाधीजी और कार्यसमिति पर अवलम्बित था। कार्यसमिति ने अपनी ओर से यह भार पूरी तरह गाधीजी और उनके अनुयाइयो पर डाल दिया। कार्यसमिति ने गाधीजी के प्रस्ताव का स्वागत करते हुए उन्हे तथा उनमे विश्वास रखने वाले उनके ऐसे साथियो को, जिनका स्वराज्य की प्राप्ति के लिए अहिंसा म धार्मिक विश्वास हो, अधिकार दिया कि "वे जब, जिस तरह और जहा तक उचित समझें, सविनय अवज्ञा शुरू कर दें।"

गाधीजी ने, जैसी कि उनकी आदत थी, 2 मार्च, 1930 को वाइसराय को पत्र लिखकर अपने इस निर्णय की सूचना दी कि मै साबरमती से कोई 200 मील से अधिक दूर गुजरात के समुद्रतटवर्ती गाव दाडी मे नमक बनाकर सत्याग्रह आन्दोलन

शुरू करूंगा । इस तरह कानून भंग की पूर्व सूचना देकर 12 मार्च, 1930 को 79 स्त्री पुरुष सत्याग्रहियों के साथ गांधीजी ने साबरमती-आश्रम से प्रस्थान किया और पदयात्रा करते हुए 5 अप्रैल को दाडी के समुद्र-तट पर पहुंचे। सचमुच वह बडी भव्य विजय यात्रा थी। रास्ते भर गांववालों के झुण्ड के झुण्ड जमा हो जाते, जो चारों तरफ से आते, सड़कों पर छिड़काव करते, पत्ते बिछाकर सत्याग्रहियों का मार्ग सुगम बनाते और सत्याग्रहियों की चरणरज से पुण्य लाभ करते। तीन सौ से ज्यादा पटेल अपनी नौकरी छोड सत्याग्रह में शामिल हो गए। 6 अप्रैल के बड़े सवेरे अपने दल के साथ गांधीजी ने सागर में डुबकी लगाई और स्नानोपरान्त किनारे आ समुद्र की लहरों के साथ आया हुआ नमक उठाकर सत्याग्रह किया। यह कानून भंग मात्र सांकेतिक था, लेकिन जिस तरह इसका आयोजन किया गया वह अद्भुत था। 241 मील की 24 दिन की धीमी पदयात्रा से प्रचार कार्य में बडी मदद मिली और शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार की खुली अवज्ञा ने नेता और जनता सभी पर बहुत प्रभाव डाला। इस प्रकार गांधीजी का संकेत पाकर देशभर में जगह जगह नमक बना बनाकर नमक कानून की अवज्ञा की जाने लगी। शहरों में ऐसा नमक तसलों में बनाया जाता। फिर क्या था, गिरफ्तारियों और दमन का तांता लग गया। थोड़े-बहुत नहीं, बल्कि साठ हजार राजनीतिक कैदी जेलों के कठघरों में पहुंच गए। तारीफ की बात यह थी कि ठोकरों और लाठियों से पिटाई तथा गिरफ्तारियों के बावजूद भारतवासी अहिंसक रहे। यह मानना ही पड़ेगा कि यह योजना गजब की सूझ थी और इस पर अमल भी बड़ी कुशलतापूर्वक किया गया। गांवों की पदयात्रा ने गांववालों में जागृति ही नहीं पैदा की, बल्कि स्वराज्य के लिए कांग्रेस की लड़ाई का यथार्थबोध भी उन्हें करा दिया। यात्रा की छोटी से छोटी बातें विस्तृत रूप से अखबारों में निकलतीं। गांधीजी के प्रति लोगों की अपार श्रद्धा और उनके द्वारा उठाए गए आन्दोलन के प्रति सार्वत्रिक उत्साह की लहर ने सत्याग्रह की इस पदयात्रा को सचमुच 'दाडी की तीर्थयात्रा' बना दिया और सारे देश में उसने अभूतपूर्व उत्साह का संचार किया। सरकार और उसके पृष्ठपोषकों ने शुरू-शुरू में उसकी अवहेलना की और खिल्ली उड़ाई। अंग्रेज़ी अखबार (स्टेटसमन) ने तो यह कटूक्ति भी की कि "महात्माजी चाहें तो सागरजल को तब तक पकाते रह सकते हैं जब तक कि औपनिवेशिक स्वराज्य न मिल जाए।" लेकिन शीघ्र ही अवज्ञा और उपहास

स्थान चिन्ता और भय ने ले लिया। 6 अप्रैल को गांधीजी ने नमक कानून की
ातिक रूप में जो अवज्ञा की उससे देश भर को ऐसा ही करने की प्रेरणा मिली।
। प्राकृतिक कारणवश गैरकानूनी तौर से नमक बनाना संभव नहीं था वहीं
ं कानूनों की अवज्ञा का निश्चय किया गया। जैसे कलकत्ता में वहां के मेयर
न्द्रमोहन सेनगुप्त ने सार्वजनिक सभा में राजद्रोही साहित्य पढ़कर कानून भंग
ा। शराब और अन्य नशीली चीजों का जोरदार बहिष्कार शुरू हुआ, साथ ही
ी कपड़े और ब्रिटिश माल के बहिष्कार के लिए धरना भी दिया जाने लगा।

लोगों को डराने के लिए सरकार की ओर से घोर अत्याचार हुआ जिनमें
मना और वडाला में तो बहुत ही क्रूरता बरती गई। दमनचक्र जोरों से चला और
सरकारी कानूनों का बोलबाला हो गया। अखबारों का मुंह बंद करने के लिए
ी किए गए प्रेस आर्डिनेंस के मातहत 131 अखबारों से कुल 2,40,000 रु०
ानत के तौर पर वसूल किए गए। 9 अखबारों ने तो जमानत देने से इनकार
प्रकाशन ही स्थगित कर दिया। कांग्रेस को देश भर में गैरकानूनी करार दे
ा गया और सरकार को उसकी सारी सम्पत्ति जब्त करने का अधिकार मिला।
िन इस सबके बावजूद आंदोलन में और खासकर उसमें सक्रिय भाग लेने वालों
हलचल में कोई कमी नहीं हुई। आन्दोलन के लिए धन संग्रह और स्वयंसेवकों
भरती आदि के काम जब खुलेआम करना संभव नहीं रहा तो पुलिस की नजर
कर गुपचुप किए जाने लगे। फलतः सरकारी निषेध के बावजूद सभाओं और
सों का ही आयोजन नहीं हुआ, बल्कि गैरकानूनी तौर पर अखबार, बुलेटिन
पर्चे भी छपकर बंटते रहे। बम्बई जैसे कुछ स्थानों में तो रेडियो के द्वारा भी
ेस का प्रचार किया गया और पुलिस पूरी कोशिश के बावजूद उसका पता नहीं
पाई।

ऐसी परिस्थिति में 5 माच 1930 को सरकार ने गांधीजी को गिरफ्तार
लिया।

गांधीजी की गिरफ्तारी के विरोध में गिरफ्तारी के कुछ ही दिन बाद, बंबई

मे बहुत बडा जुलूस निकला । तब लाख से अधिक व्यक्ति इसम शामिल हुए । य
फोट की तरफ जा रहा था । विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन के सामने पुलिस न
रोका । जुलूस वाले आगे रास्ता रका देख वही सडक पर बठ गए और
का एक जोशीला अनुयायी आगे आकर बार बार कहने लगा "चलाओ गोली,
मेरी छाती म ।" एक अ य व्यक्ति न जुलूस मे शामिल लोगों को सबोधन कर कहा,
मरने को तयार हो वही डटा रह बाकी अपन अपन घर चले जाए ।" लेकिन
तिल भर भी अपनी जगह स नहीं हटा । आखिर रात के 8 बजे अधिकारी द्वारा
और जुलूस का अगरेजो की बस्ती फोट म जाने दिया । एक विदेशी पत्र प्रतिनिधि
अनुसार सशस्त्र पशुबल पर अहिंसा की इस विजय ने गाधीजी के अहिंसा के सि
की सफलता को पहली बार मूर्त्य प्रदान किया ।"

साइमन कमीशन न अपनी रिपोट 1930 की पहली जून को पेश की ।
जो सिफारिशें थी, उन्ह केन्द्रीय विधान सभा (इण्डियन लेजिस्लेटिव असेम्बली)
न सतोषप्रद नहीं माना, यद्यपि उस समय उसम काग्रेस का प्रतिनिधित्व करने
कोई राष्ट्रवादी सदस्य नही था । नरम दल वालो ने भी उससे असहमति प्रक
और इस बात पर जोर दिया कि गोलमेज सम्मेलन म उसे विचार का आधार
बनाया जाना चाहिए । काग्रेस के नेता जो जेलो म थे, उन्हे एक जगह कर उ
विचार करने की सुविधा की गई । विचारोपरान्त 15 अगस्त, 1930 को उन्होंने
रूप स एक वक्तव्य दिया । उसम कहा गया कि उन्हे या काग्रेस को एसा
समाधान स्वीकाय नही हो सकता जिसमे भारत को साम्राज्य से सम्बन्ध विच्छे
हक न मिले और जिसस भारत म ऐसी राष्ट्रीय सरकार बनाना सभव न हो ि
रक्षा और वित्त व्यवस्था पर भी पूरा नियत्रण रहे ।

पहला गोलमेज सम्मेलन लन्दन मे 12 नवम्बर, 1930 से 19 जनवरी,
तक हुआ और प्रधानमत्री रमजे मकडानल्ड ने उसकी अध्यक्षता की । सम्मेल
साम्प्रदायिक मतभेद खुलकर सामने आए । प्रधान मत्री के वक्तव्य के साथ यह
हुआ और इसमें उन्होंने ब्रिटिश सरकार के रुख का समथन किया । मोट तौर पर
यह भी बताया गया कि किस तरह का शासन विधान भारत के लिए ब्रिटिश स

बनाना चाहती है। 1935 मे जो शासन विधान बना वह उसी पर आधारित था। साइमन कमीशन की सिफारिशो से वह निःसंदेह अच्छा था।

गोलमेज सम्मेलन की समाप्ति के दो दिन बाद प्रयाग मे कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक हुई। उसमे ब्रिटिश प्रधानमंत्री के निर्णय को 'बहुत अस्पष्ट और सामान्य' बताते हुए कहा गया कि उसके आधार पर कांग्रेस की नीति मे कोई परिवर्तन नही किया जा सकता। यरवदा जेल मे 15 अगस्त, 1930 को कांग्रेस नेताओ ने जो निश्चय किया था उसकी कार्यसमिति ने पुष्टि की। हजारो स्त्री पुरुषो के जेल मे होते, जिनमे कार्य समिति के सभी सदस्य और महासमिति के अधिकांश सदस्य भी थे, कांग्रेस कोई नई नीति ग्रहण कर भी नही सकती थी। इसलिए स्वभावतः उसने आंदोलन को पहले दी हुई हिदायतो के अनुसार पूर्ण शक्ति से जारी रखने' के लिए देश से कहा। लेकिन प्रस्ताव अभी जारी से प्रकाशित भी नहीं हुआ था कि दूसरे दिन लंदन से सप्रू (तेज बहादुर) और शास्त्री (श्रीनिवास) का तार मिला, जिसमे उन्होने कार्यसमिति से उनके आने से पहले और उनकी बातें सुने बगर प्रधानमंत्री के भाषण पर कोई निर्णय न लेने की प्रार्थना की थी। 26 जनवरी 1931 को कार्यसमिति के सदस्य भी जेल से रिहा कर दिए गए।

गोलमेज सम्मेलन के सदस्य 1931 की फरवरी मे वापस आए। यहां आने पर उन्होने कांग्रेस नेताओ से गोलमेज सम्मेलन मे प्रस्तुत विचारो के अनुसार पूरी योजना तैयार करने मे सहयोग करने का अनुरोध किया। सप्रू और शास्त्री के प्रयत्न से आखिर वाइसराय लार्ड इरविन से गांधीजी की मुलाकात और बातचीत हुई। इस बातचीत के फलस्वरूप ही दोनो मे वह समझौता हुआ जिसे 'गांधी इरविन पैक्ट' कहा जाता है। समझौते पर कार्यसमिति मे विचार के समय जवाहरलाल नेहरू और वल्लभभाई पटेल सहित समिति के कई सदस्यो ने उसे पसंद नहीं किया। फिर भी 5 मार्च 1931 को उसने उसे स्वीकार कर लिया। स्पष्ट ही यहां से कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य का अपना आग्रह छोड दिया, यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से ऐसा नहीं किया गया। जवाहरलाल नेहरू उस समय कांग्रेस के अध्यक्ष थे। [illegible] यह कहना पड़ा कि समझौते की कुछ शर्तों से मैं सहमत नहीं हूं, फिर भी अनु—

पूर्ण सैनिक होने के नाते अपने नेता की बात मुझे माननी ही चाहिए। युवक आन्दोलन से अन्य नेताओं का जहां तक संबंध था, सुभाष बाबू समेत उन सबने तो शुरू से उसका विरोध किया।

भगतसिंह और उनके साथियों को मृत्यु दण्ड न देने की अपील के बावजूद कराची-कांग्रेस के ठीक पहले 29 मार्च, 1931 को उन्हें फांसी दे दी गई। इस पर देश में बड़ा क्षोभ फैला और जगह जगह उग्र प्रदर्शन हुए। भगतसिंह की फांसी से कांग्रेस अधिवेशन में भी मातम छा गया और कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा "प्रत्येक प्रकार की राजनीतिक हिंसा से अपने आपको अलिप्त रखते हुए और उसका विरोध करते हुए" भी भगतसिंह और उनके साथियों (सुखदेव और राजगुरु) के शौर्य और आत्मत्याग की सराहना की। गांधी इरविन समझौते का जहां तक संबंध था, उसे कांग्रेस ने स्वीकार किया।

अप्रैल 1931 में लार्ड इरविन चले गए और उनकी जगह लार्ड विलिंगडन वाइसराय हुए। इस परिवर्तन से लगा, मानो भारत के प्रति ब्रिटिश सरकार के रुख में परिवर्तन हो रहा है और आगे कड़ाई से काम लिया जाएगा।

दूसरा गोलमेज सम्मेलन 7 सितम्बर 1931 को शुरू हुआ, लेकिन इसके पहले ही ब्रिटेन में सरकार बदल गई। कंजरवेटिवों के दबाव पर मजदूर दल की सरकार का स्थान मिली जुली राष्ट्रीय सरकार ने लिया, जिसमें रमजे मक्डानल्ड के प्रधानमंत्री बने रहने पर भी इंडिया आफिस का कार्यभार सम्युअल होर ने संभाला वह कंजरवेटिव थे। गांधीजी दूसरे गोलमेज सम्मेलन में शामिल हुए, लेकिन उनकी पूरी कोशिश के बावजूद भारत में केन्द्र और प्रान्तों में दोनों जगह तत्काल ऐसा पूर्ण उत्तरदायी शासन कायम कराने में उन्हें सफलता नहीं मिली जिसे वित्त, सुरक्षा और सेना तथा विदेश मामलों में भी पूरे अधिकार हों। सच्चाई तो यह है कि पहले गोलमेज सम्मेलन में जो कुछ हुआ था दूसरे सम्मेलन में उससे आगे कोई प्रगति नहीं हुई और उसकी समाप्ति पर गांधीजी खाली हाथ ही भारत लौटे।

इधर गांधीजी लंदन में थे तभी बंगला और युक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) में आर्डिनेंस

जारी कर दमनचक्र शुरू कर दिया गया। वह भारत के रास्ते मे थे, इसी बीच सीमा प्रात मे पठानो पर फौज ने गोली चलाई और आ ोलनकारी कई पठानो को मार डाला। इन सब बातो से सारे देश मे बडा क्षोभ था।

गाधीजी ने बम्बई पहुचते ही वाइसराय को तार भेजकर बगाल, सीमाप्रात और युक्त प्रात के मामले मे बातचीत करने के लिए बिना शर्त भेंट का अनुरोध किया। लार्ड विलिंगडन उस समय कलकत्ता मे थे उन्होने मिलने से इनकार कर दिया। 7 जनवरी, 1932 के तार मे 'सत्याग्रह की धमकी के बीच' गाधीजी से किसी बात चीत की सभावना को ही वाइसराय ने असभव बनाया। ऐसा गाधीजी के तार मे सरकारी दमन का विरोध करते हुए की गई इस सूचना पर किया गया कि सरकार यदि बाज नही आई तो अहिंसा की अपनी मर्यादा मे रहते हुए काग्रेस को भी कुछ-न-कुछ करना ही पडेगा। लार्ड विलिंगडन अपने कडेपन के लिए मशहूर थे और ब्रिटेन मे उनके लिए कहा जाता था कि भारत मे ब्रिटिश प्रभुत्व को वह किसी तरह ढीला नही पडने देंगे। ऐसी हालत मे यह स्वाभाविक ही था कि अधाधुध दमन और गिरफ्तारियो का दौर जारी रहता। तब काग्रेस की कार्यसमिति ने, जिसकी बम्बई मे बैठक हो रही थी, पुन सविनय अवज्ञा शुरू करने का निश्चय किया।

इस पर जनवरी के आरभ मे ही गाधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया और महीना खत्म होते-होते देशभर के अधिकाश काग्रेस नेता जेलो मे पहुच गए। वाइसराय द्वारा आर्डिनेंस पर आर्डिनेंस जारी किए जाने लगे और फरवरी की पहली तारीख से पहले ही कई हजार काग्रेसी स्त्री पुरुष जेलो मे जा पहुँचे। अखबारो की आजादी के दमन के लिए प्रेस आर्डिनेंस जारी किए गए। लेकिन सविनय अवज्ञा का आ दोलन खत्म नही हुआ। 1930 की तरह व्यापक चाहे वह न रह पाया हो, फिर भी बन्द नही हुआ और किसी न किसी रूप मे चलता ही रहा। यहा तक कि सरकारी निषेधाज्ञा के बावजूद, काग्रेस के गैरकानूनी होते हुए दिल्ली और कलकत्ता मे काग्रेस के दो अधिवेशन भी हुए।

अब हम भूलाभाई की प्रवृत्तियों पर आए, जो लिबरल पार्टी से इस्तीफा देकर 1930 मे काग्रेस मे शामिल हो गए थे। ब्रिटिश माल के बहिष्कार के कायल

हो जाने पर उन्होंने बंबई में स्वदेशी सभा की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य था बहिष्कार को आगे बढ़ाना था। बंबई के उद्योगपतियों पर उनका बहुत प्रभाव था। इसके अलावा इस काम में एफ० ई० दिनशा नाम के एक सालिसिटर ने भी उनका साथ दिया। इससे सूती कपड़े के 80 कारखाने (मिल) स्वदेशी सभा में शामिल हो गए। उसकी सदस्यता की मुख्य शर्त यह थी कि उसमें शामिल होने वाला कोई सूती कारखाना 18 नम्बर से कम सूत या कपड़ा नहीं बनाएगा और न कपड़ा बनाने में विदेशी सूत या रेशम का ही उपयोग करेगा। सभा का काम ठोस था और उसके बहुत कारगर होने के कारण आखिर 1932 में, सरकार ने उसे गैरकानूनी करार दे दिया।

1931 के कराची कांग्रेस अधिवेशन में कार्यसमिति से ब्रिटेन के प्रति भारत की आर्थिक देनदारी की जांच के लिए कमेटी नियुक्त करने को कहा गया था। उसके अनुसार भारत में ईस्ट इण्डिया कंपनी और ब्रिटिश सरकार की आर्थिक कारवाइयों तथा भारत के तथाकथित सरकारी ऋण की जांच पड़ताल कर यह बताने के लिए कि भविष्य में वैध रूप में भारत को कितनी देनदारी माननी चाहिए, कमेटी बनाई गई। इसमें डी० एन० बहादुरजी के० टी० शाह और जे० सी० कुमारप्पा के साथ भूला भाई भी रखे गए। 1931 में कार्यसमिति ने उसकी रिपोर्ट प्रकाशित की। जांच के फलस्वरूप कमेटी इस परिणाम पर पहुंची थी कि भारत के ऊपर जो सरकारी ऋण है वह केवल देश की भलाई के लिए नहीं लिया गया। इसलिए उसका सारा भार अकेले भारत पर ही नहीं पड़ना चाहिए। कमेटी ने कहा

भारत में ईस्ट इण्डिया कंपनी ने जब से राजनीतिक सत्ता प्राप्त की तब से ग्रेट ब्रिटेन उससे बराबर अपनी संपत्ति प्रतिष्ठा बढ़ा रहा है। इसके विपरीत जहां तक खुद भारत का सवाल है उसके उद्योग धंधे या तो नष्ट हो गए हैं या नष्ट कर दिए गए हैं और भारत ब्रिटेन में बने या उत्पादित माल का बाजार मात्र रह गया है। भारत को अंग्रेजों के लिए सभी तरह की फौजी और गैरफौजी नौकरियों का भी व्यापक क्षेत्र बनाया गया है, जिनको मिलने वाली तनख्वाहों और पेंशनों का ही अगर हिसाब लगाएं तो उसका योग भी विपुल संख्या में होगा यही तथ्य

इस बात के लिए काफी होने चाहिए कि किसी भी नैतिक और न्यायपूर्ण दृष्टिकोण से भारत के नाम पड़े हुए इस सरकारी ऋण का भार भारत पर [illegible] ब्रिटेन के ऊपर डाला जाना चाहिए। [illegible] भारत में रखी जाने वाली [illegible] सेना के लिए यह नहीं कहा जा सकता कि सारी उसी की रक्षा के लिए वह रखी जा रही है। यह तो बहुत कुछ यहां ब्रिटेन का कब्जा बनाए रखने के लिए ही है और [illegible] सबरो की भाषा में कहें तो ब्रिटेन की साम्राज्यवादी [illegible] देशों में लड़ने के लिए ही उसे यहां रखा गया है। ऐसी हालत में [illegible] सुझाए तो गलत नहीं होगा कि जिस भारत का साधारण [illegible] है उसका आंशिक भार ब्रिटेन को वहन करना चाहिए और [illegible] का उतना अंश कम करना चाहिए।'

इन उथल पुथल वाली राजनीतिक घटनाओं के बीच [illegible] जाने की भी बारी आ गई। भूलाभाई के पुत्र धीरूभाई ने [illegible] कर ली थी। 1932 के आरम्भ में अहमदाबाद के [illegible] उनका विवाह भी हो गया और कुछ महीने सारा परिवार [illegible] भूलाभाई कांग्रेस की प्रवृत्तियों में सक्रिय भाग [illegible] वह गिरफ्तार कर लिए गए। गिरफ्तारी [illegible] 25 [illegible] 1932 को [illegible] तहत भूलाभाई की गिरफ्तारी [illegible] 'आर्डिनेंस' [illegible] पर ही स्पेशल पावर्स आर्डिनेंस के मातहत [illegible] कमिश्नर स्वयं उन्हें गिरफ्तार करने आए। [illegible] फिर पुलिस कमिश्नर के दफ्तर में [illegible] गया और बाद बंबई की जेल में उन्हें नासिक [illegible] रहे। उनकी गिरफ्तारी पर बम्बई के [illegible] बंद हो गए थे। कानूनी [illegible] दा की। [illegible]

बाद में उन्हें एक [illegible] और [illegible] की सजा दी गई। इस बार मैं [illegible] है नहीं कि उनकी गिरफ्तारी [illegible] की उनकी प्रवृत्तियां के कारण [illegible]

और उन्हें कद भी उसी के कारण हुई। या भी वह उन कुछ लोगों में से थे जिनसे साल की शुरुआत में ही सरकार ने कांग्रेस के विषय में अपना रुख स्पष्ट करने के लिए कहा था। यही नहीं, जुलाई 1932 में गिरफ्तार होने के कुछ समय पहले से उन पर पुलिस की निगरानी थी।

भूलाभाई की गिरफ्तारी पर उनके अनेक मित्रों को यह चिन्ता हुई कि आराम के जीवन के अभ्यस्त होने के कारण एक साल का जेल जीवन वह कैसे बिता सकेंगे। इसमें शक नहीं कि जेल में उन्हें 'ए' क्लास मिला और उसी हिसाब से उनके साथ विशेष व्यवहार भी किया गया। उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, इसलिए उनकी इच्छानुसार उनके खाने की विशेष व्यवस्था की गई। अपना खाना बाहर से मंगवाने की विशेष अनुमति मिल जाने पर जेल से बाहर उन्होंने इसके लिए एक बंगला किराए पर लिया और खाना बनाने के लिए रसोइया रखा, वहीं से उनका खाना जेल में आता था। उनके पुत्र पुत्रवधू और मित्रों को अनुमति लेकर समय-समय उनसे मिलते रहने की भी पूरी सुविधा थी। मगर इन विशेष सुविधाओं के बावजूद उस समय जेल के कुछ नियम ऐसे थे जो अन्य बंदियों की तरह 'ए' क्लास वालों पर भी लागू होते थे। जेल के तत्कालीन सुपरिण्टेण्डेण्ट मेजर जनरल भण्डारी के ही अनुसार उस समय प्रचलित एक नियम ऐसा था जिसके अनुसार सभी कैदियों को, फिर वे किसी भी दर्जे के क्यों न हो रात के वक्त उनकी कोठरी में पेशाब पाखाने के लिए मट्टी का एक बर्तन रखकर उन्हें ताले में बंद कर दिया जाता था। 'ए' क्लास वाले सत्याग्रहियों को स्वभावतः यह अच्छा नहीं लगा और इसका विरोध करते हुए उन्होंने कहा कि स्वेच्छा से गिरफ्तार होने वाले तो भागने का मौका मिलने पर भी नहीं भागेंगे।

भूलाभाई के जेल-जीवन का जहां तक सम्बन्ध है, नासिक जेल के तत्कालीन सुपरिण्टेण्डेण्ट मेजर जनरल भण्डारी के अनुसार वह 'और लोगों से बहुत भिन्न थे। प्रार्थना और गीता पाठ से उनका दिन आरम्भ होता था। इसके बाद वह कानून सम्बन्धी ही नहीं, बल्कि विभिन्न विषयों की पुस्तकें पढ़ते रहते और उनके नोट भी लेते। जेल में उन्होंने इतनी किताबें पढ़ीं कि रिहाई के वक्त तक इन्होंने अच्छे

खासे पुस्तकालय का रूप ले लिया था। इसके अलावा जल म किसी भी स्थिति मे वह कभी उत्तेजित नही हुए।"

फिर भी यह जिज्ञासा बना रहती है कि भूलाभाइ पर, जा आमतौर पर रोज दस दस घण्ट या उससे भी अधिक काम करत थ जेल के एका त और निष्क्रिय जीवन का क्या असर पडा? सौभाग्यवश घर वालो को जेल से लिखे उनके कुछ पत्र मौजूद हैं जिनसे इस जिज्ञासा के समाधान म सहायता मिल सकती है। पुत्र और पुत्रवधू से दूर होने पर उन्हे लम्बा पत्र लिखने की उनकी आदत थी, जिसके कारण जेल म ही नहीं उसके बाद भी उन्होने यही सिलसिला रखा। अक्सर दोनो का वह इकट्ठे ही पत्र लिखते थे।

गिरफ्तारी और सजा के कोई बीस दिन बाद ही 17 अगस्त 1932 को लिखा हुआ उनका पत्र बहुत लम्बा है। उसस जेल की उनकी मनोदशा का पता चलता है। "अपनी गिरफ्तारी के बाद से मेरे मन म तरह तरह के विचार आए हैं।" यह बतात हुए उन्होने लिखा 'पहले सप्ताह मेरे दिमाग पर बहुत बोझ पडा और अपने प्रति सहानुभूति रखने वाले किसी के सामने होन की मेरी हिम्मत नही होती थी, क्योकि उससे मुझे यह ख्याल आता था कि किस तरह अचानक मै शेष दुनिया स अलग कर दिया गया और यहा भेजा गया जहा तीन चार सजायाफ्ता कैदियो और एक सिपाही के सिवा कभी कदास ही कोई मित्र नजर आता है।'

इसके बाद कारावास के अ त बाह्य प्रभावो का विश्लेषण करते हुए उन्होन बताया कि लोगो की प्रशसा का कितना ही महत्व क्यो न हो और उससे आत्मगौरव का भान भी क्यो न होता हो फिर भी जेल के बधनयुक्त एकात जीवन को बिताने के लिए वह काफी नही है। यही नही बल्कि राष्ट्रीय सग्राम म योगदान का आत्मसतोष भी उसम बहुत सहायक नही होता। अनेक वष पूव थेकरे की 'एसमाण्ड' पुस्तक म जसा पढा था, दुनिया के लिए ऐसी घटनाए नगण्य हैं और दुनिया के सब काम तो पहले की तरह ही चलते रहते हैं। रोज का वही क्रम बडी बडी दीवारो से घिरे सूनेपन में रहना, लोहे के छडों के अन्दर ताले म बद रहते हुए भी चौकीदारों का बराबर निगरानी रखना और सावत रहना—ये सब ऐसी अप्रिय बातें हैं जिनका

मुकाबला किसी कारगर सिद्धात से ही किया जा सकता है वह कारग सिद्धा त आखिर क्या है, जिससे यह स्थिति काबिले बर्दाश्त हो और ईश्वर की अनुकपा से अ त म शायद उपयोगी भी ठहरे ? मैं उसकी तलाश मे [redacted] । लेकिन अभी तो मैं महात्मा जी से ही निष्ठा उधार ले रहा हू, जिन्होंने हमारा स्वत त्रता पर जोर दिया है और हममे से कम से कम कुछ के मन पर तो यह बिठा ही दिया है कि वह जिस तरह भी प्राप्त हो और उससे भौतिक सुख समृद्धि की वृद्धि हो या नही पर स्वय उसका अपना ही बडा महत्व है ।

स्वतत्रता की अनुभूति को उ होने ऐसा बहुमूल्य बताया जिसके प्रमाण की आवश्यकता नही ' इसके नाम पर और इसकी रक्षा के लिए दुनिया म अनगिनत लोगो ने अपनी जानें दी हैं और अकथनीय कष्ट उठाए हैं । महात्मा जी न राष्ट्र से त्याग और बलिदान की जो माग की है उसका इससे बडा उपयोग क्या हो सकता है कि भारतवासी जान लें कि स्वतत्रता ऐसा मूल अधिकार है जिसकी प्राप्ति के लिए कोई भी कीमत या बलिदान ज्यादा नही है । इसका हमे भान होना ही चाहिए कि इस समय तो स्वत त्रता क्या, उसके दिखावे से भी हम वचित हैं पश्चिम के लोगों ने हमसे हमारी स्वत त्रता छीन ली है । इसके विरुद्ध हमे सग्राम करना ही चाहिए और उस सग्राम को, स्वत त्रता की लडाई को, न केवल व्यापक बनाना चाहिए बल्कि जब तक लक्ष्य सिद्ध न हो तब तक पीढी दर पीढी बराबर जारी रखने की कोशिश करनी चाहिए ।

इस सम्ब ध म उनकी यह चेतावनी उनके राष्ट्रवाद का उग्र पर अनुभवपूर्ण रूप व्यक्त करती है —' हुकूमत करने वाली जाति शासित जाति को स्वतत्रता का उपहार कभी नही देती, इसलिए उससे स्वत त्रता के लिए प्रार्थना करन का कोई लाभ न होगा । सवैधानिक आ दोलन या ऐसे ही दूसरे तरीको का जिनके नाम पर देशभक्ति का ढोग करने वाले अपने को और दूसरो को धोखा देत हैं कोई मूल्य नहीं है । स्वत त्रता की माग के लिए सविनय अवज्ञा के सिवा कोई चारा नही है, क्योकि सरकार के बनाए प्रत्येक कानून के आगे हम सिर झुकाते रहें तो हम गुलाम बनाए रखन के लिए आवश्यकतानुसार कानून बनाने मे वह कभी कसर नहीं रखेगी और हम हमेशा गुलाम ही बने रहेंगे । अतएव अ याय कानून का हम विरोध करना ही

चाहिए नही तो अन्याय के विरुद्ध—या दूसरे शब्दो म कहें तो स्वत त्रता के लिए—लडाई कभी शुरू हो ही नही सकती। इसीलिए सविनय अवज्ञा प्रत्येक स्वतन्त्रता प्रेमी का जन्मसिद्ध अधिकार है और होना चाहिए।"

पत्र के अन्त मे उन्होंने कहा "मुझे लगता है कि एक सदी से अधिक समय के बाद स्वतन्त्रता की दशा मे हम सोचने लगे है और हमारी दास मनोवृत्ति बदलने लगी है, लेकिन निजी और वर्गगत स्वार्थ (जो दासता के अनिवार्य दोष हैं) तेजी से इस दिशा म बढने मे अभी भी कुछ रुकावट डालने हैं। पराधीन लोगो मे आत्मनिर्भरता की भावना लाने म कुछ समय लगता ही है। लोग कहते हैं, 'ऐसा भला कैसे हो सकता है ?' और निष्क्रिय बनकर परतन्त्रता मे पड़े रहते है। अत सबसे पहली आवश्यकता यही है कि लोगो को भान हो, हम स्वतन्त्र होना चाहिए, कभी न कभी इसके लिए प्रयत्न शुरू करना ही होगा, उस प्रयत्न या स्वतन्त्रता के सघर्ष मे हम अनगिनत कष्ट उठाने पड़ेंगे, स्वतन्त्रता पा लेने पर भी कठिनाइयो का अन्त नही होगा बल्कि अनेक जटिल समस्याओ का सामना करना पडेगा, फिर भी स्वतन्त्रता का महत्व है, और उसके लिए जो भी कष्ट उठाए जाए, अधिक नही। वह आवश्यक है और उसके लिए हमे सघर्ष करना ही चाहिए।'

उन्होने "आशा की भगवान की कृपा से, सघर्ष करते हुए, भारत स्वतन्त्र होकर रहेगा, और यह विचार ही वह कारगर सिद्धात होगा जिसके सहारे मैं जेल जीवन की नीरसता को न केवल बर्दाश्त करूगा बल्कि उसका लाभ भी उठाऊगा।"

गाधीजी के नेतृत्व मे काम करने से लिबरल (नरम दली) विचारधारा के बजाय सविनय अवज्ञा की क्षमता के वह कायल हो गए थे। उसके कारण कष्टपूर्ण और एकाकी जीवन के लिए तयार होकर उनका मन उसका औचित्य जानने के लिए आतुर था। ऐसा मालूम पडता है कि इस विश्वास म उन्होने उसे पा लिया कि उनका जन्म ही विदेशी सत्ता के खिलाफ स्वत त्रता की लडाई लडने के लिए हुआ है—ऐसी स्वत त्रता जिसके बिना मानव अस्तित्व का कोई अर्थ ही नही है।

एक महीने बाद स्वभावत अपने पुत्र की ओर उनका ध्यान गया जिसने वकालत का धन्धा अभी शुरू ही किया था। 8 सितम्बर 1932 को उन्होंने उसे लिखा

"जैसा मैंने अपने पहले पत्र में (जो तुम्हारे पास पहुंचा ही नहीं) लिखा था, बुराई में भी भलाई छिपी रहती है। अतः तुम जो अकेले पड़ गए हो उसमें भी यह भलाई है कि इससे तुम आत्मनिर्भर बनोगे, तुम्हारे अन्दर आत्मविश्वास जागेगा, निर्णय लेने की शक्ति बढ़ेगी और तुम्हारा मस्तिष्क व्यापक और ठोस बनेगा। दूसरे के दृष्टिकोण को समझने की प्रवृत्ति भी तुम्हें अपने में डालनी चाहिए। उससे दुहरा लाभ होगा—वकालत के धंधे में इससे इस बात का सही अन्दाज करने में मदद मिलती है कि अमुक व्यक्ति अमुक परिस्थिति में किस तरह सोचेगा और क्या करेगा; दूसरी ओर व्यक्तिगत जीवन में इससे कट्टरता कम होती है और अपनी ही बात पर अड़े रहने के बजाय दूसरे की बात को भी समझने की वृत्ति बनती है। भगवान की दया से तुम्हारी सफलता में मुझे कोई शक नहीं है।"

गुजराती नववर्ष के दिन, जब कि परिवार में बड़े लोग छोटों का मंगल कामना करते और उन्हें अपने आशीर्वाद देते हैं पुत्र और पुत्रवधू को उन्होंने एक लम्बा पत्र लिखा। इसमें उन्होंने अपने भावी मंसूबे बताए और मातृभूमि की सेवा के लिए दरिद्रनारायण की सेवा का संकल्प प्रदर्शित किया। 'जानबूझकर मैंने किसी का कोई अहित कभी नहीं किया है और ईश्वर ने चाहा तो अपने शेष जीवन का उपयोग मैं सक्रिय सेवा में ही करना चाहता हूं। भविष्य में मैं निस्संदेह गरीब, अशिक्षित, पददलित, पीड़ित और दुखी लोगों के बीच, उनकी दशा सुधारने का काम करूंगा। उनके दुख दूर करने के लिए किए गए थोड़े काम का भी बड़ा महत्व है।

'दुनिया में सर्वत्र और हमारे देश में खास तौर पर लोगों की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि उन्हें रहने को अच्छी जगह, तन ढकने को पर्याप्त कपड़ा, विश्राम के लिए अवसर और आत्मसुधार की सहूलियत हो। यह उनकी रोजमर्रा की आवश्यकता है जिसकी पूर्ति पर ही मानव की तरह वे सामान्य जीवन यापन कर सकते हैं। पर्याप्त रूप में सामान्य रूप से पौष्टिक आहार, उपयुक्त निवास, अच्छे कपड़े, उचित विश्राम, मातृभाषा का ज्ञान, पण्डे पुजारियों और धार्मिक विधि विधान के चक्कर से मुक्त रहते हुए भी ईश्वर में पूर्ण विश्वास—इस तरह का आस्तिक, साफ

सुथरा जीवन हम लोगों का हो जाए तो हमारे देश की हालत ही बदल जाए। हिन्दू धर्म तथा भारतीय परंपराओं से भी हमारे देशवासी कितने दूर होते जा रहे हैं। उन्हें उनके दायित्व का बोध कराना कठिन नहीं होना चाहिए, लेकिन इस ओर प्रयत्न ही नहीं हुआ है। ईश्वर ने चाहा तो, जेल से बाहर आने पर योजना बनाकर इस दिशा में संगठित कार्य करने का मेरा विचार है।"

अंत में कहा 'राष्ट्रीयता देशभक्ति स्वतन्त्रता, सच्चे भ्रातृत्व और वास्तविक समानता की भावना लोगों में लाने के लिए (देश की सभी भाषाओं के माध्यम से) देशभर में नियमित और सतत प्रचार करना चाहिए। इसके साथ-साथ व्यापक राष्ट्रीय सिद्धान्तों के आधार पर संगठनों का सभी प्रांतों में जाल बिछा देना चाहिए, जिससे कोई भी विचार तत्काल और बिना किसी प्रत्यक्ष प्रयत्न के सब जगह पहुंच जाए। प्रांतीय स्वराज्य या स्वायत्तता के रूप में हमें क्या मिलेगा, यह मैं नहीं कह सकता, लेकिन अगर वह सच्ची और वास्तविक हो तो उसके जरिए सरकारी तंत्र का उपयोग कर किसान मजदूरों की रोजमर्रा की जिंदगी में बहुत जल्द सुधार किया जा सकता है। इस तरह देश सेवा की, जो हमारे यहां गरीब और उपेक्षितों यानी दरिद्रनारायण की सेवा का ही पर्यायवाची है, पूरी कोशिश करूंगा।

उनका मस्तिष्क इस प्रकार अब देशवासियों को पण्डे पुजारियों, धार्मिक विधि विधान, जातिप्रथा तथा अन्य सामाजिक बुराइयों से मुक्त कर उनका जीवन स्तर ऊंचा करने के व्यापक प्रश्न के समाधान में लग गया था। स्वतन्त्रता का, उनके विचार में, बहुसंख्यक देशवासियों के लिए तब तक कोई अर्थ नहीं जब तक कि उनके रहन सहन में सुधार न हो और वे सभ्य मानव जीवन न बिताने लगें, जिसमें जीवन की अच्छी चीजों का वे उपभोग करें और उससे अधिक की भी आशा करें।

नववर्ष की शुभ कामनाओं का उनका ढंग भी उल्लेखनीय है, जो उस पत्र में इस तरह व्यक्त हुआ। "मेरे प्यारे बच्चो, तुम्हारे साथ, जब तक ईश्वर का अनुग्रह रहे सुख से जीने की मेरी इच्छा है, क्योंकि मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि

शुभ जीवन भर मुझे सहारा ही नही दोगे बल्कि अपनी सद्‌भावना, सहिष्णुता सहानुभूति, बुद्धिमत्ता और इस सबसे बढकर अपने प्रेम से मेरे जीवन को समृद्ध सुखी और देदीप्यमान बनाओगे। विनम्र होने पर भी मुझे तुम्हारे ऊपर गर्व है और बडे सुखी हृदय से मैं भगवान से नववर्ष पर तुम्हारे लिए शुभ कामना करता हूं।"

नवबर मे जेल मे लिखे उनके पत्रो मे ऐसी कुछ पुस्तको का उल्लेख भी है जिन्हे वह पढ रहे थे।

वह लिखते हैं "यह बात मैं फिर कहना चाहता हू कि बहुत और अधाधुध पढने के बजाय जो पढो उसकी बिल्कुल सही जानकारी ग्रहण करने पर ध्यान दो। तथ्यों का विश्लेषण करके आवश्यक-अनावश्यक के भेद को जान लेने का अभ्यास करो, जिससे निजी, सार्वजनिक और वकालत के मामलो मे ठीक वक्त पर ठीक मुद्दा उठा सको।'

19 दिसबर 1932 को लिखे पत्र मे वह फिर कारागार मे बिताए वक्त का जिक्र करते हैं "इस साल की समाप्ति के साथ मुझे पर छोडे पाच महीने हो जाएगे। मुझे यह मानना ही पडेगा कि समय इतनी जल्दी बीता है जितनी मैंने की आशा मैंने नहीं की थी। जितनी जल्दी पाच महीने निकल गए उससे लगता है कि सजा की शेष अवधि को भी इसी तरह जल्दी काट लूगा। लेकिन इसकी चिन्ता मे मैं क्यो पडू? इस समय तो मेरा प्रयत्न यही होना चाहिए कि अपना स्वास्थ्य बनाए रखू और समय का पूरा सदुपयोग करू। एक महीने या उससे ऊपर तक पढते रहने के बाद जो कुछ पढा उसकी प्रतिक्रिया अकित करने और उसमे से जो देश लाभ का हो उसे बताने की इच्छा होगी।'

वस्तुत उनका ध्यान देश की विविध समस्याओ पर था, जैसा आगे उन्होंने लिखा 'भविष्य के काम के सबध मे अभी मैं बिल्कुल अनिश्चित हू। देश की स्थिति काफी बदल गई है और नए शासन सुधारो को जो विविध प्रकार की प्रतिक्रिया सामने आई है उससे स्थिति अनिश्चित है। इससे राष्ट्रहित मे खुले तौर पर सक्रिय काम करने मे रुकावट पडने की सभावना है। अततोगत्वा हमारा काम लोगो

राजनीतिक चेतना पैदा करना है और किसानों के मन से जड़ता और भय को निकालना है। इसके लिए अंतर्राष्ट्रीयता और विश्वबंधुत्व के बजाय राष्ट्रीय भावना पर विशेष ध्यान देना चाहिए, क्योंकि देशप्रेम की बात ज्यादा असर करती है। अपनी राष्ट्रीय सरकार होने पर हमें न केवल विदेशी शासकों के अपमानपूर्ण व्यवहार से मुक्ति मिलेगी बल्कि हमारी भौतिक उन्नति भी होगी और दशा सुधरेगी। यह बताया जाए तो उसका तत्काल असर होगा। वर्तमान शासन के विरुद्ध स्वाभिमान अभी भी हमारे अन्दर पूरी तरह जागृत नहीं हुआ है। इस सबके लिए योजना बनाना कठिन नहीं है। आशा है कि गांवों में जाकर काम करने वाले काफी कार्यकर्ता मिल जाएंगे जो निजी स्वार्थ से ऊपर उठकर राष्ट्र की प्रगति पर ही ध्यान दें। लोकतंत्र में जनता शिक्षित की जाएगी ताकि वह स्वयं विचार कर सके, फिर भी नेताओं को विभिन्न विषयों में पारंगत होना पड़ेगा और जनता का नेतृत्व करना होगा। जनता को गरीबी और गुलामी से छुटकारा मिले यह उनका उद्देश्य होना चाहिए। साथ ही जनता को भी परलोक की चिंता में वक्त न खराब करके सही सोचने व ईमानदारी का और परिश्रमपूर्ण जीवन बिताने पर ध्यान देना चाहिए। हिन्दू समाज भी स्वर्ग प्राप्ति के लिए विविध धार्मिक कथाओं में मगज खपाने के बजाए भ्रातृत्व के आधार पर एक हो, यही इसका एकमात्र उपाय है।"

हरिजन लड़के लड़कियों की शिक्षा में सहायता करने और घर के काम काज में ज्यादा से ज्यादा हरिजनों को नौकर रखने की सलाह देते हुए, फिर यही बात कही 'अभी तो मैं वर्तमान परिस्थिति पर ही ध्यान दे रहा हूं, भविष्य के काम का जहां तक संबंध है, संदेह और कठिनाई से मुक्त होकर किसी निर्णय पर पहुंचने में समर्थ नहीं हुआ हूं। लेकिन सेवा की इच्छा होने पर काम अपने आप सामने आ जाएगा। रिहाई के बाद (जब भी वह हो) अगर मेरा स्वास्थ्य ठीक रहा, जैसा ईश्वर की कृपा से इस समय है, तो राष्ट्र की कुछ न कुछ सेवा करने की आशा रखता ही हूं।"

जनवरी और फरवरी (1933) में हम फिर उन्हें जेल में की गई पढ़ाई का

उल्लेख करते पाते हैं। 20 जनवरी के पत्र में उन्होंने पुत्रवधू को लिखा "अभी मैंने हाल्डेन की आत्मकथा पूरी की है। पुस्तक पठनीय और रखने योग्य है। अनेक बातों में उसमें मेरे कुछ दृष्टिकोण को बड़े स्पष्ट और निश्चित रूप में व्यक्त किया गया है। मैं व्यक्ति की स्वतंत्रता और कर्म में विश्वास करता हूं, पर मैं यह मानता हूं कि जहां तक फल का संबंध है उन पर अक्सर ऐसी परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है जिनकी हम पहले से कल्पना नहीं कर सकते, न उन्हें रोक या नियंत्रित ही कर पाते हैं। हाल्डेन इसे मानव जीवन में विद्यमान 'अनिश्चितता या अदृष्ट' बताते हैं। पुस्तक के अंत में उन्होंने कहा है, अच्छे से अच्छे व्यवस्थित जीवन में भी अनिश्चितता का बड़ा हाथ है, इसलिए दर्शनशास्त्र से हम उसके परिणामस्वरूप होने वाले सुख दुःख में अनासक्त रहने की शिक्षा लेनी चाहिए। मनुष्य तो यही आशा रख सकता है कि खूब सोच विचारकर किए व्यवस्थित काम का परिणाम अच्छा ही होगा। लेकिन विपरीत परिस्थिति, बीमारी, दुर्भाग्य या मृत्यु से सब सोचा विचारा व्यर्थ हो जाता है। फिर भी अगर हम सोच विचारकर काम करें, तो यह भावना तो रहेगी ही कि हमने अपनी पूरी योग्यता और क्षमता से उसे किया है और निश्चित परिणाम न निकलने पर भी सांत्वना, के लिए यही बात कम नहीं होगी।' जीवन के बारे में मेरा जो दृष्टिकोण है उसकी इससे अच्छी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। और इससे जब तक मैं जीवित रहूं, मुझे संतोष और सुख मिलेगा।'

15 फरवरी के पत्र में उन्होंने 'टाक्स विद मुसोलिनी' का जिक्र किया, जिसे 'काफी अच्छी' बताते हुए कहा "लेनिन और मुसोलिनी के सिद्धांतों में विपरीतता होते हुए भी उद्देश्य पूर्ति के साधन दोनों के एक से हैं—दोनों ने ही जो कुछ किया वह सब अपने अपने देश और देशवासियों के नाम पर और उनके हित में किया। दोनों के देशवासियों ने उनकी बातों को माना और उन्हें सहयोग भी दिया।"

आठ महीने के जेल जीवन ने उन्हें उसका अभ्यस्त बना लिया था जैसा कि 22 मार्च (1933) के उनके पत्र से स्पष्ट है "आठ महीने हो गए और, जैसा

in the year '७३ १-४-३)

स्वाभाविक था, मैं अब जेल-जीवन का अभ्यस्त बन गया हू । कभी कभी तो मैं अपने को सब चिताओ से बिल्कुल मुक्त अनुभव करता हू । मैं नही समझता कि बाहर रहते हुए रोजमर्रा के कामकाज और उससे पैदा हुई समस्याओ मे जो व्यस्त रहना पडता था यहा उसका अभाव होने से यह स्थिति है या मेरी मन स्थिति मे परिवर्तन हुआ है जिसका मैं स्वागत करता हू ।"

22 अप्रैल (1933) के उनके पत्र मे फिर अपनी पढी किताबो का जिक्र है । 'माई ट्र थाउजेण्ड ईयर्स के रचियता वियरेक द्वारा लिखित 'ग्लिम्पसेज आव दि ग्रेट' की प्रशसा करते हुए लिखा, 'हो सके तो अपने पुस्तकालय के लिए इसे मगा लो । इसमे यूरोप के विशिष्ट व्यक्तियो का बडा अच्छा चित्रण है । मसलन जर्मनी के काइसर विलियम से उसने पूछा कि उसको किस चीज से शक्ति मिलती है । उत्तर मे काइसर ने कहा कि कर्तव्य भावना और विनोदप्रियता । वास्तव मे विनोदप्रियता- अपने और दूसरे पर हस सकने की क्षमता आदमी को जीवन के कटु अनुभवो को हसकर भूल जाने की शक्ति देती है । इससे दिमाग का तनाव कम हो जाता है और सही ढग से सोचने मे आसानी होती है । जीवन की कटुता विनोद मे घुल जाती है ।

भूलाभाई जेल मे ही थे कि 23 अप्रैल 1933 को एक सरकारी नोटिस उन पर तामील हुआ जिसमे उनसे यह बताने को कहा गया कि देसाईगिरी के लिए उनके परिवार को बलसाड के सरकारी खजाने से मिलने वाले नकदी 20 रुपये वार्षिक भत्ते मे उनका कितना हिस्सा है और उसे उनकी सरकार विरोधी हलचलो के कारण क्यो न जब्त कर लिया जाए ? साथ मे यह भी सूचना थी कि पन्द्रह दिन मे कोई जवाब न मिलने पर समझा जाएगा कि इसकी कोई सफाई नही है और रकम जब्त करने की कारवाई की जाएगी । स्पष्ट ही उन्होने या उनके परिवार मे किसी ने इसका कोई जवाब नही दिया और भत्ते की रकम जब्त होने दी । उल्लेखनीय बात यह है कि उस समय की विदेशी सरकार कितनी सजग थी कि एक विद्रोही के 20 रुपये वार्षिक भत्ते के हिस्से को जब्त करने मे भी असावधानी नही की गई ।

७३ (९९)

जेल मे दात का दर्द बढकर फोडा हो जाने से भूलाभाई बहुत बीमार हो गए

थे। बीमारी के कारण ही सजा की पूरी मीयाद पूरी करने के कुछ दिन पहले ही, 4 जुलाई 1933 को उन्हें नासिक जेल से छोड़ दिया गया। बीमारी के कारण वह छह सप्ताह अस्पताल में रहे, जहां आपरेशन करके उनकी दंत-पीड़ा दूर की गई। 4 जुलाई के 'बाम्बे क्रानिकल' ने अपने समाचार में बताया कि विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन पर जब वह रेलगाड़ी से उतरे तो बड़े कमजोर मालूम पड़ते थे और उनका चेहरा पीला पड़ा हुआ था। जबड़े में लगे प्लास्टर को इंगित कर उन्होंने कहा कि अभी कुछ दिन मैं आराम करना चाहता हूं।

6 जुलाई को उन्हें गांधीजी का यह तार मिला : "अभी मालूम हुआ कि आप छूट गए और बहुत बीमार हैं, कृपया तार द्वारा अपना पूरा हाल भेजिए। बीमारी जल्द अच्छी होगी, ऐसी आशा है।" इसके बाद उसी दिन उन्हें यह दूसरा तार भी मिला : "सवेरे नासिक तार भेजा था। आने लायक हालत हो तो यहां चले आइए। तार से अपनी हालत की सूचना दें।"

भूलाभाई जेल में थे, उस बीच अनेक राजनीतिक घटनाएं हो चुकी थीं। 17 अगस्त 1933 को प्रधानमंत्री रमजे मैकडानल्ड अपने साम्प्रदायिक निर्णय की घोषणा कर चुके थे। उसमें मुसलमानों, अंग्रेजों और सिखों को पृथक निर्वाचन का अधिकार दिया गया था। लेकिन गांधीजी की दृष्टि में उसकी सबसे आपत्तिजनक बात दलित जातियों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था थी, जिनमें केवल दलित वर्ग के मतदाता ही मत दें। साथ ही ऐसे विशेष निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओं को सामान्य या आम निर्वाचन क्षेत्रों में भी मत देने का अधिकार दिया गया। यह जरूर है कि इस निर्णय के साथ मैकडानल्ड ने ऐसे विकल्प को स्वीकार कर लेने की रजामंदी भी जाहिर की जो हिंदू और दलितवर्ग मिलकर आपसी बातचीत से तैयार करें।

18 अगस्त को गांधीजी ने मैकडानल्ड को पत्र लिखकर बताया कि इस निर्णय के विरुद्ध 20 सितम्बर के दोपहर से वह आमरण उपवास शुरू करेंगे, जिसे इस योजना में संशोधन कर संयुक्त निर्वाचन पद्धति कायम करने पर छोड़ा जा सकता है।

गाधीजी के सभावित उपवास की खबर से सारे देश मे चिन्ता और सनसनी फल गई। इस गभीर निणय से उन्हे रोकने की कोशिश हुई, लेकिन उसमे कोई कामयाबी नहीं मिली। 20 सितम्बर को जब उपवास शुरू हुआ तो सारा देश हिल उठा। स्वय इग्लैण्ड मे भी कुछ प्रभावशाली व्यक्तियो ने अपने देशवासियो के नाम अपील प्रकाशित कर उनसे देश भर मे गाधीजी के लिए विशेष प्राथनाओ का आयोजन करने के लिए कहा। हमारे देश म तो उपवास शुरू करने का दिन सवत्र उपवास और प्राथना द्वारा मनाया ही गया।

लम्बे विचार विनिमय के बाद आखिर उपवास के पाचवें दिन दलित वग के नेता अम्बेडकर और मालवीय जी तथा अन्य लोगो क बीच, जिन्होंने इस काम के लिए नेता सम्मेलन का आयोजन किया था, एक समझौता हुआ। सक्षेप मे इसम दलितवग को सयुक्त निर्वाचन के साथ मैकडानल्ड के निणय मे नियत सख्या से अधिक सुरक्षित स्थान कुछ शर्तों पर देने का निश्चय हुआ। इन शर्तों के अनुसार प्रत्येक सुरक्षित स्थान के लिए यह व्यवस्था की गई कि प्राथमिक रूप से कवल दलितवर्गीय मतदाता ही कुछ उम्मीदवारो का चुनाव करेंगे। इस समझौते को पूना पैक्ट (या यरवडा समझौता, क्योकि यह गाधीजी के यरवडा जेल मे रहते किया गया था) कहा जाता है और सभी पक्षा न इसे स्वीकार किया। इसलिए सरकारी वैधानिक योजना मे इसके अनुसार सशोधन किया गया। इस तरह उन लोगो का प्रयत्न सफल हुआ जिनका तात्कालिक उद्देश्य गाधीजी की प्राण-रक्षा के लिए उनका उपवास समाप्त कराना था।

लोगो के मन मे यह प्रश्न फिर भी बना ही रहा कि ऐतिहासिक कहा जाने वाला यह उपवास जिस उद्देश्य से किया गया उसके लिए इसका किया जाना क्या आवश्यक था और उसके फलस्वरूप जो निणय हुआ उसे क्या सतोषजनक कहा जा सकता है ? इस सबध मे जवाहरलाल नेहरू की राय बहुत दिलचस्प है "राजनीतिक प्रश्न को धार्मिक और भावुक रूप मे लेने, साथ ही उसके सबध मे बार-बार भगवान की दुहाई देने पर मुझे सहज ही उन पर गुस्सा आया। पर उनका तो यहा तक कहना है कि उपवास का दिन भी भगवान ने ही तय कर दिया था। यह कैसा

खतरनाक उदाहरण है!" गांधीजी के अन्य अनेक अनुयायियों के भी ऐसे ही विचार थे और सविनय अवज्ञा आन्दोलन पर तो इसका बिलकुल विनाशक ही प्रभाव पड़ा।

मगर, आन्दोलन फिर भी जारी रहा। 26 जनवरी (1933) का स्वाधीनता दिवस देशभर में सबसे बड़े उत्साह के साथ मनाया गया। इस सिलसिले में निषेधाज्ञा के होते हुए भी कांग्रेस के जो जलूस निकले उन्हें भंग करने के लिए कई जगह पुलिस ने लोगों पर गोलियां चलाई। 17 फरवरी 1933 को कस्तूरबा को गिरफ्तार कर छह महीने की कैद की सजा दे दी गई। लेकिन सबसे प्रमुख घटना तो निषेधाज्ञा के बावजूद कांग्रेस का अधिवेशन करने की हुई। यह 31 मार्च 1933 को कलकत्ता में हुआ। "उसके लिए देश में विभिन्न भागों से 2,000 से अधिक प्रतिनिधि चुने गए थे, जिनमें से कोई एक हजार के करीब तो कलकत्ता को रवाना होने के पहले या रास्ते में ही गिरफ्तार कर लिए गए।" प० मदनमोहन मालवीय उसके अध्यक्ष चुने गए थे। उन्हें और जवाहरलाल नेहरू की माता स्वरूपरानी को, जिन्होंने उसमें शामिल होने का निश्चय किया था, अनेक अन्य नेताओं के साथ रास्ते में ही गिरफ्तार कर लिया गया था। इतने पर भी, निषेधाज्ञा के बावजूद, 'अधिवेशन के लिए चुने गए स्थान पर एक हजार से अधिक प्रतिनिधि एकत्र हुए और अधिवेशन शुरू हो गया। इसी बीच पुलिस आ पहुंची और उसने कांग्रेसजनों पर लाठियां बरसाना शुरू कर दिया। लेकिन पुलिस के भारी लाठी प्रहार से घायल होते हुए भी घेरे के बीचोबीच जो प्रतिनिधि थे उन्होंने यतीन्द्रमोहन सेनगुप्त की पत्नी सेनगुप्त का सभापति चुनकर अधिवेशन का काम जारी रखा। अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्तावों में (1) पूर्ण स्वतन्त्रता के लक्ष्य की पुष्टि की गई, (2) सविनय अवज्ञा का समर्थन किया गया और (3) विदेशी कपड़े तथा ब्रिटिश माल का बहिष्कार जारी रखने को कहा।"

इस कांग्रेस के अध्यक्ष के भाषण के इस अंश से उस समय देशभर में जारी दमनचक्र की झांकी मिलती है 'अनुमान है कि पिछले पन्द्रह महीनों में लगभग 1,20,000 व्यक्ति गिरफ्तार कर जेलों में ठूंस दिए गए, जिनमें कई हजार स्त्रियां और काफी बड़ी तादाद में बच्चे भी हैं। यह तो सर्वविदित है कि सरकार ने दमनचक्र शुरू किया तब उसने यह आशा की थी कि छह सप्ताह के अंदर ही कांग्रेस

को कुचलकर रख दिया जाएगा। लेकिन पंद्रह महीनों में भी सरकार ऐसा नहीं कर पाई है न पंद्रह महीने और दमन से भी वह ऐसा कर पाएगी।

8 मई 1933 को गांधीजी ने फिर 21 दिन का उपवास करने की घोषणा की। इस बार वह आत्मशुद्धि और हरिजनकार्य में (दलितवर्ग को अब हरिजन कहा जाने लगा था) अधिक लगन के लिए था। इस पर, उपवास के उद्देश्य को देखते हुए, सरकार ने गांधीजी को जेल से छोड़ देने का फैसला किया। रिहा होने ही, [redacted] मई को, गांधीजी ने एक वक्तव्य दिया। इसमें और बातों के साथ कांग्रेस अध्यक्ष से सविनय अवज्ञा आंदोलन को एक या डेढ़ महीने के लिए स्थगित कर देने की सिफारिश भी की गई।

सरकार से बातचीत शुरू करने के लिए ऐसा किया गया, तो स्पष्ट ही उसमें कोई सफलता नहीं मिली। सरकार ने अपनी स्थिति इस रूप में स्पष्ट की कि "कांग्रेस के साथ सविनय अवज्ञा आंदोलन बंद करने पर कैदियों की रिहाई की बातचीत कर इस गैरकानूनी हलचल के बारे में समझौता करने का सरकार का कोई इरादा नहीं है।" वाइसराय इस समय लार्ड इरविन नहीं लार्ड विलिंगडन थे। सविनय अवज्ञा बंद किए बगैर कांग्रेस से बातचीत करने का कोई सवाल ही नहीं था। वाइसराय ने एक वक्तव्य द्वारा इस बात को प्रमाणित किया कि लार्ड इरविन द्वारा किए गए (सरकारी दृष्टिकोण से) अपमानपूर्ण समझौते के बाद सरकार ने अपनी स्थिति सुधार ली है और वह पहले से कहीं शक्तिशाली है। माधवराव श्रीहरि अणे ने, जो उस समय कांग्रेस के अध्यक्ष थे, स्थिति पर विचार करने के लिए सम्मेलन बुलाया। उसमें उग्र मतभेद सामने आए और अंत में निश्चय हुआ कि गांधीजी वाइसराय से मिल कर सरकार के साथ किसी समझौते पर पहुंचने की कोशिश करें। लेकिन, जैसी कि संभावना थी वाइसराय ने गांधीजी से मिलने से इनकार कर दिया। इससे कांग्रेस को काफी धक्का लगा। ऐसी परिस्थिति में सामूहिक सत्याग्रह स्थगित कर वैयक्तिक सत्याग्रह की ही छूट दी गई—वह भी सिर्फ उन चुने हुए लोगों को जो उसके योग्य हों और स्वेच्छा से ऐसा करना चाहें। सामूहिक सत्याग्रह स्थगित होने से कांग्रेस की विविध कमेटियों और युद्ध परिषदों का काम भी ठप्प हो गया।

सामूहिक सत्याग्रह 8 मई 1933 को अचानक बंद कर देने से और तो और, गांधीजी के अनेक अनुयायियों को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। विट्ठलभाई पटेल और सुभाष बोस उस समय देश से बाहर थे। विदेश में ही एक वक्तव्य में उन्होंने इस निर्णय की निन्दा की और कहा कि इससे न केवल कांग्रेस के काम को धक्का लगा है बल्कि कांग्रेस ने पिछले 13 सालों में स्वतंत्रता के लिए जो काम किया था वह भी चौपट हो गया है। बंबई के एक नेता नरीमन ने भी गांधीजी की कड़ी आलोचना की और कहा, गांधीजी की ऐसी हरकतें रोकने के लिए हमें स्व॰ मोतीलाल नेहरू जैसे दबंग और स्पष्टवक्ता आदमी की जरूरत है जो गांधीजी के सुर में सुर मिलाने के बजाय जो बात ठीक लगे उसे साफ कहने में जरा भी न हिचकें।

लेकिन गांधीजी के अनुयायियों ने गांधीजी की आलोचना न की। यहां तक कि जवाहरलाल नेहरू तक ने यही कहा कि उनके कामों को हम सामान्य मापदण्ड से या मामूली तर्क से नहीं जांच सकते।

अब हम भूलाभाई की रिहाई के बाद हुई राजनीतिक हलचलों पर ध्यान देंगे। गांधीजी सत्याग्रह आंदोलन को बिना शर्त बंद करने के विरुद्ध थे। लन्दन से लौट कर जयकर ने खुलेआम यह कहा कि गोलमेज कान्फ्रेंस में जो आश्वासन दिया गया था कि वहां हुए समझौतों के आधार पर ही संसद में शासन सुधार के प्रस्ताव रखे जाएं उनको सरकार ने तोड़ा है। यह कहा जाता है कि गांधी जी का विचार यह था कि इस संबंध में वह वाइसराय से मिलेंगे और उनसे बातचीत करने के बाद ही यह तय करेंगे कि सत्याग्रह आंदोलन बंद किया जाये या नहीं। यही नहीं बल्कि उनके दिमाग में यह बात भी थी कि कांग्रेस नेताओं की 12 जुलाई को होने वाली बैठक में सत्याग्रह बन्द कराने का निश्चय किया गया तो वह कांग्रेस से अलग हो जाएँगे और आंदोलन जारी रखेंगे, चाहे उसमें मुट्ठीभर आदमी ही उनके साथ क्यों न हों।

सुभाष बोस उस समय वियना में थे वहां से उन्होंने लिखा कि राजनीतिक नेता के रूप में गांधीजी असफल रहे हैं। सत्याग्रह आंदोलन इसलिए असफल रहा, क्योंकि जब वह अपने पूरे जोर पर था तभी राजनीति से उसे अस्पृश्यता निवारण के समाजिक उद्देश्य की तरफ मोड़ दिया गया। कांग्रेस की प्रवृत्ति को इस तरह

बदल देने का ऐसा परिणाम होना स्वाभाविक ही था जो रणक्षेत्र में गए सनिकों को अचानक युद्ध के बजाय आबपाशी के लिए नहर खोदने के काम पर लगाने से होता। आदोलन को बद करना आत्मसमपण के सिवा और कुछ नही है।"

हार्निमन का विचार था कि आदोलन शिथिल पड गया है, इसलिए उसे बदकर हिंदू मुस्लिम एकता के लिए रचनात्मक काय करना चाहिए। उनके अनुसार आदोलन बद करने का अथ उस सरकार से सहयोग करना नही जो एक हाथ म लाठी और दूसरे मे विशेष अधिकार लिए रहती है। इतने पर भी यह मानना ही होगा कि आदोलन ने लोगो म उत्साह का ऐसा सचार किया था जैसा इससे पहले कभी नही हुआ। 11 जुलाई 1933 को खबर आई कि वाइसराय ने गाधीजी से मिलने से इनकार कर दिया है और लिखा है कि काग्रेस के सत्याग्रह (सविनय अवज्ञा) की नीति पर जमे रहते वह उनसे नही मिल सकते।

14 जुलाई (1933) को गाधीजी ने कांग्रेसी नेताओं के सम्मेलन मे भाषण दिया। उन्होंने कई वक्ताओ के इस कथन पर अफसोस जाहिर किया कि कायकर्ता लोग थक गए हैं और विश्राम चाहते हैं। इसके बजाय, "वे यह कहते कि वे स्वय थक गए हैं तो वह ज्यादा ठीक होता। कायकर्ता नहीं थके हैं। देश मे भी थकावट नही है। देश तो आदोलन को जारी रखने के लिए तयार है। सरकार हमसे पूरा आत्मसमपण चाहती है। लेकिन मैं तो मर मिटना पसद करूगा पर आत्मसमपण नही करूगा।" फलस्वरूप आदोलन बिना शत बद करने का प्रस्ताव 16 के विरुद्ध 40 के बहुमत से अस्वीकृत हो गया।

गाधीजी ने वाइसराय से जो मुलाकात चाही थी उसे वाइसराय ने यह कह कर ठुकरा दिया कि आदोलन बद किए बिना मिलना नही हो सकता। इस पर गाधीजी साबरमती आश्रम चले गए, जहा दो साल के बाद 19 जुलाई 1932 को वह पहुचे।

21 जुलाई 1933 को तत्कालीन काग्रेस-अध्यक्ष अणे ने एलान किया कि मालगुजारी और करबदी समेत सभी तरह का सत्याग्रह आन्दोलन बद कर दिया जाए और फिलहाल काग्रेस की सभी संस्थाए बद रहे।

25 जुलाई 1933 को साबरमती आश्रम को, जो 18 साल से कायम था और काम कर रहा था, गांधीजी ने भंग कर दिया। ऐसा करते हुए उन्होंने कहा 'दुनिया में ऐसी कोई चीज नहीं जिस पर मैं अपने स्वामित्व का दावा कर सकूं फिर भी कुछ ऐसी मूल्यवान चीजें मेरे पास हैं जिन्हें मेरी समझा जा सकता है और सत्याग्रह-आश्रम उनमें शायद सबसे बहुमूल्य है। मुझे लगता है कि जब मैं एक ऐसे काम को हाथ में ले रहा हूं जो मेरे लिए नया और पवित्र है, आश्रम के अपने साथियों को अपनी अब तक की प्रवृत्तियों का परित्याग कर उसमें अपना साथ देने के लिए मुझे आमंत्रित करना ही चाहिए।" कस्तूरबा, महादेव देसाई कालेलकर और बत्तीस अन्य आश्रमवासियों के साथ, जो बाद में उनका अनुसरण करने वाले थे, रास गांव की ओर कूच करने की उनकी तैयारी थी। लेकिन यह कूच शुरू होने के पहले ही, 1 अगस्त 1933 को, वे सब गिरफ्तार कर लिए गए।

लार्ड विलिंगडन का, जिन्हें कुछ अंग्रेजों ने ब्रिटिश प्रतिष्ठा का कट्टर संरक्षक बताया है, दमनचक्र इस समय पूरे जोर पर था। ब्रिटिश वायुसेना ने सीमा प्रान्त के गांवों पर भारी बमवर्षा की। यह ऐसा बड़ा जुल्म था कि लंदन के "न्यूज क्रानिकल" तक को कहना पड़ा, "वहां पर बमवर्षा अगर नैतिक दृष्टि से ठीक है तो लन्दन पर भी बमवर्षा करना अनैतिक नहीं कहा जा सकता।' लेकिन लार्ड विलिंगडन अपनी दमन नीति पर बदस्तूर कायम रहे। 4 अगस्त 1933 को गांधीजी रिहा कर दिए गए पर उसी वक्त उनको हुक्म मिला कि पूना नगर के सीमा क्षेत्र से बाहर न जाएं। उन्होंने तत्काल इस आज्ञा को भंग किया जिस पर उन्हें गिरफ्तार कर यरवदा जेल ले जाया गया। वहां उन पर मुकदमा चला कर उन्हें एक साल कैद की सजा दी गई। कस्तूरबा तथा अन्य स्त्रियों के साथ भी यही हुआ और उन्हें भी भिन्न भिन्न अवधियों के कारावास की सजा दी गई।

भूलाभाई की बीमारी दूर नहीं हुई था, इसलिए अपने पुत्र धीरूभाई और पुत्रवधू के साथ इलाज के लिए वह 7 अगस्त 1933 को यूरोप चले गए।

6

स्वराज्य पार्टी और चुनाव

भूलाभाई के दिल्ली में आ जाने के बाद 1934 35 में कांग्रेस कार्य समिति का पुनर्गठन हुआ। गांधीजी उसमें नया खून यानी नई पीढ़ी के कुछ लोगों को शामिल करना चाहते थे। जवाहरलाल की प्रेरणा से जयप्रकाश नारायण, मीनू मसानी तथा दो अन्य समाजवादियों को उसमें शामिल किया गया। सरदार वल्लभभाई बड़ी हिचकिचाहट के बाद इसमें सहमत हुए साथ ही भूलाभाई को भी कार्य समिति में लेने का उन्होंने आग्रह किया। इस प्रकार भूलाभाई कांग्रेस की कार्य समिति के सदस्य बन और फिर उसमें अनेक वर्ष रहे।

गोलमेज सम्मेलन के तीन दौर यानी उसके तीनों अधिवेशनों में जो निर्णय किए गए थे उन्हें 1933 के मार्च में एक सरकारी श्वेत पत्र में प्रकाशित किया गया। संसद के दोनों सदनों की संयुक्त समिति को वे सुझाव भेजे गए जिस पर विचारोपरान्त ही वह शासनविधान बना जिसे 1935 का भारत शासनविधान (गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट) कहते हैं।

2 अप्रैल 1934 को गांधीजी ने एक वक्तव्य निकाला, जिसे सत्याग्रह का मर्सिया कहा जाता है। सत्याग्रह स्थगित करने का जो सुझाव उन्होंने दिया उससे कांग्रेस के अनेक व्यक्ति सहमत नहीं थे। फिर भी पटना में 18 से 20 मई तक हुए अधिवेशन में कांग्रेस की कार्यसमिति दोनों ने गांधीजी की सिफारिश के अनुसार सत्याग्रह स्थगित करने का निर्णय किया साथ ही कौंसिल प्रवेश को कांग्रेस के कार्यक्रम का अंग मान लिया। इसके अनुसार 20 मई 1924 को सत्याग्रह आंदोलन बंद

हो गया और कौंसिल प्रवेश का जो प्रयोग 1923 में पहली बार शुरू करके 1925 में वापस ले लिया गया था उसे फिर से स्वीकार किया गया।

कांग्रेस ने कौंसिल प्रवेश का निर्णय किन परिस्थितियों में और कैसे किया, इसपर कांग्रेस के दो प्रमुख व्यक्तियों ने प्रकाश डाला है। जिस बैठक में इसकी योजना बनी मालूम पड़ती है उसका ब्योरा कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने इस प्रकार दिया है 'हममें से कोई तीस व्यक्ति 31 मार्च और 1 अप्रैल 1934 को दिल्ली में डा० अंसारी की कोठी पर जमा हुए। बैठक से पहले सारी स्थिति पर अच्छी तरह विचार कर लिया गया था। इस पर सभी एकमत थे कि स्वराज्य पार्टी गठित करने के सिवा कोई विकल्प नहीं है। गांधीजी को इस पर कोई आपत्ति न होगी, यह निश्चित करने के लिए, मुझे और डा० अंसारी को उन्होंने इस सम्बन्ध में जो पत्र लिखे थे, उन्हें फिर पढ़ा गया। इसके बाद रंगास्वामी आयंगार के मसौदे को, जिसमें गांधीजी ने स्वयं संशोधन किये थे, आधारस्वरूप स्वीकार किया गया। भारत सरकार केन्द्रीय विधान सभा (सेण्ट्रल असेम्बली) का चुनाव अक्टूबर या नवम्बर में कर डालना चाहती है, जिससे कांग्रेस चुनाव की तैयारी न कर पाए और उसमें सफल न हो सके ऐसी सूचना हाल में ही डा० अंसारी को मिली थी। इसलिए उन्होंने सुझाया कि प्रस्तावित स्वराज्य पार्टी को इस चुनाव में भाग लेना चाहिए। उपस्थित जनों में से अनेक को इस पर कुछ आश्चर्य हुआ क्योंकि कौंसिल प्रवेश विरोधी भावना बिल्कुल समाप्त नहीं हुई थी, लेकिन दूसरे दिन हममें से अधिकांश ने स्वीकार किया कि जो परिस्थिति है उसमें डा० अंसारी का सुझाव ही एकमात्र ऐसा सुझाव है, जिसे स्वीकार करना चाहिए। तब भूलाभाई देसाई की अध्यक्षता में बैठक हुई और उसमें सर्वसम्मति से स्वराज्यपार्टी संगठित कर चुनाव लड़ने का निश्चय हुआ। शर्त सिर्फ यह रखी गई कि गांधीजी को इसमें आपत्ति न हो और इसमें उनकी शुभकामना ही नहीं बल्कि हार्दिक समर्थन भी रहे। बैठक में इस तरह गांधीजी के निर्णय और नेतृत्व में स्पष्ट जो विश्वास व्यक्त किया गया वह उल्लेखनीय है। इसी दृष्टि से यह भी निश्चय हुआ कि परिषद के प्रस्ताव को जब तक गांधीजी देखकर स्वीकार न कर लें तब तक उसे प्रकाशित न किया जाए।'

मुंशी ने आगे बताया है कि "अगले दिन गांधीजी की स्वीकृति प्राप्त करने

के लिए डा० अंसारी, भूलाभाई देसाई और डा० विधानचंद्र राय पटना गए। गांधीजी ने उस पर सहमति प्रकट की। यही नहीं बल्कि उन्होंने तो यह जाने बगैर ही कि दिल्ली की बैठक ने उनकी सहमति की शर्त पर चुनाव लड़ने का फैसला किया है सत्याग्रह को जल्दी से बंद कर देने की भी सलाह दी। (अप्रैल 1934)।"

ऐसा लगता है कि दिल्ली में जो कुछ हो रहा था उसका कोई पता न होते हुए भी, पटना में खुद उनका दिमाग भी उसी दिशा में काम कर रहा था। यह बाबू राजेन्द्रप्रसाद के इन शब्दों से जाना जा सकता है। 'प्रस्तावित शासन सुधारों की त्रुटियों के बावजूद और कांग्रेस उसको स्वीकार करेगी या उसका विरोध करेगी इस पचड़े में पड़े बगैर बहुत से लोगों को लगा कि चुनाव तो हमें लड़ने ही चाहिए। कांग्रेस क्षेत्रों में यह चर्चा डा० विधानचन्द्र राय और भूलाभाई देसाई ने शुरू की। गांधीजी जो उस समय पटना में थे उन्होंने भी संभवतः इसपर विचार किया। जहां तक मेरा सवाल है, मैं तो भूकंप पीड़ितों की सेवा के काम में इतना व्यस्त था कि और किसी बात पर ध्यान दे ही नहीं सकता था।

आगे उन्होंने यह भी बताया कि बाढ़ पीड़ित क्षेत्रों का दौरा करते हुए एक बार हम भागलपुर जिले के सहरसा गांव में रुके हुए थे। सोमवार होने से गांधीजी का उस दिन मौन था। फिर भी मैंने उन्हें कुछ लिखने में मशगूल पाया। शाम को उन्होंने मुझे अपना लिखा एक कागज दिया और उसे पढ़कर राय देने को कहा। उसे पढ़ने पर मालूम हुआ कि उसमें सत्याग्रह बंद करने और आनेवाले चुनावों के संबंध में उनके विचार थे। उन्होंने बताया कि जेल से छूट कर आने के बाद मेरे कुछ निकटवर्ती साथियों ने मुझे जो कुछ बताया उसके फलस्वरूप ही मेरे ऐसे विचार बने हैं। रही मेरी बात सो जहां तक मेरे प्रांत का सवाल था सत्याग्रह में शिथिलता के अलावा भूकंप के कारण भी वातावरण बिल्कुल बदल गया था। वहां सत्याग्रह का न किसी को खयाल था न सत्याग्रह में पड़ने के लिए कोई उत्सुक ही था। राजनीतिक कार्यकर्ता तो जेल से छूटते ही पूरी तरह पीड़ितों की सेवा के काम में लग गए थे। इसलिए गांधीजी की बात मुझे ठीक ही लगी और उनके वक्तव्य का मैंने समर्थन किया। वह उसे अखबारों में प्रकाशित करने के लिए भेजना चाहते थे। सहरसा में तार घर न होने से मैंने आदमी के साथ उसे पटना भेजने की व्यवस्था की। लेकिन

आदमी उसे लेकर जाता उससे पहले ही महात्मा गांधी के नाम आया डा० अंसारी का तार लेकर पटना से एक आदमी आ पहुंचा । तार में डा० अंसारी ने सूचना दी थी कि भूलाभाई और डा० राय के साथ वह गांधीजी से कुछ परामर्श करने पटना आ रहे हैं। तब गांधीजी ने अखबारों को अपना वक्तव्य भेजने का विचार स्थगित कर दिया और हम लोग पटना रवाना हो गए। वहां डा० अंसारी तथा दूसरे लोगों के साथ लम्बे विचारविमर्श के बाद गांधीजी का वक्तव्य अखबारों को दिया गया। सत्याग्रह बंद करने के निर्णय को तो अनेक कांग्रेसियों ने पसंद किया पर बंद करने के जो कारण दिये गए थे वे निस्संदेह उन्हें ठीक नहीं लगे।"

कांग्रेस को कौंसिल प्रवेश के अनुकूल बनाने में भूलाभाई का सक्रिय योग रहा, यह शिलांग से 10 मई 1934 को लिखे उनके एक पत्र से स्पष्ट है। यही कारण है कि स्वराज्य पार्टी के पुनर्गठन का निश्चय कर लेने पर कौंसिलों के काम संचालन के लिए जो संसदीय बोर्ड बनाया गया उसका महामंत्री उन्हें ही नियुक्त किया। चुनावों की तैयारी और उम्मीदवारों के चुनाव में निस्संदेह उन्होंने बहुत सक्रिय भाग लिया। केंद्रीय असेम्बली के लिए वह स्वयं गुजरात से उम्मीदवार थे, फिर भी चुनाव अभियान के सिलसिले में देश के कई भागों में वह गए और कांग्रेसी उम्मीदवारों के पक्ष में भाषण दिए।

सत्याग्रह के झंडे तले कानून भंग की उग्र कारवाई के बाद कौंसिल प्रवेश का कार्यक्रम बहुतों को परस्परविरोधी बात लगी। कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता को अपना लक्ष्य घोषित कर उसकी प्राप्ति के लिए सत्याग्रह का आंदोलन शुरू किया था। वही कांग्रेस क्या अब सरकार से सहयोग करने कौंसिलों में जा रही है? लिबरलों में और उसमें फिर क्या अन्तर रहा? यह कार्यक्रम क्या ब्रिटिश प्रभुत्व का अंत कर देश को स्वतंत्र करने की उसकी घोषित नीति से मेल खाता है? इस तरह की अनेक जिज्ञासाओं के समाधान की जरूरत थी और भूलाभाई ने अपने भाषणों से इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किया। पिछले चार साल के गांधीजी के सम्पर्क का उनपर कितना गहरा असर हुआ था, यह भी उनके भाषणों से साफ मालूम पड़ा

उदाहरण के लिए 8 जुलाई 1934 को कोयम्बतूर में भाषण करते हुए उन्होंने कहा कि सत्याग्रह बन्द हो जाने के कारण कुछ लोग कहते हैं कि कांग्रेस हार गई। लेकिन मेरा कहना है कि यह बात कोई बेवकूफ ही कह सकता है कि केवल एक आन्दोलन से ही हमारा उद्देश्य सफल हो जाएगा। इस आन्दोलन से सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि हमारी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। जिस प्रश्न पर कांग्रेस चुनाव लड़ रही है वह केवल यही है कि देश भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ है या वह विदेशी सरकार की नीतियों का समर्थन करता है।

इसी प्रकार विजयवाडा में भाषण करते हुए उन्होंने कहा कि मैं आन्ध्र के लोगों को इस राष्ट्रीय आन्दोलन में शानदार भाग लेने के लिए बधाई देता हूं। इस आन्दोलन से यह सिद्ध हो गया है कि आत्मा की शक्ति को दुनिया की कोई ताकत दबा नहीं सकती। अगर हम अपने उद्देश्य में विफल हुए हैं तो इसका कारण यही है कि हमने महात्मा गांधी का पूरी तरह साथ नहीं दिया।

एक और सभा में भाषण करते हुए उन्होंने कहा कि यदि स्वतन्त्रता एक अच्छी वस्तु है तो यह केवल यूरोप के लिए ही नहीं बल्कि सारी दुनिया के लोगों के लिए है।

धार्मिक विधि विधानों के प्रति अत्यधिक आस्था के बारे में उन्होंने कहा कि हम धर्म के असली उद्देश्यों को भूल गए हैं। धर्म का असली उद्देश्य मनुष्य को ऊंचा उठाना है और उसकी आत्मा को मुक्त करना है। इसी दृष्टि से आज गांधीजी ने हरिजन आन्दोलन को चलाया है।

गांधीजी के दाण्डी कूच के महत्व पर उन्होंने विद्यार्थियों की एक सभा में कहा कि कभी कभी एक छोटी सी घटना से महान क्रान्तियों का सूत्रपात होता है। अमेरिका की स्वाधीनता की लड़ाई एक छोटी सी घटना से शुरू हुई थी, जबकि अमेरिकन देशभक्तों ने चाय के कुछ बक्सों को समुद्र में फेंक दिया था। इसी तरह जब आपके महान नेता ने नमक कानून तोड़ने के लिए 250 मील की पैदल यात्रा की और समुद्र की तह से एक चुटकी नमक उठाकर कानून तोड़ा तो यह कानून का मामूली उल्लंघन नहीं था बल्कि भारतीय जनता की स्वाधीनता का उद्घोष

था। यह भारत के इतिहास की सबसे बडी घटना है और यदि आप लोगो ने इसके महत्व को समझा होता और अपने कर्तव्य का पालन किया होता तो आज भारत म भी वही क्रांति हुई होती जो अमेरिका म हुई थी।

यह बताने की तो जरूरत ही नही कि चुनाव म वह सफल हुए और नवम्बर 1934 मे गुजरात से सेण्ट्रल असम्बली के लिए चुन लिए गए।

7

असेम्बली की कारगुजारी

भूलाभाई न देश की जो सेवा की वह दो क्षेत्रो म बहुत मूल्यवान रही । एक तो कानून के क्षेत्र मे, जहा बारडोली की जाच और आजाद हिन्द फौज के मुकदमे म परवी करके उन्होंने राष्ट्र की महत्वपूर्ण सेवा की, दूसरे विधान सभा क्षेत्र मे जहा 1919 के भारत शासन विधान के अन्तगत स्थापित लेजिस्लेटिव असेम्बली यानी केन्द्रीय विधान सभा म—जिसका अधिवेशन 1935 के प्रारम्भिक दिनो मे शुरू हुआ था—काग्रेस दल के नेता की हैसियत से उन्होंने काम किया ।

इस बात को सभी मानते हैं कि काग्रेस दल के नेता की हैसियत से जो जटिल और महान दायित्व उनके ऊपर आया था उसका उन्होन बडी कुशलता से निर्वाह किया । असेम्बली मे काग्रेस दल के सदस्या मे सत्य मूर्ति और गोविन्द वल्लभ पन्त जस महारथी भी थे, लेकिन सब उनम पूरा विश्वास रखते थे । यही नही बल्कि जैसा हम आगे देखेंगे, विपक्ष के लोग भी उनकी इज्जत और सराहना करते थे । नेता की हैसियत से वह बडे सयम और शिष्टता से काम करते थे और बहुत से मामलो म अपने पक्ष के प्रतिपादन का भार त अपने योग्य साथियो पर छोडकर उनके स्वाभिमान की रक्षा का पूरा ध्यान रखते थे । जिस तरह वहा उन्होंने काम किया उसे देखकर निस्सकोच कहा जा सकता है कि काग्रेस दल के नेतत्व के लिए उनसे बढ़कर आदमी दूसरा नही मिल सकता था । नेता, वक्ता और विवादपटु के रूप म तो [illegible] उज्जवल कीर्ति अर्जित की है, उनके अनेक ऐसे मानवी गुण भी [illegible] जिनके कारण जो भी उनके सपक मे आया, वे उनसे प्रभावित हुए और उनके [illegible] आदर की भावना रखे बिना नही रह सके । असेम्बली म जिस [illegible] उन्होंने [illegible]

किया, जसा वातावरण बनाया और जा मफलता प्राप्त की उसके सही और विस्तृत विवरण के बगर उनके व्यक्तित्व का सही मूल्यांकन नही हो सकता।

असेम्बली म कांग्रेस सदस्या की सख्या पचपन थी, पर वे दो पक्षों म विभक्त थे। एक पक्ष म वे ग्यारह सदस्य थे जो मालवीयजी और अणे के अनुयायी थे और अपने को कांग्रेस नेशनलिस्ट या राष्ट्रवादी कांग्रेसी कहते थे। दूसरे पक्ष म मुख्य कांग्रेस दल था, जिसके चवालीस सदस्य थे। बगाल के सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों के सभी स्थानो पर कांग्रेसी उम्मीदवार विजयी रहे जबकि पजाब म सिर्फ एक स्थान कांग्रेसी उम्मीदवार विजयी रहे, जबकि पजाब म सिर्फ एक स्थान कांग्रेस को मिला अन्य प्रान्तों मे कांग्रेस को भारी सफलता मिली। कांग्रेस की सबसे बडी सफलता आर० के० षणमुखम चेटटी की पराजय थी जिन्होंने भारत की ओर से ओटावा का वह बदनाम समझौता किया था जिससे ब्रिटिश माल को तरजीह मिलती थी और बाद म जो केंद्रीय असेम्बली के अध्यक्ष भी बनाए गए थे। कहना न होगा कि सरकार का पूरा समर्थन उन्हे था और उनकी सफलता के लिए सरकारी पक्ष ने पूरी कोशिश की थी। स्वतन्त्र या इण्डिपेण्डेण्ट कहलाने वालो मे तीन को छोड सभी मुसलमान थे और मुहम्मद अली जिन्ना उनके नेता थे। इनके बाद नामजद अफसरों और गैर सरकारी लोगो का बडा समूह था जिनकी सख्या क्रमश छब्बीस और तेरह थी। इनके अलावा गैर सरकारी अंग्रेजो का अलग एक गुट था। इस तरह अपने दो पक्षो के साथ, जो सामान्यत मतदान म साथ ही रहते थे, कांग्रेस को सरकारी पक्ष कुछ मिलाकर पचास से ज्यादा मत प्राप्त नही कर सकता था। इसलिए सतुलन स्वतन्त्र सदस्यो के हाथ म था और महत्वपूर्ण मामलो म अक्सर उनका योगदान निर्णायक रहा।

उन दिनो की असेम्बली भानुमती के कुनबे की तरह थी। वाइसराय की कौंसिल के सभी सदस्य सरकारी पक्ष म थे और ला मेम्बर (विधि सदस्य) नपेन्द्र नाथ सरकार सदन के नेता थे। नामजद अफसर और गरसरकारी सदस्य आमतौर पर अपने भाषणो और मतदान म सरकार के साथ रहते थे, इसम अपवाद बहुत कम कभी कभार ही होता था। सरकारी पक्ष मे सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्ति नपेन्द्र

नाथ सरकार और फाइनेंस मेम्बर (वित्त सदस्य) पर्सी जेम्स ग्रिग थे। नृपेन्द्रनाथ कलकत्ता के नामी वकील थे जिनकी वकालत में आमदनी भी बहुत थी। राजनीति में उनका कोई खास सरोकार नहीं था या उनके विचार हिंदू सभा के दृष्टिकोण से कुछ मेल खाते थे और कुल मिलाकर उनकी विचारधारा कांग्रेस के खिलाफ थी वक्ता वह अच्छे थे और जो कहना चाहते उसे संक्षिप्त और प्रभावकारी ढंग से कहकर अपनी बात मन में उतारने की उनमें अच्छी क्षमता थी। पर साथ ही जबान के तीखे भी थे और जरूरत पड़ने पर किसी पर भी आक्षेप करने और खरी खोटी सुनाने में कोई कसर नहीं करते थे। डरते किसी से नहीं थे, अपने पर उन्हें पूर्ण विश्वास था जब कभी सभा में और किसी भी विषय में जरूरत पड़ने पर वाग्युद्ध को हमेशा तैयार रहते थे। ग्रिग ब्रिटिश सिविल सर्वेण्ट थे और इंडियन सिविल सर्विस के सब उच्चतम पद पर ब्रिटेन की सिविल सर्विस से भारत आने वाले विरले लोगों में से एक थे। इंडियन सिविल सर्विस में भी उस समय अंग्रेजों का ही बहुमत था और उच्चतम सरकारी पदों पर उन्हीं का एकछत्र आधिपत्य था। भारतीय सदस्यों के लिए कानूनी तथा संवैधानिक रूप में कोई रोक न होते हुए भी उन्हें मुश्किल से ही कभी ऐसा कोई पद मिलता था। ग्रिग को ब्रिटिश वित्त विभाग का काफी अनुभव था और वहाँ के नाते आप ... ट्रेजरी में भी उन्होंने बड़े साल काम किया था, जिससे आयकर के मामलों के वह विशेषज्ञ थे। लेकिन वह झगड़ालू व्यक्ति थे, चाहे जब जिससे झगड़े पड़ने में जरा भी नहीं हिचकते थे। कहते हैं कि जरा भी गुंजाइश होने पर बड़ी आसानी से वह गाली गलौज पर भी आ जाते थे। अंग्रेज व्यापारियों की ओर से काफी बड़ी संख्या में चुने गए अंग्रेज व्यापारियों का नेतृत्व पहले कुछ समय लेस्ली हडसन ने किया, उसके बाद एल० सी० बस उनके नेता बने। कांग्रेस पक्ष में भूलाभाई के अलावा सत्यमूर्ति, गोविंदवल्लभ पंत, वी० वी० (व्यंकट वराह) गिरि श्रीप्रकाश नरहरि विष्णु गाडगील और अनंतशयनम अयंगार जैसे मशहूर आदमी थे।

मुस्लिम लीग नाम की उस समय कोई पार्टी नहीं थी, लेकिन कई प्रमुख मुसलमान सदस्य ऐसे थे जो राजनीति को मुसलमानों के दृष्टिकोण से ही देखते थे। जिन्ना, अब्दुल रहीम, मुहम्मद याकूब और जियाउद्दीन अहमद ऐसे ही सदस्य थे। कोलनगुडी के राजा और बम्बई के कावसजी जहांगीर जैसे कुछ सदस्य भी थे।

असेम्बली का अधिवेशन शुरू होने के कुछ समय बाद ही 22 जनवरी 1935 को उसमें एक कार्य स्थगन प्रस्ताव पर बहस हुई। उसमें भूलाभाई ने जो भाग लिया उससे यह बात साफ हो गई कि तुर्की-बतुर्की जवाब देने में वह किसी से कम नहीं। बहस शरत बोस को लेकर हुई, जिनकी गिरफ्तारी पर आसाम के गोपीनाथ बारडोलाइ ने सरकार की आलोचना की, कि उसने इस असेम्बली के एक निर्वाचित सदस्य को गिरफ्तार करके उसे सदन की कारवाई में भाग लेने से रोका है और इस तरह जिस निर्वाचन क्षेत्र ने उसे चुना, उसको इस सदन में प्रतिनिधित्व से वंचित कर सदन के अधिकार क्षेत्र में गंभीर रूप से हस्तक्षेप किया है। असेम्बली के अध्यक्ष शिडनी ने मर्यादा भंग के इस प्रस्ताव का विचार के लिए मंजूर तो किया, पर साथ ही सदस्यों के अधिकार क्षेत्र तक ही सीमित रहें और गिरफ्तारी या तत्संबंधी कानूनी कारवाई के बारे में कुछ न करें। जिन्ना ने इस पर जानना चाहा कि अधिकार क्षेत्र से उनका क्या आशय है क्योंकि उसकी व्याख्या कोई नहीं हुई है। अध्यक्ष ने कहा, 'सदन से सदस्य को अनुपस्थित रहने के लिए मजबूर करना और इस तरह सदस्य के रूप में उसके अधिकार से उसे वंचित रखना।'

बहस की शुरूआत में ही ला मेम्बर ने यह स्पष्ट किया कि केन्द्रीय असेम्बली में कानून बनाने वाली सर्वोच्च नहीं बल्कि मातहत संस्था (सबार्डिनेट लेजिसलेचर) है इसलिए अधिनियम प्रदत्त अधिकारों के अलावा उसके और कोई अधिकार नहीं है। प्रामाणिक पुस्तकों के उद्धरणों द्वारा भी उन्होंने यह स्पष्ट किया कि इंगलैंड के हाउस आफ कामन्स को जो अधिकार हैं वे या वैसे अधिकार उसके उपनिवेशों की सुप्रीम लेजिसलेटिव कौंसिल या असेम्बली को नहीं हो सकते। सदस्यों के बोलने की स्वतन्त्रता के हक के बारे में उन्होंने कहा, वह उन्हें भारत शासन विधान से मिला है, जिसका मतलब यह है कि वह सदन प्रदत्त नहीं बल्कि व्यक्ति को कानून से मिला हुआ हक है।

सिंध के सदस्य लालचन्द नवलराय के यह पूछने पर कि इसके आगे भी कुछ है या नहीं, ला मेम्बर ने मसखरेपन से जवाब दिया—'जरूर है, क्योंकि 1925 में, मैं समझता हूं, श्री लालचन्द नवलराय की मदद से' 'लेकिन वह आगे कुछ कहते उससे पहले ही लालचन्द नवलराय ने टोका और बताया कि मैं तो 1923 में ही

सदस्य बनकर आया हू । तब भी ला मेम्बर परास्त नही हुए और विनोदी ढग से कहने लगे—"मुझे अफसोस है कि श्री लालचन्द नवलराय की बहुमूल्य मदद के बगर ही एक कानून बना—1925 का 28 वा कानून । उसके मातहत कोई आदमी अगर इस असेम्बली का सदस्य हो तो किसी दीवानी मामले मे उसे कैद म नही रखा जा सकता ।" इस बात पर उन्होने विशेष जोर दिया कि उस कानून की जरूरत इसलिए पडी, क्योकि असेम्बली को किसी तरह का कोई अधिकार नही था । साथ ही सभवत काग्रेसी सदस्यो पर यह छीटाकशी की, कि उसके कारण वे असेम्बली के अधिवेशन के होते जेल जाकर सम्राट का आतिथ्य प्राप्त नही कर सकते । अन्त म उन्होने कहा 'शरत चन्द्र बोस को असेम्बली की हाजरी का समन भेजा गया, उससे उनके लिए अधिवेशन मे हाजिर होना कोई अनिवाय बात नही हो गई । या आन के अनिच्छुक होते, तो उसका कोई दण्ड उन्ह नही भुगतना पडता । इसलिए समन की भाषा कुछ भी हो, यह स्पष्ट है कि उसके कारण उनके लिए यह बाध्यता नही हुई कि उन्ह अधिवेशन मे हाजिर होना ही चाहिए । '

भूलाभाई ने इस पर जोरदार भाषण किया, जिसपर सरकारी विवरण के अनुसार बार-बार हषध्वनि हुई । असेम्बली मे यही उनका पहला भाषण था और इस महत्वपूण भाषण म उन्होने बताया कि अधिकार दो तरह के होते है (1) 'सदन का वह अधिकार, जिससे उसे निणय करने और नियम भग के अपराधी से नियम पालन कराने की सत्ता प्राप्त होती है', और (2) 'सदन का ऐसा अधिकार जो उसके सदस्य होने के नाते व्यक्ति को होता है, फिर यह दूसरी बात है कि इस देश मे आज जमी सरकार है वह उसको मानती है या नही ।" और इस बात पर जोर दिया कि कानून ने अगर सदन को ऐसा अधिकार नही दिया है ता कानून ने 1818 के तीसरे रगुलेशन जसे कानून के मातहत नजरबद सदस्य को, जैसे शरत बोस हैं, सदन मे उपस्थित होने के अधिकार से वचित भी नही किया है । इस रेगुलेशन को उन्होने 'मौजूदा सभी गर-कानूनी कानूनो मे सबसे क्रूर' बताया और अद्भुत कल्पना शक्ति एव दूरदर्शिता से काम ले सदस्यो से कहा "आइए हम सदन के अधिकार निश्चित करके इस देश मे कामन ला (सामान्य कानून) का विकास करें ।"

इस बात को वह नि सदेह अच्छी तरह जानते थे कि किसी खास अधिकार

या सुविधा पर जोर दिया गया तो अंग्रेजी शासन की ओर से उसका विरोध निश्चित है, इसलिए उन्होंने कहा "हम इस बात को नहीं भूल सकते, न हमें भूलना ही चाहिए कि जनता के अधिकारों और उसकी सुविधाओं के मामले में इस देश की सरकार का रुख जनता के प्रति सतत शत्रुतापूर्ण है, और यह बहुत बुरी मनोवृत्ति है।" और रोषपूर्ण स्वर में बताया कि अन्य किसी देश में ऐसा अन्याय नहीं हो सकता। साथ ही यह कहने से भी नहीं चूके कि सरकार का ऐसा विरोधी रुख आत्म विश्वास या दृढ़ता की निशानी नहीं है, इसके विपरीत वह उसके घटते आत्म विश्वास और इस इच्छा का द्योतक है कि सदन के लिए जिन व्यक्तियों को जनता ने विधिवत चुना है, वे हाजिर होने से रोककर सदन को उनकी सहायता से वंचित रखा जाए जिसके वे पूरे हकदार हैं।

आगे उन्होंने कहा: न्याय करने वाली किसी अदालत से जब किसी पर समन तामील होता है तो उसे न्यायालय लाया जाता है, यहां तक कि न्याय में सहायता के लिए जेल के फाटक तक खुल जाते हैं और जेल में बंद व्यक्ति (बंदी) तक को न्यायालय में पेश किया है। इसलिए यह बात सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि जिस व्यक्ति को किसी अपराध के लिए न्यायालय से दण्ड नहीं मिला है बल्कि केवल सरकारी आदेश पर जिसे नजरबंद किया गया है, उसे उस काम के लिए जो न्याया-लय की सहायता करने से अधिक नहीं तो उतना ही महत्वपूर्ण जरूर है, सदन में आने से रोका जाता है। सदन को—असेम्बली के सदस्यों को—यह स्थिति अस्वीकार करके यह स्पष्ट कहना ही चाहिए कि बोस को उससे कहीं ऊंचे दर्जे का, बड़ा, अनुल्लंघनीय अधिकार प्राप्त है और उस पर अमल की व्यवस्था होनी ही चाहिए।

यह जोरदार और मार्मिक अपील उनकी कुशल वकालत की सूचक थी पर साथ ही ऐसी भाषा में की गई थी जिसमें न तो कटुता थी और न उत्तेजना। यह स्पष्ट था कि प्रचलित कानून के अनुसार असेम्बली पूर्ण स्वतंत्र नहीं, बल्कि मात हत संस्था ही थी जिसके सदस्यों को कोई विशेष अधिकार प्राप्त नहीं थे, फिर भी अपने साथी सदस्यों से, कानून के संकीर्ण दायरे से ऊपर उठ कर देशभक्ति के व्यापक आधार पर समर्थन करने की अपील करके, उन्होंने सदस्यों के अधिकार का मामला निश्चय ही ऊंचे धरातल पर ला दिया।

उनके बाद प्रस्ताव पर जिन्ना का भाषण हुआ। ऐसा मालूम पड़ता है कि किसी मामले में बहस शुरू करने की उनकी आदत नहीं थी बल्कि अन्य किसी के बहस शुरू करने के बाद मामला अहम हो तो बीच में वह हस्तक्षेप करते थे, जिसमें उनसे पहले के वक्ता जो मुद्दे उठाते उनका पूरा लाभ वह उठा लेते थे। उनके भाषणों को बरसों बाद पढ़ने पर उनका कोई खास असर नहीं पड़ता लेकिन इसमें शक नहीं कि अपने बोलने के ढंग से वह अपने श्रोताओं पर ऐसा असर डाले बिना नहीं रहते थे कि बहस में उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान किया है। वह तर्क देने के बदले सवाल करते, जिनमें से कुछ का कभी कभी वह खुद ही जवाब देते और अकसर बिना जवाब दिए ऐसा असर डालने की कोशिश करते मानो उसका कोई जवाब संभव ही नहीं है। यहां भी उन्होंने अपने विशिष्ट ढंग से इसी मुद्दे पर बहुत जोर दिया कि 1932 की फरवरी में, शरत बोस को गिरफ्तार किया गया था और इतने दिनों बाद भी उनपर मुकदमा नहीं चलाया गया है। वह 1932 की फरवरी की बात है और अब हम 1935 की जनवरी में हैं और उन्हें गिरफ्तार किस कानून के अंदर किया गया? एक रेगुलेशन के मातहत मेरा ख्याल है कि उन्होंने सरकार को चुनौती दी, कि उन पर अदालत में मुकदमा चलाए। पर सरकार ने ऐसा नहीं किया।" इस पर कुछ सदस्यों ने शेम शेम (धिक्कार) कहकर दाद दी और उनका प्रवाह आगे बढ़ा। वस्तुतः खूब। फिर यह भी याद रखने की बात है कि जिस निर्वाचन क्षेत्र ने उन्हें चुना वह कानून सम्मत है और विधिपूर्वक ही उन्हें इस सदन का सदस्य चुना गया।'

आगे उन्होंने कहा "थोड़ी देर के लिए यह मान भी लें कि सदस्यों को कोई खास अधिकार प्राप्त नहीं है, फिर भी सरकारी कारवाइयों की समीक्षा व टीका का तो उन्हें निःसंदेह हक है, क्या उन्हें यह कहने का अधिकार नहीं कि सरकार का ढंग ऐसा है कि हम उसकी निंदा का प्रस्ताव करना पड़ेगा। कुछ वर्ष पूर्व असेम्बली के अधिकारों पर विचार करने के लिए तत्कालीन होम मेम्बर मुडीमन की अध्यक्षता में बनी कमेटी का जिसके वह स्वयं भी एक सदस्य थे, जिक्र कर बताया कि उसने कुछ सुझाव भी दिए थे, लेकिन अभी भी वही दुश्चक्र जारी है। सदस्यों के लिए तो कोई सुविधा और अधिकार नहीं है पर सरकार का रेगुलेशन के मातहत ऐसे मन

मान अधिकार है कि किसी भी आदमी को अपने हुक्म से बिना मुकदमा चलाए अनिश्चित काल के लिए नजरबंद कर सकती है, जिससे अपने निजी या सार्वजनिक काम को वह नहीं कर सकता और न इस सदन (असेम्बली) में अपने फर्ज को ही अदा कर सकता है। इसलिए इस सदन की कोई आवाज नहीं है न सम्बद्ध व्यक्ति के लिए कोई उपाय है, कोई कानून नहीं है और सरकार जो कुछ करे वह ठीक है। लेकिन यह एक असंभव स्थिति है, जो बर्दाश्त नहीं की जा सकती, इसलिए सरकार के ऐसे ढंग की निंदा और भर्त्सना करने का हमें पूरा हक है।

बहस के अंत में होम मेम्बर ने जिन्ना को अपने पक्ष में लाने और उनके गुट के सदस्यों को कांग्रेस के पक्ष में मत देने से रोकने की कोशिश की, पर जिन्ना ने अपना रुख नहीं बदला। फलतः सरकार की निंदा का काम-स्थगन प्रस्ताव 54 के विरुद्ध 58 मत से पास हो गया। इस तरह सरकार की करारी हार हुई।

असेम्बली में भूलाभाई कैसा काम करते हैं यह देखने के लिए लोग उत्सुक थे कहते हैं कि कांग्रेस के दो भूतपूर्व अध्यक्ष असेम्बली में उनकी कारगुजारी देखने के लिए ही लम्बी यात्रा करके आए थे। भूलाभाई ने उनकी आशा से कहीं बढ़कर सफलता प्राप्त की। उनके नेतृत्व में उनकी पार्टी के लोग एक टीम की तरह मिल जुल कर काम करते थे और कुछ चुने हुए सदस्य वित्त वाणिज्य, सेना और शिक्षा जैसे विषयों के ही विशेष अध्ययन में लगे रहते थे। वह आवश्यक होने पर ही बहस में हस्तक्षेप करते, लेकिन जब बोलते तो बड़े जोरदार और अधिकारपूर्ण ढंग से। यद्यपि कटुता और आक्षेप को वह बचाते थे। जिन्ना के साथ उनके सम्बन्ध घनिष्ठ थे क्योंकि बम्बई में वकालत करते हुए उनका बहुत साथ रहा था। सरकारी सदस्य भी उनके स्पष्ट चिंतन और प्रतिपादन के कायल थे और उनकी इज्जत करते थे। प्रहार करने में कभी न चूकने वाले फाइनेंस मेम्बर ग्रिग ने, जिनकी कांग्रेस पार्टी के नेता से अक्सर नोकझोंक होती थी, अपनी आत्मकथा में उस पार्टी के साथ अपने सम्बन्धों का दिलचस्प वर्णन किया है। उन्होंने इस बात की दाद दी है कि कांग्रेस वाले साफगोई से कभी बुरा नहीं मानते, बशर्ते उन्हें इस बात का यकीन हो कि बात ईमानदारी से कही गई है, आत्माभिमान से प्रेरित होकर नहीं। उन्होंने यह भी बताया कि जाहिरा उनके मुख्य विरोधी होते हुए भी भूलाभाई गोविंदवल्लभ

पंत और सत्यमूर्ति जैसे विभिन्न स्वभाव वाले कांग्रेसी नेताओं के साथ मेरे व्यक्तिगत सम्बन्ध बहुत अच्छे रहे।

1935 की फरवरी में सदन के नेता नपेन्द्रनाथ सरकार ने भारतीय शासन सुधारों के बारे में पार्लमेण्ट की संयुक्त समिति द्वारा तैयार मसौदा विचारार्थ उपस्थित किया। यह महत्व का विषय था, इसलिए वातावरण उत्तेजनापूर्ण होना स्वाभाविक था। प्रथम महायुद्ध के बाद एशिया और अफ्रीका के देशों में जो जागृति आई थी, उससे यहाँ पराधीनता से मुक्ति की इच्छा बलवती हो गई थी, जिसका हमारे यहाँ भी असर पड़ना ही था। ऐसी हालत में प्रस्तावित शासन सुधार बिल्कुल नाकाफी थे, और ये नाकाफी ही नहीं थे बल्कि देश के विभिन्न राजनीतिक दलों में भी उन पर मतभेद था। यह भी हास्यास्पद बात हुई कि केन्द्रीय धारा सभा में अभी उस पर विचार ही हो रहा था कि ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने अपनी ओर से उसे विधेयक के रूप में प्रकाशित भी कर दिया।

सरकारी प्रस्ताव पर अनेक संशोधन पेश हुए जिनमें भूलाभाई और जिन्ना के सबसे महत्वपूर्ण थे। भूलाभाई के संशोधन में यह मत व्यक्त किया गया कि शासन सुधारों की योजना भारत पर साम्राज्यवादी प्रभुत्व बनाए रखने और उसका आर्थिक शोषण जारी रखने की दृष्टि से बनाई गई है साथ ही भारतीय जनता को उससे वास्तविक सत्ता नहीं मिलती, इससे भारत के राजनीतिक और आर्थिक विकास में रुकावट पड़ेगी, इसलिए सपरिषद गवर्नर जनरल से यह असेम्बली सिफारिश करती है कि वे इस योजना के आधार पर कोई कानून न बनाने की सम्राट की सरकार को सलाह दें। साम्प्रदायिक निर्णय को मंजूर या नामंजूर करने से इसलिए इनकार किया गया कि ऐसा करने से ही इस संबंध में आपसी समझौते की गुंजाइश है।

जिन्ना के संशोधन में साम्प्रदायिक निर्णय को, जिस रूप में है वैसा ही स्वीकार करने को कहा गया, जब तक कि सम्बन्धित सम्प्रदाय आपसी रजामंदी से उसका कोई विकल्प न प्रस्तुत करें। शासन सुधारों में प्रांतीय सरकारों की योजना को उन्होंने 'अत्यंत निराशाजनक और असंतोषप्रद' बताकर उसके कारण दिए। और केन्द्रीय सरकार सम्बन्धी योजना के बारे में कहा, "वह बुनियादी तौर पर ही खराब है और ब्रिटिश भारत की जनता को सर्वथा अस्वीकार है।" इस योजना के

आधार पर कोई कानून (विधान) न बनाने पर जोर देते हुए ब्रिटिश सरकार से उन्होंने कहा कि भारत में ऐसी सरकार की स्थापना की जाए जो "वास्तविक रूप में और पूरी तरह (जनता के प्रति) उत्तरदायी हो।"

भूलाभाई ने अपने संशोधन पर बोलते हुए जो भाषण किया वह बड़ा जोरदार था। उसमें मालूम पड़ता था कि रिपोर्ट (प्रस्तावित शासन सुधार) और भारत की वैधानिक समस्याओं का उन्होंने गूढ़ अध्ययन किया था। अपनी स्वतंत्रता के बारे में भारतीय जनता के समय समय पर बदलते रहने वाले रुख का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा "पहले पहल तो हमने उसे अपने हित में समझकर उसका स्वागत किया। लेकिन पिछले तीस सालों की घटनाओं ने हमारे विचारों को बिल्कुल बदल दिया है। महायुद्ध में भारत ने अपने सभी साधन और सैनिक ब्रिटेन के सुपुर्द किए। ब्रिटेन की आजादी के लिए हमने युद्ध में भाग लिया। उस समय हमसे कहा गया था कि युद्ध ब्रिटेन के लिए नहीं बल्कि संसार के सभी पराधीन लोगों को आत्म निर्णय का अधिकार दिलाने के लिए लड़ा जा रहा है। मगर युद्ध समाप्त होने पर उस समय के वादों को या तो भुला दिया गया है, या उनसे इनकार किया जा रहा है, या फिर उनमें काट पेंच की गई है।"

पार्लमेण्ट की संयुक्त समिति की रिपोर्ट का एक उद्धरण सुना कर उसके इस सुझाव का उन्होंने जोरदार खंडन किया कि धर्म, जाति या भाषा के कारण मतभेद पैदा होते हैं जिनका परिणाम बड़ा विनाशक होता है। उन्होंने कहा कि आधुनिक संसार और सबसे बड़े लोकतंत्री देशों का इतिहास तो इससे उल्टा ही सिद्ध करता है। लोगों की एकता तो राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थों पर ही निर्भर है। संयुक्त राज्य अमरीका का उदाहरण देते हुए बताया कि यूरोप के प्रत्येक देश की विविध जातियों के लोग वहां बसे हुए हैं फिर भी उन्होंने अपनी ऐसी ठोस राजनीतिक इकाई बना रखी है कि सारा संसार उनसे डरता और उनकी इज्जत करता है। इसी तरह, स्विटजरलैण्ड का उदाहरण सिद्ध करता है कि राजनीतिक एकता में भाषा की विभिन्नता बाधक नहीं होती। भाषा राजनीतिक एकता में बाधक होती है। यह विभिन्न जातियों में फूट डालती है यह कहना तो ऐसी बात है जिसमें कोई तुक नहीं है।

इसी तरह धर्म के लिए उन्होंने कहा, "यह तो मनुष्य और भगवान के बीच की बात है। उसे भौतिक लाभ की सौदेबाजी में नहीं लाना चाहिए।" सरकार द्वारा 1906 में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व के लिए पृथक निर्वाचन या सुरक्षित स्थानों की शुरुआत का जिक्र कर बताया कि उसने विभिन्न जातियों के पारस्परिक सम्बंधों को बिगाड़ा है, क्योंकि उसमें ऐसा जहर भरा हुआ है जिससे पार्थक्य भावना की दुष्ट प्रवृत्ति उग्रतर होती जा रही है।

शासन सुधारों की तफसील में जाते हुए उन्होंने गोलमेज कानफ्रेंस के प्रतिनिधित्व को चुनौती दी और कहा "हमने मांगी तो रोटी थी, पर मिला पत्थर।" उस कानफ्रेंस का परिणाम तो इतना निराशापूर्ण हुआ कि उसके सबसे बड़े समर्थक मेरे मित्र सर तेजबहादुर सप्रू तक को वहां से वापस आकर कहना पड़ा, "उसमें जो कुछ हुआ उससे मेरे मन में आया कि मैं राजनीति से अलग हो जाऊं।" यही नहीं बल्कि उन्होंने (सप्रू ने) यह भी कहा कि "अपने देश के लिए मुझे ऐसा कोई (शासन) विधान नहीं चाहिए जो हिस्सों में बंटा हुआ हो, हिस्सों में उसका जायजा लिया जा सके और हिस्सों में ही उसे मंजूर या नामंजूर कर सकते हों।"

प्रस्तावित शासन विधान का मुख्य दोष उन्होंने यह बताया कि उसमें देशवासियों को (1) आंतरिक और बाह्य सुरक्षा का अधिकार नहीं दिया गया है (2) वैदेशिक मामलों के नियंत्रण से वंचित रखा गया है (3) मुद्रा और विनिमय के मामलों में उनका हाथ नहीं है, (4) वित्त की व्यवस्था वे अपनी इच्छानुसार नहीं कर सकते, और (5) देश के रोजमर्रा के शासन में भी उनकी कोई पूछ नहीं है। "ऐसे शासन विधान से उन्होंने बड़ी भावुकता से पूछा, जिम्मेदारी इज्जत और आत्मसम्मान के साथ अपने अच्छे भविष्य की हम कैसे आशा कर सकते हैं?" और प्रान्तीय स्वतंत्रता की बात को विडम्बना मात्र बताया।

अंग्रेज सदस्यों से—चाहे वे सरकारी नौकरी में हों या स्वतंत्र—उन्होंने कहा, "आप अगर अपने महान राष्ट्र की परंपराओं के पुजारी हैं, अपने राष्ट्र द्वारा किए गए वादों के कायल हैं छोटी घटनाओं को प्राय भूलते नहीं, तो मैं समझता हूं कि यह आप अच्छी तरह जानते होंगे कि ब्रिटेन को दुनिया में आज जो स्थान प्राप्त है वह हमारे देश भारत की सम्पत्ति और यहां के बाजारों में अपना माल

बचने के आपके एकाधिकार के ही कारण है। मैं इसके लिए आपकी कृतज्ञता नहीं चाहता, फिर भी, क्या मैं आपसे यह अनुरोध नहीं कर सकता कि आपके लिए हमने जो किया वही आप भी हमारे लिए करें? ससार म अपना प्रमुख स्थान बनाने के लिए आपको जो कुछ करना चाहिए था वही नहीं बल्कि उससे भी अधिक प्राप्त करके, और ससार म अपना प्रमुख स्थान बना लेने के बाद, अब क्या वह समय नहीं आ गया है कि जब भी हमारी इस माग म शामिल हो कि भारत को स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए, और तुरत मिलनी चाहिए।'

अन्त म उन्होंने कहा "सशोधन का परिणाम जो भी हो, भारत की यह निश्चित आवाज सब जगह पहुच हो जानी चाहिए कि यह शासन विधान निकम्मा है और हम मजूर नहीं है। जो कुछ हम चाहते है उसे लेने के लिए मजबूर करने की ताकत चाहे हमारे पास न हो, फिर भी जो नहीं चाहते उसे ठुकराने का आत्मसम्मान तो हममें है ही।'

इसके बाद कई अन्य वक्ता बोले, जिनम जिन्ना भी थे। उन्होंने इस बात का स्पष्टीकरण किया कि गोलमेज कानफ्रेंस के तीसरे दौर में न बुलाये जाने के कारण प्रस्तावित विधान से मेरा विरोध नहीं है, बल्कि सचाई यह है कि यह योजना बनने लगी तभी से मैं इसका कट्टर विरोधी था। इसलिए कानफ्रेंस के बाद के अधिवेशन म नहीं बुलाया गया। भूलाभाई ने अपने सशोधन पर जो रुख लिया उसे उन्होंने नकारात्मक बताया और कहा, "जहा तक मेरा अपना सवाल है मैं साम्प्रदायिक निर्णय से सतुष्ट नहीं हूँ लेकिन मैं फिर यही कहूगा कि जब तक हम उसकी जगह अपनी कोई योजना तयार न कर लें तब तक मेरे आत्मसम्मान को कभी सताप नहीं होगा।" भूलाभाई की इस बात पर उन्होंने सहमति दरशाई कि भाषा का उतना महत्त्व नहीं है और धर्म केवल मनुष्य और ईश्वर के बीच की चीज है, लेकिन असल सवाल भाषा या धर्म का नहीं बल्कि अल्पसख्यक और बहुसख्यक का राजनीतिक प्रश्न है इसलिए राजनीतिक रूप मे इसे लेकर इसका समाधान करना ही होगा।

अत मे सदन के नेता नपेन्द्रनाथ सरकार ने जवाब दिया जिसम विरोध पक्ष के भाषणो को हवाई फायर बताया जिसकी आवाज तो होती है और कुछ

कुछ धुआ भी निकलता है, पर उससे घायल कोई नही होता।" इसके बाद भूला भाई का सशोधन, जो रिपोट को ठुकरा देने का था, 61 के विरुद्ध 72 मत से गिर गया और अन्य सशोधनो के लिए अलग अलग भागो पर मतदान के बाद अध्यक्ष ने पूरे प्रस्ताव पर मतदान को अनावश्यक बताकर बैठक को स्थगित कर दिया।

इसके कुछ समय बाद बी॰ (भुवनेश्वर) दास के उस प्रस्ताव पर भी अच्छी गरमा रहा जिसम सीमा प्रात मे खुदाई खिदमतगारो पर लगे प्रतिबन्ध को हटाने की माग की गई थी। इस बहस म अनेक वक्ताओ ने भाग लिया पर यह उल्लेखनीय है कि प्रस्तावक और भूलाभाई सहित दो अन्य सदस्यो के अलावा अन्य सभी वक्ता मुसलमान थे। सरकारी पक्ष से बोलने वाले सभी अग्रेज थे और उन्होने प्रस्ताव का कडा विरोध किया, जबकि भारतीय सदस्यो ने प्रस्ताव का समथन।

भूलाभाई बोल तो थोडा ही, पर जो बोले वह जोरदार था। उन्होने बताया कि सीमाप्रात के सदस्य को छोडकर, शायद मैं ही यहा अकेला ऐसा व्यक्ति हू जिसका खान अब्दुल गफ्फार खा स पिछली गिरफ्तारी के पहले घनिष्ठ सम्पर्क था। जिस भाषण पर उन्हे गिरफ्तार किया गया वह गिरफ्तारी से बहुत पहले दिया गया था और उसके तीन चार महीने बाद उन्हे सजा दा के लिए सरकार ने उसे खोद निकाला। पता नही क्यो भाषण के काफी बाद तक सरकार को यह नहीं सूझा कि उसमें कोई ऐसी बात है कि जिस पर गफ्फार खा को गिरफ्तार करना चाहिए, लकिन एक दिन सवेरे वर्धा मे उन्हे उस भाषण के कारण गिरफ्तार किया गया, जो उन्होने तीन चार महीने पहले क्रिश्चियन एसोसियशन म दिया था और जिसमे उन्होंने उस आदोलन का अपना अनुभव श्रोताओ को बताया था जिसका उन्होने तीन-चार साल तक नतृत्व किया। गिरफ्तारी के बाद मुझ स वकाल की हैसियत स सलाह देने के लिए पहली बात उन्होने यही कही, "सचाई स अगर काम चलता हो तो मैं मुकदमा लडने और अपनी कही हर एक बात का सच साबित करने के लिए तैयार हूँ।' और उस ईमानदार पठान को यह सुनकर निस्सदेह बडा अचरज हुआ कि एसा नही किया जा सकता। सरकार की शक्ति का अगर यही उपयोग है कि उसके जरिए देश मे ऐसी किसी सस्था को न रहने दिया जाए जो इस देश को शक्तिशाली, सुदृढ और उन्नत करना चाहती हो तो वह शक्ति निश्चय ही अनिष्टकारी है।"

अत म उन्होंने कहा कि मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हू, क्योंकि "खान साहब के लिए निजी तौर पर मैं बहुत ऊंची राय रखता हूं। वह श्रेष्ठ पुरुष हैं जो पूरी तरह सचाई और न्याय के हक मे हैं और सचाई की खातिर हर तरह के कष्ट सहने को तयार रहते हैं।" जिन्ना ने भी इन शब्दों के साथ प्रस्ताव का समर्थन किया "सीमा प्रात मे शाति पैदा करके वहा के लोगो को वैधानिक मार्ग पर वापस लाने का प्रयत्न करना चाहिए। इस सदन म देशभर के प्रतिनिधियो ने जो आवाज उठाई है उसका सम्मान करना ही चाहिए। मैं कहता हू अभी भी बहुत देर नही हुई है। उनके दिल जीतकर सीमा प्रात म सच्ची शाति और सद्भावना कायम करो।" इसके बाद मतदान म 46 के विरुद्ध 72 मत से प्रस्ताव पास हो गया।

भूलाभाई ने असेम्बली में जो कार्य किया और अपने भाषणो तथा बहस से उन्होंने देश की जो सेवा की उसका यह थोडा सा वर्णन है। और भी कई महत्वपूर्ण मामलो म उन्होंने अपना योगदान दिया, जिसका प्रसगानुसार बाद म वर्णन करेंगे। फिर भी कुछ बातें ऐसी है जिनपर यहा सक्षिप्त दृष्टिपात कर लेना ठीक होगा।

असेम्बली के प्रश्नोत्तरो म भूलाभाई सक्रिय भाग नही लेते थे। यह काम उन्होंने अपने पक्ष के दूसरे वरिष्ठ सदस्यो पर छोड रखा था। इनम सत्यमूर्ति और अविनाशलिंगम चेट्टियार सबसे बढकर थे और सरकारी पक्ष को बडा तग करते थे।

रेलवे बजट पर बहस म जो 22 फरवरी 1935 को शुरू हुई थी, भूलाभाई ने महत्वपूर्ण भाग लिया। कामर्स मेम्बर ने रेलवे बोर्ड के खर्चे की मद मे 8,25,00 रु० की माग पेश की थी जिसे घटाकर केवल एक रुपया कर देने का सशोधन भूलाभाई ने रखा। इस सम्बन्ध म बोलते हुए उन्होंने शासन सुधार योजना म रखी गई उस व्यवस्था की कडी आलोचना की जिसम रेलो के मामले को केन्द्रीय असेम्बली की आलोचना के क्षेत्र से बाहर रखने की बात थी। रेलवे बोर्ड की रीति-नीति का बुरी तरह परदाफाश किया और भारतीयो को रेलो की व्यवस्था से दूर रखने की और अपनी ही सपत्ति की व्यवस्था का अनुभव प्राप्त करने से रोकने की सख्त निन्दा की। उन्होंने कहा "भारतीयकरण शब्द हो सरकारी नीति की भर्त्सना है। किसी

भी भाषा मे 'भारतीयकरण' शब्द होना ही क्यों चाहिए ? ब्रिटिशकरण, फ्रांसीसीकरण या जापानीकरण जैसे शब्द क्या किसी ने सुने हैं ? 'भारतीयकरण' शब्द को तो सदन की बहस के विवरण से ही निकाल देना चाहिए। जब ऐसा समय आ जाएगा कि भारतीय अपने मामलों को खुद देखभाल करने लगेंगे तब 'भारतीयकरण' शब्द प्रक्रिया न रहकर तथ्य बन जाएगा और उसकी जरूरत ही नहीं रहेगी।" यह भाषण इतना जोरदार था कि इस पर बीच बीच मे तालियां ही नहीं बजी, बल्कि सरकारी पक्ष से कामर्स मेम्बर क्रेगर का जवाबी भाषण हो जाने के बाद भूलाभाई के संशोधन के पक्ष में अंग्रेज और नामजद सदस्यों के विरोध के बावजूद 75 मत आए और वह पास हो गया।

1936 मे उन्होने कम्पनी (संशोधन) बिल की बहस मे सक्रिय भाग लिया और उसके लिए बनी प्रवर समिति (सेलेक्ट कमेटी) को इस सम्बन्ध मे अपने वकालती जीवन के व्यापक अनुभवों से बड़ा लाभ पहुंचाया। कम्पनियो के मनेजिंग एजेंटो को मिलने वाले पारिश्रमिक का उन्होने एक आधार निश्चित किया, जो अभी तक कायम है। उन्होने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि मैनेजिंग ऐजेंट को मिलने वाली रकम कम्पनी को होने वाले शुद्ध लाभ के अनुपात से ही निश्चित होनी चाहिए। इसी तरह और भी रचनात्मक सुझाव देकर कम्पनी सम्बन्धी कानून को ऐसा बनाने मे योगदान किया जिससे मनेजिंग ऐजेण्ट या डाइरेक्टर आदि कोई कम्पनियों से अनुचित लाभ न उठा पाए। 1936 मे इसने कानून का रूप लिया।

इसी तरह इंश्योरेंस (बीमा) बिल की बहस मे भी, जिसने 1938 में कानून का रूप लिया, उन्होने महत्वपूर्ण भाग लिया। लॉ (कानून) मेम्बर नपेन्द्रनाथ सरकार ने उसे पेश किया था, जिन्हें अपने वकालत के अनुभव से कुछ भारतीय बीमा कम्पनियों द्वारा की जाने वाली गड़बड़ियों की पूरी जानकारी थी और उन्होंने उन्हें रोकने के लिए यह बिल तैयार किया था। ऐसी गड़बड़ी से लाभ उठाने वाले जो लोग थे उनके निहित स्वार्थ हो गए थे। और उनके प्रतिनिधि 1937 के अगस्त-सितम्बर मे बिल पर विचार के समय भारी संख्या मे शिमला पहुंच गए थे। सम्बद्ध विषय की पूरी जानकारी और प्रतिपादन कुशलता के कारण उन्होंने बहुत अच्छी तरह बिल पेश किया, जिसमे मनेजिंग एजेंटो के बारे में उन्होंने कहा, "ईश्वर की

सृष्टि के तीन पशुओं से मुझे बड़ा डर लगता है ये हैं शेर, साँप और बीमा कम्पनियों के मनेजिंग एजेण्ट।

भूलाभाई ने इस बहस में भाग लिया। उनका मतव्य था कि यह बिल राजनीतिक न होने पर भी देश में जो राजनीतिक स्थिति है, उससे अप्रभावित नहीं है। अंग्रेज बीमा कम्पनियों को भारत पर ब्रिटिश शासन होने के कारण कुछ सुविधाएं हैं जिन्हें वे छोड़ना नहीं चाहते। यह स्थिति ठीक नहीं है और कानूनी संरक्षणों के बजाय उन्हें भारत के लोगों की सद्भावना प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। बीमे के व्यवसाय में लगे सभी लोगों के हितों का समन्वय कर सबको एक समान सुविधा मिलने की व्यवस्था होनी चाहिए। साथ ही बीमा कम्पनियों के एजेंटों को दिए जाने वाले कमीशन में कमी कर अपने खर्च का अनुपात घटाना चाहिए और सुरक्षित कोष कायम कर उसका रुपया सिक्योरिटियों में रखना चाहिए। जहां तक मनेजिंग एजेंट का सवाल है मैं इस पक्ष में हूं कि बीमा सम्पत्तियों में उनकी जरूरत नहीं लेकिन इसके लिए जो करार पहले हो चुके हैं उनमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

मौजूदा मनेजिंग एजेंटों के प्रति सहानुभूति के लिए लोगों ने उनकी आलोचना की और उन्होंने पुराने करारों को पांच साल तक कायम रखने का जो सुझाव दिया था, उसका जिन्ना ने कड़ा विरोध। उनकी इस बात की भी जिन्ना ने आलोचना की कि मौजूदा करार खत्म कराने के लिए तो अदालतों की ही शरण लेनी पड़ेगी। उन्होंने कहा 'अदालत हम क्यों जाए? कानून बनाना तो हमारा ही काम है। अदालत तो सिर्फ उनका भाष्य करने और उन्हें अमल में लाने के ही लिए है।'' लेकिन भूलाभाई का जोर इसी बात पर रहा कि पालिसी लेने वालों की हितचिंता के साथ इस व्यवसाय में संलग्न सभी के हितों का समन्वय करते हुए भारतीय बीमा व्यवसाय को समुन्नत करने का प्रयत्न होना चाहिए। और बिल के तृतीय वाचन पर, भाषण करते हुए अपने विशेष अदाज से उन्होंने कहा "इस तरह के कानूनी मामलों में सभी के स्वार्थों का संरक्षण संभव नहीं होता। अपने लम्बे वकालती जीवन में मैं इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ कि जीवन में समझौता किए बिना काम नहीं चलता। साथ ही यह सिद्ध करना भी असंभव नहीं होता कि जो

समझौता किया जा रहा है यह ठीक ही है। पर कोई भी समझौता करते समय भविष्य का विचार करके, पूरी ईमानदारी से काम लेना चाहिए।

स्वराज्य की असली कुंजी सेना के त्वरित भारतीयकरण में है, 1927 में प्रकट किए इस विचार पर भूलाभाई अब भी कायम थे। इस पर विचार के लिए कमेटी नियुक्त करने के प्रस्ताव पर बोलते हुए 1938 की 2 सितम्बर को उन्होंने इन स्पष्ट शब्दों में भारतीय मांग उपस्थित की "हमारी निश्चित रूप से यह मांग है कि सेना पूर्णरूप से भारतीय होनी चाहिए जिसके अफसर भी भारतीय ही हों और ब्रिटिश सेना किसी भी रूप में भारत में नहीं रहनी चाहिए। इसी पृष्ठ भूमि में हम इस कमेटी की नियुक्ति चाहते हैं—सेना में जो भारतीय अफसर हैं उनकी तनख्वाह अंग्रेजी अफसरों के बराबर करके हमारे ऊपर फौजी खर्च बढ़ाने जैसा काम के लिए नहीं। हमारी तो यह निश्चित मांग है कि पन्द्रह साल के अन्दर भारतीय सेना में कोई भी ऐसा अफसर नहीं रहना चाहिए जो भारतीय न हो। दूसरी बात हम निश्चित रूप में यह कहना चाहते हैं कि सेना में भारतीयों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया गया है और जो वादा किया गया था उस पर पूरी तरह अमल नहीं हुआ है। कुछ भारतीय ऐसे हो सकते हैं जो आपके पिट्ठू होने के कारण आपको प्रिय हों और उनके साथ बराबरी का व्यवहार किया गया हो, या अपनी चापलूसी के कारण वे ऐसा मानते हों, लेकिन वास्तविकता ऐसी नहीं है और हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि उन्हें अपमानित करके इस्तीफा देने के लिए बाध्य करने की, और संभव हो तो बरखास्त करके नौकरी से हटाने की आपने पूरी कोशिश की है। हमारी राय में आपने कमेटी की सिफारिशों को अमली रूप देने में यही तरकीब अपनाई है। इसलिए हमारी मांग है कि भारतीय सेना में पन्द्रह वर्ष के बीच सभी अफसर भारतीय हो जाने चाहिए और उनके बीच भेदभाव की बात ही खत्म हो जानी चाहिए।"

असेम्बली की उनकी प्रवृत्तियां लगभग 1938 के अंत तक जारी रहीं। 1938 के आखिरी दिनों में दूसरे महायुद्ध की संभावना स्पष्ट हो गई थी। सितम्बर 1938 में राष्ट्रसंघ (लीग आफ नेशंस) के बारे में बोलते हुए भूलाभाई ने उस दिन हिटलर के साथ हो रही नेवाइल चम्बरलेन की भेंट का उल्लेख किया

उन्होंने यह भविष्यवाणी की "मुझे लगता है कि चम्बरलेन ब्रिटिश साम्राज्य को कायम रखने के लिए चकोस्लावाकिया की स्वतंत्रता का सौदा करेंगे।" उन्होंने कहा कि ब्रिटेन अपने साम्राज्य को बनाए रखने के लिए ही शांति का राग अलाप रहा है।

भूलाभाई की असेम्बली की कारगुजारी पर दृष्टिपात करने के बाद अब हमें दल के नेता के रूप में उनके गुणों तथा उनकी वाद विवाद पटुता का विश्लेषण करना चाहिए। यह तो हम पहले ही बता चुके हैं कि लिबरल राजनीतिज्ञ के रूप में उन्होंने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया था और उग्र राजनीति को उन्होंने कभी नहीं अपनाया। लेकिन इसमें शक नहीं कि लिबरल मनोवृत्ति होने पर भी कांग्रेस में प्रवेश के बाद वह उसके प्रति पूरे वफादार रहे। असेम्बली में उन्होंने कांग्रेस की रीति नीति का ही प्रतिपादन किया। यह जरूर है कि कांग्रेस के वह अंधभक्त नहीं थे और अपना स्वतंत्र मत भी रखते थे। जैसा कि उनके भाषणों से खासकर कम्पनियों और बीमा संबंधी बिलों की बहस में दिए भाषणों से स्पष्ट है। बुराई को दूर करने के लिए उनकी निगाह हमेशा ऐसे उपायों पर रहती थी जो न्यायपूर्ण और युक्तियुक्त हों।

उनका व्यक्तित्व आकर्षक था। स्वभाव से विनम्र और शिष्ट थे, पर किसी से डरने दबने वाले नहीं। मुख पर तेज था और बौद्धिकता की छाप। आवाज स्पष्ट और मधुर। असेम्बली में जब तब भाषण करते सदस्य सुनने के लिए दौड़ पड़ते और सदन खचाखच भर जाता। लम्बी शेरवानी में, हाथों को पीछे बांधकर कुछ झुके हुए खड़े होकर भाषण करते हुए वह प्राचीन काल के रोमन सेनेटर जैसे मालूम पड़ते थे। अपनी ओजस्वी व मधुर भाषा में धाराप्रवाह बोलते हुए, कभी कभी विनोद की भी वह पुट देते थे पर उसमें किसी पर कोई आक्षेप न होता। इससे वह सभी की सद्भावना के पात्र थे।

इस तरह सभी दृष्टियों से अपनी पार्टी के वह योग्य नेता थे। और पार्टी के लोग उनसे मिल जुल कर काम करने की प्रेरणा पाते थे। आगे आने के लिए उन्होंने कभी कोई उखाड़ पछाड़ नहीं की, न आगे आने का उन्हें कभी लाभ ही हुआ, इसके विपरीत प्रश्नोत्तर, बिलों पर होने वाली बहस तथा काम स्थगन प्रस्तावों के

समय पार्टी के सदस्यो को अपना जौहर दिखाने का वह पूरा मौका देते थे। अपने इन्ही गुणो के कारण न केवल अपनी पार्टी म वह लोकप्रिय हुए, बल्कि सरकारी पक्ष, मुसलमान सदस्यो तथा असेम्बली के सभी क्षेत्रो मे उन्हे पसद किया जाता था। सदन मे या बाहर न तो वह अलग थलग रहते थे, न उनके व्यवहार मे घमण्ड की बू थी, लोग उनकी इज्जत करते और सम्मानपूर्वक ही उनके साथ पेश आते थे। वह कुछ गभीर अवश्य थ और किसी को मुह न लगाते थे। छोटी गोष्ठियो म वह अवश्य बेतकल्लुफी से पेश आते थे। ऐसे समारोहो म अक्सर उन्ही के कारण जान आती थी क्योकि मजेदार किस्से कहानिया सुना-सुनाकर वह लोगो का मनोरजन करते और समारोह को मज़ेदार बना देते थ।

वक्ता निस्सदेह वह अच्छे थे, पर अन्य अनेक प्रसिद्ध वक्ताओ की तरह उनकी भी कुछ विशेष आदतें थी। भूलाभाई अपने भाषणो म 'आशा और विश्वास' (मुझे आशा है और इस बात का मुझे विश्वास है) शब्दो का बार बार प्रयोग करते थे। इसी तरह प्रसगानुसार अपना उल्लेख वह इन शब्दो म करते, "मैं उन लोगों म हूँ या 'मैं उन लोगो म नहीं हू।' अपनी बात को वह सक्षिप्त और निश्चित रूप स कह सकते थे, लेकिन कई बार वह जरूरत से ज्यादा बोल जाते और वाक्यों को ठीक ढग से पूरा न कर पाते।

लेकिन ये ऐसे मामूली दोष हैं जिनको असेम्बली मे तथा अन्यत्र, राजनीतिक नेता और वक्ता के रूप म उनकी महान सफलता को देखते आसानी स दरगुजर किया जा सकता है। किसी भी लोकतत्री देश म प्रचलित किसी भी मापदण्ड से क्यो न देखें, विधायक की हैसियत से उनका स्थान बहुत ऊँचा है। उन्हे ऐसे विरोध पक्ष के नेतृत्व का अवसर मिला, जिसके विरोध के सिवा कोई चारा नही था, क्योकि उस समय जैसी स्थिति थी उसमे सरकारी पक्ष को हटा करके स्वय सत्ता ग्रहण करना उसके लिए सभव ही नही था। लेकिन ऐसी मजबूरी के वातावरण म भी अपने सारे असेम्बली काल मे उन्होने निराशा का नाम भी नही फटकने दिया। इसी कारण वह या उनके दल वाले जो भी कुछ कहते उस पर सरकारी पक्ष हमेशा ध्यान देता था।

मोतीलाल नेहरू की तुलना में वह कैसे रहे? यह ऐसा प्रश्न है जो उन दिनो अक्सर किया जाता था। इस सम्बन्ध म उनके एक ऐसे साथी ने, जिसे उनके साथ

को निकट से देखने का अवसर मिला था, जो कुछ कहा वह बताना अनुचित न होगा। दोनों की तुलना करते हुए उसने इस बात पर ध्यान आकर्षित किया कि "मोतीलाल का स्वराज्य पार्टी के नेता बनने से पहले से राजनीतिक क्षेत्र में बड़ा नाम था। आनन्दभवन के स्वामी और जवाहरलाल के पिता के रूप में भी उनकी ख्याति थी। उनके बारे में कितनी ही कथाएं प्रचलित हो गई थीं। वह उस समय के अद्वितीय पुरुष थे। भूलाभाई के बारे में ऐसा कुछ नहीं कहा जाता था और वकालत में मोतीलाल से ज्यादा मशहूर होते हुए भी कांग्रेस के विधान सभा क्षेत्र का नेतृत्व ग्रहण करने के समय तक राजनीति में वह नौसिखिए ही थे। असेम्बली के वाद-विवाद का जहां तक सम्बन्ध है, मोतीलाल हथौड़े के प्रहार करते थे, जबकि भूलाभाई हिरन की तरह ऊंची नीची पहाड़ियों पर छलांग लगाते थे। सार्वजनिक वक्ता के रूप में निस्संदेह भूलाभाई मोतीलाल से बढ़कर थे, लेकिन मोतीलाल में जो चुटकियां लेने का माद्दा था उसका भूलाभाई में अभाव था। साथ ही मोतीलाल में लेखन कौशल भी खूब था।

दोनों के बीच सबसे बड़ा अन्तर व्यक्तित्व का था। मोतीलाल को अपनी शक्ति का भान ही नहीं, गर्व भी था। एक मशहूर अखबार ने उन्हें देश का सबसे गर्वीला आदमी बताया था। मोतीलाल जी सतोषपूर्वक इस उक्ति को दुहराते थे। उनका विशाल जबड़ा ऐसा था, मानो शाही घोषणा के लिए ही हो। हुक्मउदूली उन्हें कतई बर्दाश्त नहीं थी, और उल्लंघन करने वाला कोई भी क्यों न हो, उसका वह तुरन्त शासन करते थे। लाला लाजपतराय के साथ उनका विवाद इसका ज्वलन्त उदाहरण है, जिसमें आखिर महात्मा गांधी को हस्तक्षेप करना पड़ा था। भूलाभाई इससे बिल्कुल अलग किस्म के हैं। उनकी मृदु मुस्कान उनकी शिष्टता की द्योतक है। साथ ही उनमें दुनियादारी और आदमी से बरतने की चतुराई भी है। इसी कारण असेम्बली में जिन्ना और उनके गुट के साथ निकट सहयोग से काम करते हैं और अपने दल में प्रेमभाव से मिलजुल कर काम करने की प्रवृत्ति बढ़ाई है, जैसा मोतीलाल के वक्त में शायद ही कभी हुआ हो। अपने इन गुणों से उन्होंने व्यापक लोकप्रियता प्राप्त की है और अंग्रेजों में वह खास तौर से लोकप्रिय हैं। यह बात इसलिए और भी उल्लेखनीय है, क्योंकि आत्मप्रचार की ओर उनका कोई ध्यान नहीं है। अखबारों में अपने प्रचार की उनको कोई चिंता नहीं, जबकि मोतीलाल

ने अपनी काफी कमाई खर्च कर खुद अपने अखबार निकालने मे भी सकोच नहीं किया।

भूलाभाई ने असेम्बली मे थोडे ही समय मे जो कारगुजारी दिखाई वह एसी शानदार थी कि एस्क्विथ, एडवर्ड कार्सन, एफ० ई० स्मिथ और सर जान साइमन जैसे महान विधायकों की श्रेणी म उनकी गिनती की जा सकती है, जो सभी वकालत के रास्ते राजनीति मे आए और बीसवी सदी के प्रारम्भिक दशको मे इस क्षेत्र मे अदभुत सफलता प्राप्त कर मशहूर हो गए।

1939 मे द्वितीय महायुद्ध छिडने पर सेण्ट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली से काग्रेस कैसे हटी यह हम आगे देखेंगे। काग्रेस के हट जाने के बाद असेम्बली की कारवाई मे भूलाभाई ने सिर्फ दो अवसरो पर भाग लिया, एक तो युद्ध के लिए खर्च की माग पर उसे नामजूर कराने के लिए 19 नवम्बर 1940 को और दूसरी बार भी ऐसी ही माग नामजूर कराने तथा भारतीय स्वतन्त्रता की माग के लिए 1945 के मार्च म। इन दोनो अवसरो पर उन्होंने जो महत्वपूर्ण भाषण दिए उन पर हम यथास्थान बाद म विचार करेंगे।

8

पदग्रहण और पदत्याग

अब हम उस समय की कांग्रेस की गतिविधियो और उनमे भूलाभाई की प्रवृत्तियो पर थोडा दृष्टिपात करें जबकि वह असेम्बली मे कांग्रेस दल के नेता थ। कांग्रेस मे समाजवादी प्रभाव के प्रवेश की बात हम पहले आन ही चुके हैं। यह भी हम बता चुके हैं कि जवाहरलाल नेहरू और सुभाष बोस का इसमे खास हाथ रहा, जो दोनो ही नई पीढी के लोकप्रिय नता थे। जवाहरलाल ने तो दिसम्बर 1933 म ही एक सावजनिक वक्तव्य म कहा था फासिज्म और कम्युनिज्म के बीच कोई मध्यमाग नही है। हमे इन दो मे से ही किसी एक को चुनना होगा और मैं साम्य वाद यानी कम्यूनिज्म के सिद्धान्त को पसद करता हू। लेकिन इसका मतलब यह हर्गिज नही कि कम्युनिज्म के अधभक्तो ने जो कुछ किया या जो कुछ वे कहें, उस सब को मुझे मानना चाहिए। कम्युनिज्म की मूल विचारधारा और उसमे इतिहास का जो वैज्ञानिक प्रतिपादन है उसे मैं जरूर ठीक मानता हू, लेकिन मेरा यह निश्चित मत है कि बदलती हुई स्थितियो और प्रत्यक देश की अपनी परिस्थिति के अनुसार उसे क्रियान्वित ही करना चाहिए।" सुभाष बोस के ख्याल मे नेहरू के विचार बुनियादी तौर पर गलत थे, क्योकि यह बात तकसम्मत नही है कि इन दो के सिवा कोई विकल्प हो ही नही सकता। मेरा तो विश्वास है कि दोनो के सयोग से नया रास्ता निकालना सभव है और हमारा देश भारत ऐसा करेगा इसकी मुझे पूरी आशा है।"[1]

---

1 हिस्टरी आफ फ्रीडम मूवमेण्ट इन इंडिया' से (खड 3 पृ० 555-556)

अप्रैल 1936 में हुई लखनऊ कांग्रेस के अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए जवाहरलाल ने अपने साम्यवादी विचारों का खुलकर प्रतिपादन किया। इसके बाद दुबारा अध्यक्ष चुने जाने पर उसी साल (1936) दिसंबर में फ़ैजपुर कांग्रेस में अपनी इस विचारधारा की परिपुष्टि की। अधिवेशन के एक महीने पहले रूस में नया साम्यवादी विधान बना, इसलिए फैजपुर कांग्रेस का वातावरण स्वभावतः समाजवादी नारों से आच्छादित था। किसान मजदूरों के अधिकारों पर उनमें जोर था। समाजवादी पक्ष वहां इतना प्रबल था कि कांग्रेस की विषय समिति में उसने जोर दिया कि अधिवेशन को यह घोषणा करनी चाहिए कि संसार के पराधीन राष्ट्रों और सोवियत रूस की जनता के साथ भारत की जनता एकजुट है।

मगर फ़ैजपुर-कांग्रेस तक कम्युनिज्म के बारे में जवाहरलाल का जोश काफी कम हो गया था। 'कांग्रेस के इतिहास' में इसका कारण एक साल के उनके अनुभव को बताया गया है, लेकिन यह कहना शायद ज्यादा सही होगा कि यह सब गांधीजी और उनके साबरमती आश्रम के निकट संपर्क का परिणाम था।

भूलाभाई देसाई असेम्बली के काम में व्यस्त थे, साथ ही कांग्रेस की गतिविधियों में भी सक्रिय भाग लेते रहे। 5 फरवरी 1936 को लिखे उनके एक पत्र में इस बात का उल्लेख है कि "राजनीतिक बंदियों संबंधी प्रस्ताव का मसौदा मैंने और सुभाष बोस ने मिलकर तैयार किया जबकि संघ संबंधी प्रस्ताव राजाजी ने। इसके अलावा मैंने कई प्रस्ताव भी मैंने तैयार किए। राजनीतिक कैदियों की रिहाई और बिहार तथा उत्तर प्रदेश में गवर्नरों के रुख को छोड़ दूसरे मामलों में वातावरण कुल मिलाकर ठीक मालूम पड़ता है। लेकिन गवर्नरों के भुगतान से इनकार करने पर प्रांतीय परिषद को क्या रुख अपनाना चाहिए इसका अंतिम निर्णय तो बापू का। गांधीजी जो सलाह देंगे उसी पर निर्भर है।" गवर्नरों के रुख से मतलब शायद बिहार और उत्तर प्रदेश के गवर्नरी शासन में अपनाए गए अंधाधुंध दमन से है जिसके फलस्वरूप वहां बहुत बड़ी संख्या में कांग्रेस वाले जेलों में बंद थे।

लगभग इसी समय वह हिन्दू मुसलमानों के बीच समझौते के लिए भी प्रयत्नशील थे और इसके लिए मुस्लिम नेता आगाखां से बातचीत चला रहे थे। ऐसा

मालूम पड़ता है कि संयुक्त निर्वाचन के संबंध में कोई ऐसी तजवीज सुझाने के लिए उन्होंने आगाखां से कहा था जो मुसलमानों को स्वीकार हो इसके जवाब में आगाखां ने भूलाभाई को लिखा था "संयुक्त निर्वाचन की ऐसी कोई तजवीज मैं नहीं सुझा सकता जो निर्विरोध हो। पंजाब हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण है, लेकिन वहां इस समय जो स्थिति है उसमें कोई परिवर्तन हो सकता है इसमें कुछ शक है। फिर भी इस मामले को छोड़ दिया जाए, ऐसा मैं नहीं चाहता।' और आश्वासन दिया कि 'ज्यों ही मुझे उपयुक्त अवसर दीखेगा, मैं अपने सुझाव आपको भेजूंगा। इस बीच यह ध्यान रखें कि मुस्लिम (मुस्लिम बहुल) प्रान्तों की मर्जी के बगैर कुछ करने की कोशिश की गई तो उसका परिणाम खतरनाक होगा।"

नए शासन सुधारों के अन्तर्गत चुनाव लड़ने और कांग्रेस द्वारा पदग्रहण के मामले पर कांग्रेसी नेताओं में भारी मतभेद था। दिल्ली से 2 अप्रैल को अपने घर भेजे पत्र में भूलाभाई ने इसके बारे में कांग्रेस नेताओं की प्रतिक्रिया बताई थी। उन्होंने लिखा 'कांग्रेस की भावी नीति के बारे में विचार बदलते रहते हैं, इसलिए निश्चित रूप से अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। अभी की स्थिति तो यह है जवाहरलाल निश्चित रूप से पदग्रहण के विरुद्ध है, लेकिन कांग्रेस का बहुमत पदग्रहण का निर्णय कर ले तो उनका क्या रुख रहेगा यह नहीं कहा जा सकता। राजेन्द्रबाबू और वल्लभभाई से प्रभावित वर्ग लक्ष्यपूर्ति के साधन के रूप में पदग्रहण के पक्ष में है। जवाहरलाल इसे गलत और प्रतिक्रियावादी मनोवृत्ति बताते हैं। वह रूस के समाजवादी नारों में विश्वास रखते हैं और उसी के अनुकूल बात करते हैं। दूसरा वर्ग यह मानता है कि कांग्रेस को अधिकांश प्रान्तों में बहुमत न मिला और उसने पदग्रहण नहीं किया तो उसका यह दुष्परिणाम होगा कि उस हालत में बनने वाले मन्त्रिमण्डल ब्रिटिश पक्षपाती होंगे, जो आर्डिनेंसों सहित सभी दमनकारी कानूनों का अमल जारी रखेंगे और कांग्रेस को हर तरह कुचल डालने की कोशिश के अलावा किसान मजदूर आदि ग्रामीणजनों को कुछ मामूली राहत देकर जनता को कांग्रेस से विमुख करने का प्रयत्न करने में भी कोई कसर नहीं रखेंगे। इस वर्ग का यह भी ख्याल है कि जवाहरलाल के नारों का दिखावटी असर चाहे हो पर भारतीय जनता पर उसका कोई स्थिर प्रभाव नहीं पड़ेगा। मेरा अपना विचार यह है कि जवाहरलाल ने जो रुख अपनाया है उससे कांग्रेस को चुनाव में बहुमत नहीं मिलेगा।

'पदग्रहण का कार्यक्रम तभी सफल हो सकता है जब कांग्रेस इस विषय में एकमत हो और उसका कार्यक्रम व्यावहारिक रखा जाए। पदग्रहण के बारे में विचार जारी है और आगे सोमवार को प्रयाग में विचार होगा। जवाहरलाल जो कार्यक्रम बताते हैं, उस पर बड़े पैमाने पर चुनाव लड़ना बेकार है क्योंकि उसके आधार पर कांग्रेस को बहुमत नहीं मिलेगा। उसमें परिश्रम और धन व्यय जाएगा। पालमेंटरी बोर्ड भी उस हालत में अनावश्यक है क्योंकि तब कार्यसमिति विधान सभा में केवल प्रचार के लिए कुछ ही उम्मीदवार खड़े करेगी।

'विचार विनिमय में मैं पूरा भाग ले रहा हूं। महात्माजी और राजेन्द्रबाबू का समर्थक वर्ग (जिसमें मेरी भी गिनती है) मेरे विचारों से सहमत है। बापू (गांधीजी) जवाहरलाल को अपने रास्ते लाने के लिए उतनी कोशिश नहीं कर रहे हैं जितनी मैं समझता था। देखना है क्या होता है। इस बीच हम अपने ज्ञान और अनुभव का पूरा उपयोग करके देश को ठीक रास्ते ले जाने के लिए सही निर्णय पर पहुंचना ही चाहिए।''

अंत में उन्होंने लिखा बातचीत गुप्त चल रही है इसलिए लोग तरह तरह के अनुमान लगा रहे हैं। पंत जी की राय मेरी राय से सबसे ज्यादा मिलती है। महात्माजी सहज प्रवृत्ति से अंत में ठीक रास्ता निकाल लेते हैं।

गांधीजी और राजाजी (राजगोपालाचार्य) में ऐसा लगता है उन दिनों कांग्रेस संबंधी कुछ मामलों में मतभेद बढ़ रहे थे। इस संबंध में गांधीजी के कहने पर राजाजी बंबई में भूलाभाई से मिले और उन्हीं के यहां वह ठहरे भी थे। बातचीत के बाद बंबई से लौटते हुए 22 अगस्त 1936 को रेलगाड़ी से उन्होंने भूलाभाई को पत्र लिखा 'बापू के आग्रह पर मैं बंबई आकर आप सबसे मिला यह बहुत अच्छा हुआ। नहीं तो उस समय मेरी मनोस्थिति ऐसी थी कि वर्धा से चुपचाप भागकर सीधा अपने घोंसले में जा छिपूं। जिस स्थिति ने मुझे ऐसा व्यग्र कर दिया था उसको लेकर जब मैं विचार करता हूं तो मुझे लगता है कि अगर मैं आप लोगों से न मिलता तो बहुत बुरी बात होती। आप मेरे साथ जिस स्नेह और उदारता से पेश आए उसकी याद मुझे हमेशा बनी रहेगी। आपकी उदारता और निःस्वार्थ वृत्ति की मैं प्रशंसा करता हूं।''

1935 की नई शासनसुधार योजना के अंतगत 1937 की फरवरी मे प्रातीय कौंसिलो के चुनाव हुए। काग्रेस ने कौंसिल प्रवेश की अपनी नीति के अनुसार चुनाव मे भाग लिया। इसमे कई प्रान्तो मे—जसे मद्रास, सयुक्त प्रात (उत्तर प्रदेश), मध्य प्रान्त (मध्य प्रदेश), बिहार और उडीसा मे—उसे पूर्ण बहुमत मिला। बबई, बगाल, असम और पश्चिमोत्तर सीमा प्रात, इन चारो प्रातो म पूर्ण बहुमत न होत हुए भी उसके सदस्यो की सख्या, अन्य किसी भी पक्ष के सदस्यो से अधिक रही, यानी कौंसिल मे उसी का दल सख्या म सबसे बडा था। सिर्फ सिध और पजाब ऐसे प्रान्त थ जहा काग्रेस को कम स्थान मिले और वह अल्पमत म रही।

चुनाव मे ऐसी सफलता और प्रातीय कौसिलो म काग्रेस की मजबूत स्थिति के बाद यह प्रश्न उठना स्वाभाविक था कि काग्रेस इस स्थिति का लाभ उठाए या नही? मार्च 1937 म होने वाले महासमिति के अधिवेशन मे इस सबध म निश्चय होना था। वहाँ परस्पर विरोधी विचार सामने आए, लेकिन बहस के बाद मत लेने पर पदग्रहण न करने का सशोधन गिर गया और कुछ शर्तो के साथ पदग्रहण का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। शर्त यह थी कि गवनर अपने विशेष अधिकारो का प्रयोग कर मत्रियो के निणयो म हस्तक्षेप नही करेंगे। अन्त मे समझौते का ऐसा रास्ता निकाला गया जिसम वाइसराय ने आश्वासन दिया कि सरकार और जनता के बीच यथासभव अधिक स अधिक सहयोग बनाए रखा जाएगा और ऐसी नौबत न आने दी जाएगी कि परस्पर मतभेद के कारण मत्रिमण्डल को इस्तीफा देना पड। कायसमिति ने इस आश्वासन को स्वीकार कर काग्रेसजनो को पदग्रहण करने की इजाजत दी। फलस्वरूप जिन प्रान्तो की असेम्बलियो म काग्रेस का बहुमत था वहाँ काग्रेस ने अपने मत्रिमडल बनाए।

राजाजी, गोविन्दवल्लभ पत और बाल गगाधर खेर जसे बहुत योग्य व्यक्तियो को काग्रेस ने मुख्य मत्री बनाया। जब तक ये मत्रिमडल रहे इन्होने अपने अपने प्रान्तो म प्राथमिक शिक्षा, मद्यनिषेध और अछूतोद्धार जसे अनेक ऐसे काम करने की कोशिश की जिनका काग्रेस बरसो से प्रतिपादन करती आ रही थी। बगाल और पजाब मे जो गैर काग्रेसी मत्रिमण्डल बने उन्होंने भी लोगो की हालत सुधारने के लिए कई अच्छे काम किए।

इतने पर भी यह मानना ही होगा कि जिन प्रा तो मे कांग्रेस का बहुमत था वहा मन्त्रिमंडल बनाने म मुसलमानो के बारे म बडी जटिल समस्या पदा हुई। इसम सक नही कि इसी को लेकर भारतीय जनता का एक बडा समुदाय एसा मानता है कि कांग्रेस ने जो ढग अपनाया उसी स भविष्य म होन वाले देश के बटवारे की नीव पडी। भूलाभाई न आगे चलकर हिन्दू मुस्लिम एकता क लिए जो प्रयास किया उससे इसका कुछ सबध है, इसलिए इस पर एक दृष्टि डालना आवश्यक है।

गोलमेज कान्फ्रेंस म बहस के वक्त यह मान लिया गया था कि प्रातो मे मन्त्रिमंडल बनाते समय उनम सभी प्रमुख जातियो और खासकर मुसलमानो का प्रतिनिधित्व रहेगा लेकिन कांग्रेस न जब पदग्रहण का निश्चय किया तो उसन यह सिद्धान्त अपनाया कि कांग्रेसी प्रा तो म केवल कांग्रेस जनो का ही मत्री बनाया जाए। मुस्लिम लीग का, जो उस समय निश्चय ही मुसलमानो क एक बडे भाग का प्रतिनिधित्व करती थी, कहना था कि मन्त्रिमंडल म मुसलमानो के प्रतिनिधि, मुस्लिम लीग के होन चाहिए। लेकिन कांग्रेस न कहा कि कांग्रेसी मन्त्रिमंडल म शामिल होन के लिए मुस्लिम लीग को छोडकर कांग्रेस का सदस्य बनना जरूरी है। इससे मुसलमानो म कांग्रेस का विरोध बढा और मुस्लिम लीग की ओर उनका झुकाव बढ गया।

स्थिति का पूरी तरह समझन के लिए हम सयुक्त प्रान्त पर नजर डालनी होगी, जहा मुस्लिम आबादी सिर्फ 16 फीसदी होन पर भी मुसलमानो का देश के अन्य भागो की अपेक्षा अधिक प्रभाव था। अलीगढ यूनिवर्सिटी स उच्च शिक्षा प्राप्त मुसलमानो और मुसलमान जमीदारो का वहा बडा प्रभाव था। उनमे स कुछ तो अखिल भारतीय ख्याति क नेता थे। यह भी कहा जाता है कि कुछ ऐसी बातचीत भी हो गई थी कि चुनाव म सफलता मिलन पर सयुक्त मन्त्रिमंडल बनाया जाएगा जिसम दो स्थान मुसलमानो को मिलेंगे। सभवत इसी के अनुसार कांग्रेस मुस्लिम लीग के सदस्यो को ऊपर लिखी शर्त पर मन्त्रिमंडल म रखन को तयार थी। जिसका प्रकारान्तर से यही मतलब होता था कि मुस्लिम लीग कांग्रेस म शामिल हो जाए। कांग्रेस ने जो रुख अपनाया उसका आधार जवाहरलाल की इस उक्ति को बताया जाता है कि देश म दो ही पक्ष है—कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार। पर

स्पष्ट ही मुस्लिम लीग इस बात को मानने के लिए तयार नहीं थी, क्योंकि उस हालत मे उसे अपने को भग कर कांग्रेस म मिल जाना पडता।

भारत की स्वतत्रता के इतिहास (हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेण्ट इन इडिया) म बताया गया है कि 'कांग्रेस नेताओ का यह निश्चय बहुत नासमझी का था और इसका परिणाम घातक ही हो सकता था। मुसलमानो को इससे यह पूरा विश्वास हो गया कि उनका कोई राजनीतिक भविष्य नही है। इस तरह कांग्रेस की इस बात ने मुसलमानो को अलग रास्ता पकडने को प्रेरित किया जिसके फलस्वरूप ही पाकिस्तान की नीव पडी। जवाहरलाल को इसके लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है, जिनकी राय थी कि "भारत के अल्पसख्यक यूरोप की तरह पृथक जाति अथवा नस्ल के नही बल्कि धम के कारण अल्पसख्यक हैं। स्पष्ट ही धम का विभाजन स्थायी नहीं होता, क्योंकि धम परिवतन किया जा सकता है, और ऐसा करने से जाति, सास्कृतिक परम्परा एव भाषा नही बदलती।" यह दृष्टिकोण किताबी और सवथा अवास्तविक था। दुर्भाग्य से कांग्रेस इससे प्रभावित हुई। जसा कि कहा गया है जवाहरलाल अपनी ही कल्पना के लोक मे रहते थे जिसका वास्तविकता से कोई सबध नही था।

कांग्रेस का रुख वस्तुत ठीक नही था, क्योंकि वह इस धारणा पर आधारित था कि देश म मुस्लिम लीग का कोई खास असर नही है। मत्रिमडल म मुसलमानो के प्रतिनिधित्व के लिए यह बात भी इसी धारणा से प्रेरित होकर लगाई गई कि उनका कांग्रेस मे शामिल होना आवश्यक है। मुसलमानो ने इसका स्पष्ट ही यह अथ लगाया कि मुस्लिम लीग म रहने वाले मुसलमानो के लिए राजनीतिक पदो के सब रास्ते बद हो गए हैं। मुस्लिम लीग का यह अथ लगाना भी स्वाभाविक था कि यह मुस्लिम लीग को खत्म करने का प्रयत्न है। जसा कि कहा गया है ' जिन्ना ने 1937 के चुनाव इसी आधार पर लडे थे कि हिंदू बहुमत वाले प्रातो म मिले जुले मत्रिमडल बनेंगे और मुसलमान बिना कांग्रेस मे शामिल हुए उनम सहयोग देंगे। कांग्रेस और लीग के दृष्टिकोण म कोई खास फक नही है।" यह बताकर लीगी नेता ने 1937 म कहा था कांग्रेस के रचनात्मक कायक्रम म सहयोग करने म हम खुशी होगी और इसके लिए हम हमेशा तयार हैं। लेकिन सहयोग के बजाय कांग्रेस म

शामिल करने की जो नीति कांग्रेस ने—खासकर संयुक्त प्रांत में—अपनाई उससे जिन्ना को इस नीति का बड़ा धक्का लगा। मैत्रीपूर्ण स्वतंत्र सहयोग की आशा उससे एकदम खत्म हो गई और मुसलमानों को हिन्दुओं की नीयत पर भरोसा नहीं रहा। मध्यवर्गीय मुसलमानों के लिए कांग्रेसी शासन का अर्थ हिन्दू राज्य हो गया। जिन्ना ने कहा, "बहुसंख्यक जाति ने यह बात साफ कर दी है कि हिन्दुस्तान सिर्फ हिन्दुओं के लिए ही है।"

जिन्ना ने इस चुनौती, समस्या और इसके मुकाबले को कटिबद्ध हो गए। इससे उनका नेतृत्व खूब चमका। कांग्रेस के खिलाफ उन्होंने जिहाद बोल दिया। लखनऊ में मुस्लिम लीग के अधिवेशन का सभापतित्व करते हुए उन्होंने मुसलमानों से कहा कि वे संगठित होकर हिन्दू बहुमत और हिन्दू आधिपत्य का विरोध करें। पंजाब, बंगाल और असम में जो गैरमुस्लिम-लीगी मुस्लिम दल थे उनके नेताओं पर भी कांग्रेस के रुख और जिन्ना की चुनौती का असर पड़ा। इस तरह कांग्रेस ने जो नीति अपनाई उसने मुस्लिम लीग में जान डालकर उसे सुदृढ़ करने में बड़ी मदद की। फिर तो लीग का प्रभाव बराबर बढ़ता गया और चुनावों में भी उसे अधिकाधिक सफलता मिलने लगी।

अपने अदूरदर्शीपन के कारण कांग्रेस स्थिति का ठीक अनुमान न लगा सकी। इकबाल ने तो 1930 में ही, इलाहाबाद में मुस्लिम लीग के जलसे का सभापतित्व करते हुए "भारत में मुस्लिम भारत बनाने की मुस्लिम मांग" का ऐलान किया था। उन्होंने कहा था "पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत, सिंध और बलूचिस्तान को मिलाकर एक राज्य बना देना चाहिए। यह राज्य चाहे ब्रिटिश साम्राज्य के अंदर स्वशासित हो या ब्रिटिश साम्राज्य से बाहर रहे, कम से कम पश्चिमोत्तर भारत में मुसलमानों को अंत में यही मिलेगा, ऐसा मुझे लगता है।" यहीं से मुसलमानों के अलग देश की आवाज उठी। कैम्ब्रिज में पढ़े एक नौजवान मुसलमान रहमतअली ने इसे निश्चित रूप दिया और गोलमेज सम्मेलन के सदस्य होकर जो मुसलमान लंदन गए थे, उनके सामने वह रूपरेखा पेश की। इस उत्साही नौजवान ने बाद में उसे छापकर लोगों के पास भेजा। निस्संदेह उस वक्त उन पर किसी ने कोई खास ध्यान नहीं दिया। लेकिन यह मानना ही होगा कि इकबाल

और रहमत अली की कल्पना धीरे धीरे जोर पकड़ती गई और इसमें काग्रेसी नेताओं की गलत चाल से भी बड़ी मदद मिली। यह ठीक ही कहा गया है कि "काग्रेस की यह वैसी ही गभीर गलती थी जैसी कि बीस साल पहले ब्रिटिश सरकार ने की थी जब गाधीजी को सनकी समझकर उसने उनकी उपेक्षा की थी।"[1]

वाइसराय लार्ड लिनलिथगो ने प्रान्तो मे शासन सुधारो को सफल बनाने के लिए काग्रेस का सहयोग प्राप्त करने की कोशिश की। इसके लिए अन्य उपायो के अलावा उन्होने असेम्बली के भूलाभाई आदि काग्रेसी नेताओं से भी बातचीत की। 13 सितम्बर 1937 के अपने एक पत्र में भूलाभाई ने वाइसराय के बारे में लिखा है कि "वह सकोची और सज्जन व्यक्ति हैं। उनमे शान नही मालूम पडती। जिस तरह बराबरी के दर्जे पर उन्होने बात की, उससे मुझे ऐसा नही लगा कि वे दिखावा कर रहे हैं, बल्कि ऐसी छाप पडी कि हममे से कम से कम कुछ को वह अपने से नीचा नही मानते।"

यह असर वाइसराय के साथ 7 सितम्बर 1937 को हुई मुलाकात में पडा मालूम पडता है। यह भी लगता है कि मुलाकात का सक्षिप्त विवरण उन्होने गाधीजी को भी भेजा होगा। इस मुलाकात का जो विवरण भूलाभाई ने अपने पास रखा उसमे उन्होने लिखा है

"वाइसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी का पत्र पाकर मगलवार की शाम मैं वाइसराय से मिला। प्राइवेट सेक्रेटरी से पूछने पर यह मुझे पहले ही बता दिया गया था कि किसी खास मुद्दे के बजाय सामान्य चर्चा ही होगी। जब मैं उनसे मिला तो सबसे पहले उन्होने गाधीजी के स्वास्थ्य पर चिन्ता प्रकट की और उनके बारे मे पूछताछ की। स्पष्ट ही उसमे खाली शिष्टाचार ही नही था गाधीजी के स्वास्थ्य में जो गिरावट आई थी उससे वह सचमुच चिन्तित मालूम पडे इसके बाद महत्व की पहली बात उन्होने यह पूछी कि लोकतन्त्रीय सरकार इस देश मे कामयाब होगी या नहीं। मैंने बताया है कि इस देश में कुछ समय तक राजतन्त्र रहा अवश्य पर वह निरकुश शासन होने के बजाय बहुत कुछ देश में केन्द्रीय सरकार के शक्तिहीन होने पर उसका विकल्पमात्र रहा। इसके अलावा उसके साथ-साथ गाँव वाले पचायतो

1 आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इडिया (पृ० 815 819)

द्वारा अपना शासन खुद ही चलाते थे जिसमे कभी-कभी ही हस्तक्षेप होता और बाहरी आक्रमण पर केद्रीय सत्ता से उन्हे सरक्षण मिलता था। जिस जाति प्रथा को हम दोषपूर्ण मानते हैं उसका भी मुख्य आधार लोकतत्र ही है, क्योकि उसमे निर्णय बहुमत के आधार पर ही होते हैं और उन्ह सबको मानना पडता है।

"मैंने उन्हे यह भी बताया कि दुनिया आज जिस तरह बदल गई है और खासकर भारत मे भी जो परिवर्तन हुआ है, उसमे ब्रिटिश शासन की जगह हम लोकतत्र कायम करके काम चला सकते हैं—सोचविचार के बाद ही हमने उसको अपना राजनीतिक लक्ष्य बनाया है।

" इस बात की ओर भी मैंने उनका ध्यान दिलाया कि भारत म जो सेना है वह साम्राज्यवादी उद्देश्य से रखी जा रही है और उसके पूर्णतया भारतीयकरण की दिशा म भी कोई कारवाई नही की गई है इसलिए ब्रिटिश सरकार का यह दायित्व है कि असेम्बली मे इस विषय पर हमने जो माग रखी थी उसके अनुसार उसके खर्च मे कम से कम दस मे पद्रह करोड रुपये साल की रकम तो वह दे ही। लेकिन इसका कोई सतोषजनक जवाब नही मिला और पूर्व पश्चिम दोनो जगह इस समय जो नाजुक हालत है उसका उल्लेख कर इसे टाल दिया गया।

"काग्रेस का अधिकाधिक प्रान्तो के शासन पर अधिकार होता जा रहा है और विधान सभाओ के भीतर-बाहर उसका प्रभाव बढ रहा है, इस स्थिति को उन्होंने स्वीकार ही नही कर लिया मालूम पडता बल्कि इस पर वह खुश भी मालूम पडे।

"इस बात पर भी मैंने उनका ध्यान आकर्षित किया कि सघ (फेडरेशन) की स्थापना के लिए हम उत्सुक नही हैं, बल्कि सच पूछो तो उसके खिलाफ हैं। हमारा यह भी मत है कि राजाओ को उसम प्रवेश के लिए राजी करने को ब्रिटिश भारत के ग्यारह प्रान्तो पर जो कि सघ की मुख्य इकाई है ऐसा बोझ नही डालना चाहिए जो अनुचित हो। सघ योजना के बारे मे अपना रुख भी मैंने उन्हें स्पष्ट किया। मैंने बताया कि देश की विशालता को देखते हुए, और राजनीतिक एव भौगोलिक कारणों से, यहा सुदृढ केन्द्रीय शासन का होना आवश्यक है, जिस तरह सघ लागू

करने की योजना है वह सर्वोत्तम उपाय नही है, होना यह चाहिए कि सब ब्रिटिश भारत के प्रान्तो का बनाए जाए और उसम एसी गुजाइश रखी जाए कि रियासतें जब चाहे तब उसमे शामिल हो सकें, बशर्ते दोनो पक्ष राजी हो।

"बातचीत के अन्त मे वायसराय ने मुझ बताया कि इस बात को वह समझता है कि हमारी तरफ से लगातार जोर डाले बगर अग्रेजो को वतमान शासन विधान म सशोधन के लिए तैयार करना कठिन है और कम से कम हमारी दृष्टि से इस सम्बन्ध म हमारे प्रयत्नो की उन्होने सराहना भी की।

"यह भी मैंने उन्हें बताया कि हमारे केन्द्रीय असेम्बली म आने का कोई ठोस परिणाम न तो कानूनो के रूप म हुआ है और न प्रशासनिक कारवाई के रूप मे। यह भी बताया कि जन परामश का यह तरीका भी आजमाया जा चुका है, उसमे अब न तो मजा रहा है और न उससे लोगो को धोखे म ही रखा जा सकता है। केन्द्रीय असेम्बली मे फिर भी हम बने हुए हैं तो निस्सदेह इसीलिए कि हर विषय पर अपने विचार व्यक्त कर लोकमत को उसके अनुकूल बनाने म मदद मिलती है और इस बात पर जोर देने का मौका मिलता है कि वतमान सरकार का रूप बदले बगर जनता की भलाई करना सम्भव नही है।"

1937 म काग्रेस का वार्षिक अधिवेशन नही हुआ। अग्रेजी शासन से प्रान्तो म प्रशासन की जो समस्याए पदा हुई थी उनके कारण तथा हजारो की सख्या म भारतीयो को जेलो मे डाल देने और तरह तरह के दमनकारी कानून बनाकर अधाधुध दमन शुरू कर देने से स्थिति बहुत बिगड गई थी।

इस समय तक भूलाभाई काग्रेस मे जो प्रमुख स्थान प्राप्त कर चुके थे उसका इसी से पता लगता है कि 1938 मे वह बम्बई प्रान्तीय काग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। काग्रेस कायसमिति के सदस्य तो वह पहले से ही थे।

काग्रेस का 51वा अधिवेशन 1938 की फरवरी मे हरिपुरा मे हुआ। उस समय काग्रेस मे तरुण और अधिक उग्र वग का प्रभाव बढ रहा था, जिसका स्पष्ट

प्रमाण सुभाष बोस को सब सम्मति से उस अधिवेशन का अध्यक्ष चुना जाना था। अधिवेशन में यूरोप में युद्ध की बढ़ती हुई सम्भावना पर विचार कर एक प्रस्ताव द्वारा यह विचार व्यक्त किया गया कि भारत इस साम्राज्यवादी युद्ध में भागीदार नहीं बन सकता और अपने धन जन का ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हित में उपयोग नहीं करने देगा, न जनता की स्पष्ट स्वीकृति के बगैर वह किसी युद्ध में शामिल हो सकता है। इसलिए भारत में युद्ध की तैयारी और बड़े पैमाने पर युद्धाभ्यास तथा हवाई हमले से रक्षा की एहतियाती कार्रवाई को वह पसन्द नहीं करता, जिसके द्वारा ऐसा वातावरण बनाया जा रहा है मानो युद्ध भारत के द्वार पर है। और भारत को युद्ध में शामिल करने का यत्न किया गया तो उसका प्रतिरोध किया जाएगा।"

इसी प्रस्ताव के फलस्वरूप प्रान्तों के कांग्रेस मन्त्रिमंडलों ने पद त्याग किया और फिर भारतीय जनता की स्वीकृति बगैर भारत को युद्ध में घसीटने के विरोध में सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया गया।

सुभाष बोस इस समय कांग्रेस के अध्यक्ष थे, लेकिन उनके उग्र अनुयायी वर्ग और गांधीजी के अनुयायियों के बीच मतभेद इतने बढ़े कि समाधान लगभग असंभव हो गया। उनके विस्तार में जाने की यहां कोई जरूरत नहीं है। अलबत्ता यह जरूर कहना पड़ेगा कि फूट का जो नतीजा होता है वही यहाँ भी हुआ और कांग्रेस उससे निस्सन्देह कमजोर पड़ी। मार्च 1937 में त्रिपुरी में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन को लेकर तो ये मतभेद बहुत ही बढ़ गए। गांधीजी ने उसकी अध्यक्षता के लिए पट्टाभि सीतारामय्य का नाम सुझाया और उनके पक्ष में अपना जोर डाला। उनके विरुद्ध सुभाष बोस उम्मीदवार हुए जिनका फिर से कांग्रेस अध्यक्ष बनाया जाना गांधीजी को पसंद नहीं था पर थे वह निस्सन्देह तगड़े उम्मीदवार। स्पष्ट ही कांग्रेस का काफी बड़ा वर्ग सुभाष बोस का समर्थक था जिसके कारण ही गांधीजी के विरोध के बावजूद उन्हें पट्टाभि से 95 मत ज्यादा मिले और चुनाव में वह विजयी रहे। गांधीजी ने एक वक्तव्य दिया, जिसमें उन्होंने इसे वस्तुतः अपनी हार बताया। 'कांग्रेस के इतिहास' में बताया गया है कि "इससे देश में हलचल मच गई और जिन्होंने सुभाष बोस को मत दिया था उन में से भी काफी लोग उनसे विमुख हो गए।" गांधीवादी लोगों ने उनसे असहयोग किया और कार्य समिति से ऐसे सत्रह सदस्यों ने २ ...

दे देने पर सुभाष और उनके भाई शरतचन्द बोस सिर्फ यही दो कार्यसमिति के सदस्य रह गए। इसके बाद कांग्रेस महासमिति के गोविन्दवल्लभ पंत तथा अन्य अनेक सदस्यों ने कांग्रेस के अधिवेशन में ऐसा प्रस्ताव पेश करने की विधिवत सूचना भेजी जिसमें कांग्रेस का नेतृत्व गांधीजी के सुपुर्द कर अध्यक्ष से अनुरोध किया गया कि कार्यसमिति का संगठन वह उन्हीं की इच्छानुसार करें।

त्रिपुरी अधिवेशन तो मार्च 1939 में हुआ पर सुभाष बोस बीमारी के कारण उसकी अध्यक्षता नहीं कर पाए। अधिवेशन में जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए उनमें से एक में स्वाधीनता की राष्ट्रीय मांग की पुष्टि करते हुए कहा गया कि स्वाधीन भारत का संविधान ऐसी संविधान सभा द्वारा बनाया जाना चाहिए जिसका चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर भारतीय जनता करे और जिस में विदेशी सत्ता का कोई हस्तक्षेप न हो।

अधिवेशन में जब गोविन्दवल्लभ पंत के प्रस्ताव पर विचार शुरू हुआ तो उस पर व्यापक मतभेद के कारण बड़ा हंगामा मचा जिसके कारण अधिवेशन को अगले दिन के लिए स्थगित करना पड़ा। बाद में दूसरे दिन खुले अधिवेशन में वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। अमली तौर पर उससे कांग्रेस की बागडोर पूरी तरह गांधीजी के सुपुर्द कर दी गई और कांग्रेस के उग्रपंथी वर्ग की कुछ न चली। इसी के फलस्वरूप उन लोगों ने सुभाष बोस के नेतृत्व में फारवर्ड ब्लाक नाम का एक नया दल बनाया। गांधीजी और जवाहरलाल से सुभाष बोस का मतभेद "इस बात पर था कि भारत की स्वतन्त्रता के लिए ब्रिटेन से आगे जो लड़ाई होने वाली है उसमें कौन सा तरीका अपनाया जाए। सुभाष बोस ऐसे राष्ट्रीय संघर्ष के पक्ष में थे जिसमें होने वाले विश्वयुद्ध का पूरा लाभ उठाया जाए और विश्वयुद्ध की संभावना को मद्दे नजर रख देश में संघर्ष की तैयारी शुरू कर दी जाए। गांधीजी और जवाहरलाल इससे सहमत नहीं थे। इस तरह सुभाष बोस और गांधीजी के बीच मौलिक मतभेद था।" भूलाभाई का झुकाव लिबरलों की ओर होने से सुभाष बोस और उनके गुट के उग्र विचारों से उन्हें कोई सहानुभूति नहीं थी।

कई साल से भूलाभाई स्वास्थ्य सुधार के लिए हर साल कुछ सप्ताह यूरोप-यात्रा करने लगे थे। इस यात्रा का लाभ उठा वह भारत के पक्ष में भाषण करते

और लोगो से मिलते जुलते थे। युदधारभ के एक सप्ताह पूव वह इग्लण्ड म ही थ। एसा लगने लगा कि कही वह लदन मे ही न फस जाए। लेकिन लदन मे रहने वाले कुछ मित्रो के प्रभाव से उनकी यात्रा का प्रबध हो गया और सोमवार 16 जुलाई 1939 को वह साउथम्पटन से स्वदेश रवाना हो गए।

भारत लौटन पर 13 अगस्त 1939 को रामपुर के नागरिको की विशाल सभा म वहा की म्युनिसपल्टी ने देश सेवा के लिए मानपत्र देकर उनका सम्मान किया। जनता ने स्टेशन पर उनका भव्य स्वागत किया इसके बाद उनका जलूस निकाला गया। भूलाभाई ने उसका जवाब हिंदुस्तानी मे दिया। इसमे आश्चय की कोई बात नही थी क्योकि कालेज मे उनकी दूसरी भाषा फारसी थी जिससे उर्दू पर उन्ह पूरा अधिकार था। इसके अलावा विविध भाषा सीखने का उन्ह शौक था, जिस कारण बडी बडी सभाओ मे उन्होने गुजराती के अलावा उर्दू म भी भाषण दिए। गुजराती साहित्यिक क्षेत्र म तो उनका बडा सम्मान था और बहुत पहले 1934 मे ही वह गुजरात साहित्य परिषद् के अध्यक्ष निर्वाचित हो चुके थे।

मानपत्र के जवाब मे भाषण करते हुए भूलाभाई ने इस बात पर जोर दिया कि देश का लक्ष्य स्वतत्रता की प्राप्ति जब तक न हो जाए तब तक किसी की सेवाओ का बखान नहीं होना चाहिए। साथ ही देशवासियो से इसके लिए अपना सयुक्त मोर्चा बनाने की अपील की। इस सबध म उन्होने स्वतत्र देशो का अनुभव बताते हुए कहा वहा निणय होने तक तो मतभेद रहते हैं लेकिन एक बार निणय ले लेने के बाद अपने मतभेदो के बावजूद सभी उस निणय के अनुसार काम करने को एक हो जाते हैं। मानव स्वभाव ऐसा है कि कुछ लोग छोटे मोटे झगडा और परनिन्दा मे ही लगे रहते हैं, लेकिन यह ठीक नही, आप लोगो को इससे ऊपर उठना चाहिए। यह ऐसा समय है जिसे अग्रेज सक्रमणकाल कहते हैं ऐसे समय आपस का फूट और हमारा तरह-तरह के अलग अलग दलो म बटना ठीक नही। इसके लिए स्वतत्रता के बाद काफी समय होगा। लडाई के हमारे तरीके बदलते रह यह भी हो सकता है, यह भी सभव है कि हमारे दृष्टिकोण अलग अलग हो, लेकिन एक बात ऐसी है जिस पर दो मत नही हो सकते, न होने ही चाहिए और वह यह है कि काम सभी मिलजुल कर करें। जो निश्चय कर लिया उसे पूरा करने म फिर देर नही होना

चाहिए और बिना किसी मतभेद के उसे पूरा करने म जुट जाना चाहिए ।" स्पष्ट ही यह काग्रेस म हाल ही मे सामने आए मतभेदो को लक्ष्य कर कहा गया था, जिन्हें वह पसद नही करते थे । सेवा भावना पर भी उन्होने जोर दिया और अत मे ईश्वर और देश के नाम पर लोक सेवको स सच्ची सेवा भावना से काम करने तथा जनता से छोटी मोटी बातो पर आपस मे न झगडते हुए लक्ष्य सिद्धि के लिए जी जान से जुट जाने की अपील की ।

3 सितम्बर 1939 को महायुद्ध शुरू हो गया, जिसने अपने दावानल म आधी से ज्यादा दुनिया को लपेट लिया और छह साल तक मानवता उसप ग्रस्त रही। काग्रेस कार्यसमिति की वडी चेतावनी के बावजूद भारतीय जनता से स्वीकृति लिए बगैर वाइसराय ने भारत को उस युद्ध मे झोक दिया। युद्ध के समय काग्रेस की कार्यसमिति ने उसके बारे म गाधीजी से कुछ भिन्न रुख अपनाया, जो निस्सदेह सुभाष बोस द्वारा इस सबध म प्रकट किए गए रुख से प्रभावित था । 15 सितम्बर 1939 के अपने प्रस्ताव म कार्य समिति ने भारतीय जनता की स्वीकृति लिए बगर भारत को युद्ध म झोक देने की वाइसराय की घोषणा पर गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुए साम्राज्यवादी उद्देश्य के लिए साधनो का उपयोग करने का प्रतिवाद किया और इस बात की खुली घोषणा की कि भारत ऐसे युद्ध म भाग नही ले सकता जो कहने को लोकतत्रीय स्वतत्रता के लिए लडा जा रहा है पर स्वय उसे (भारत को) एसी स्वतत्रता से वचित किया गया है । साथ ही, इसी दृष्टि स, 'उसने ब्रिटिश सरकार से स्पष्ट रूप मे यह बताने को कहा कि लोकतत्र, साम्राज्यवाद और युद्ध के बाद नई व्यवस्था के बारे म युद्ध उद्देश्य क्या हैं, भारत पर वे किस तरह लागू किए जाएगे और उस दृष्टि से तत्काल भारत म क्या करने का विचार है ।" 10 अक्तूबर (1939) को महासमिति ने इसकी पुष्टि करते हुए माग की कि 'भारत को स्वतत्र देश घोषित करना आवश्यक है और उसका यथासभव अधिक के अधिक असली रूप अभी सामने आ जाना चाहिए ।"

इसके जवाब मे वाइसराय लार्ड लिनलिथगो का एक वक्तव्य सामने आया। उन्होंने भारत को औपनिवेशिक स्वराज देने की ब्रिटिश नीति की पुष्टि करते हुए कहा कि फिलहाल ब्रिटेन 1935 के शासन विधान से आगे नही जा सकता, युद्ध-

समाप्ति के बाद ही भारतीय विचारो को ध्यान म रखते हुए उसम संशोधन पर विचार किया जा सकता है। मगर उन्होने "परामर्श मडल कायम करने की तजवीज रखी जिसमे ब्रिटिश भारत के सभी प्रमुख दलो के साथ साथ राजाओ के प्रतिनिधि भी रहेंगे और स्वय गवर्नर जनरल उसके अध्यक्ष होगे।"

काग्रेस की कार्य समिति ने इसे "पुरानी साम्राज्यवादी नीति की स्पष्ट परिपुष्टि" बताते हुए घोषणा की कि ऐसी हालत मे वह युद्ध मे ब्रिटेन का समर्थन नही कर सकती। इस दिशा मे तत्कालीन कारवाई के रूप मे प्रातो के कांग्रेसी मन्त्रि-मडलो को उसने पदत्याग का आदेश दिया, जिसके अनुसार अक्तूबर नवम्बर (1939) मे सभी कांग्रेसी मत्री अपने पदों से हट गए और कांग्रेसी मन्त्रिमडल खत्म हो गए। साथ ही केन्द्रीय असेम्बली के कांग्रेसी सदस्यो ने भी उसम जाना बन्द कर दिया। इस प्रकार 1935 और 1937 मे कांग्रेस ने विधान सभाओ म सरकार से सहयोग की जो नीति शुरू की थी वह समाप्त हो गई। आजादी की लडाई अब नया रूप लेने वाली थी, जिसमे सविनय अवज्ञा का निश्चय ही बडा भाग था।

8 अक्तूबर 1939 को वर्धा से अपने घरवालो को लिखे पत्र में भूलाभाई ने बताया कि "जो बातचीत चल रही है उसका अच्छा परिणाम निकलने की मुझे खास उम्मीद नही है। असल बात यह है कि अभी हम किसी निश्चय पर नही पहुच सकते। वाइसराय दूसरे पक्षो से भी बातचीत करके ब्रिटिश मन्त्रिमडल को अपनी रिपोर्ट भेजेंगे। मेरे ख्याल मे, इस सबका महत्वपूर्ण परिणाम नही होना है।"

इसके बाद कुछ आत्मनिरीक्षण की भावना म उन्होंने लिखा "अतीत को देखना और बीती बातो से सताप अनुभव करना कोई अच्छी निशानी नहीं है। ऐसा करना बुढापे की निशानी है। मेरे मन मे ऐसी भावना नहीं आती। मैं यह अनुभव कर ही नही पाता कि गुजरात कालेज की पहली मजिल वाले अपने कमरे मे मैं बैठा था उसे कितना अरसा हो गया। मुझे तो लगता है मानो वह अभी कल की ही बात है। ऐसा ही मुझे वकालत के बारे म लगता है। कभी-कभी मुझे लगता है कि उसम आसानी से कमाई कर लेने के सिवा धरा ही क्या है, हा जब कोई मुद्दा मेरे दिमाग मे आता है, तो उस पर दलील देने म मुझे ऐसा ही आनन्द आता है जैसा

किसी सुदर कलाकृति के निर्माण म । यह भावना ऐसी है, जिससे जीवन-सचार होता है और जि दगी बढती है ।'

अ त मे पुत्र और पुत्रवधू को, जो उनके मन म हमेशा बने रहते थे, नसीहत है 'अब तुम दोनो बडे हो गए हो और मानव स्वभाव की छोटी मोटी कमियों को दरगुजर करते हुए एक दूसरे को समझने लग हो । धीरू बडा हो गया है, तुम भी बडी हो गई हो तुम दोना ने अपना मित्र मडल बना लिया है और अपने ढग से जि दगी बिताने लगे हो । इसस मुझे खुशी होती है । कुल मिलाकर इससे सतोष का ही अनुभव होता है लेकिन इसके साथ ही अकेलेपन की भावना भी मन म आती है और किसी के साथ की चाह मन म बेचनी पदा करती है । सक्षेप म कहू तो यही बेचैनी का कारण है । यानी इससे मेरा मन बेचन रहता है, लेकिन यह अच्छी बात है या बुरी यह समझ म नही आता है और मैं यही मान कर मन को सतोष देता हू कि इसमे कोई बुराई नही है । शा ति अच्छी चीज है, लेकिन उसके साथ अधिक सक्रिय रूप से आगे बढा जा सके तो और भी अच्छा । शाति की कद्र करते हुए भी, मे समझता हू, अ त तक मैं सघष करता रहूगा और इस तरह जि दगी को ताजा रखूगा । जीवन के ऐसे दृष्टिकोण से निस्सदेह मरे अ दर बेचैनी और उदिवग्नता होती है और मुझे तुम्हारा ध्यान आता है, लेकिन तुम्हें इससे उदिवग्न होने की जरूरत नही । तुम्ह तो यह सब इसीलिए लिख रहा हू कि तुम मेरी मनो दशा को समझ लो और मेरे बारे मे कोई गलत धारणा बनाकर मन को अशा त न बनाओ ।'

भूलाभाई की उम्र अब साठ से ऊपर हो चुकी थी, लेकिन अभी भी उनके दिमाग म ताजगी थी और उ होने बहुत परिश्रम पूण एव सक्रिय जीवन कायम रखा । सावजनिक काय और वकालत तो उनके जीवन साथी ही रहे जिनमे अ त तक उनकी पूरी दिलचस्पी रही ।

9

दूसरा महायुद्ध और भारत छोडो आदोलन

काग्रेस की अ य विविध प्रवत्तियो स भी भूलाभाई का बराबर सम्ब ध रहा और गाधीजी समय समय पर अनेक बातो म खासतौर पर कानूनी मामलो मे, उनसे परामश लेते रहे, फिर भी, जसा कि बताया जा चुका है उनका मुख्य क्षेत्र सेंट्रल असम्बली क मार्चे पर आजादी की लडाई लडना रहा। यह प्रवत्ति अब बद हो चुकी थी। इसस उनको वकालत क अपन धधे क लिए ज्यादा समय की गुजाइश हो गई मगर उनका मन तो राजनीति म रमा हुआ था। इसलिए काग्रेस की काय समिति के सदस्य बन रहे और जसा हम बता चुके है, बम्बइ प्रातीय काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष वह बन ही चुके थ।

काग्रेस मत्रिमडलो क पद त्याग स सरकार को तो शायद राहत ही मिली क्योकि वे अगर कायम रहत तो सरकार क युद्ध प्रयत्न म निस्सदह रुकावट पडती। उनके पद त्याग से वह बाधा नही रही और वाइसराय को खुली छट मिल गई।

इधर काग्रेस म जो मतभेद थ व अक्तूबर (1939) के बाद खुलकर सामन आए। काग्रेस के रामगढ अधिवेशन (माच 1940) के समय सुभाष बोस के फारवड ब्लाक का समथन करन वाला न उसके मुकाबल अखिल भारतीय समझौता विरोधी सम्मेलन का आयोजन किया और दावा किया कि मौलाना अबुल कलाम आजाद की अध्यक्षता म होन वाले काग्रेस अधिवेशन से वह कही ज्यादा सफल रहा।

सुभाष और गाधी म तो मतभेद थे ही गाधीजी क नतत्व मे काम करन वाल भी एकमत नही थे। जवाहरलाल का मत था कि "ब्रिटेन जब जीवन मरण के सघष म लगा हुआ है सत्याग्रह आ दोलन शुरू करके उसे परेशानी मे डालना भारत की शान के खिलाफ है।' और गाधीजी का विचार भी कुछ इससे मिलता जुलता

ही था 'ब्रिटेन के संकट का लाभ उठाकर हम स्वतंत्र नहीं होना चाहते। ऐसा करना अहिंसा का तरीका नहीं है।" इसके विरुद्ध सुभाष बोस इस मत के थे कि ब्रिटेन की कठिनाई का लाभ उठा हमें अपनी लक्ष्य सिद्धि के लिए उस पर पूरा जोर डालना चाहिए। गांधीजी के अनुयाइयों में भी बहुमत उनका था जो अहिंसा के सिद्धांत का समर्थन करते हुए भी युद्ध प्रयत्न में समझौते और सहयोग की नीति पर पूरी तरह विश्वास नहीं रखते थे। वे तो ब्रिटेन के युद्ध समाप्ति पर भारत की मांग पूरी करने का आश्वासन दे देने पर भी सहयोग के लिए तैयार नहीं थे। युद्ध में होने वाले भारी नर संहार का ख्याल मात्र उन्हें व्याकुल करता था। सचाई तो यह है कि इससे पहले भी, 22 जुलाई, 1939 को, उन्होंने हिटलर को पत्र लिखकर उसे युद्ध-विमुख करने का प्रयत्न किया था। यही नहीं बल्कि ऐसे ही खुले पत्र ब्रिटिश जनता के नाम लिखकर उनसे भी ऐसी ही अपील की थी। लेकिन कांग्रेस के अध्यक्ष अबुल कलाम आजाद का विचार सर्वथा भिन्न था। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि कांग्रेस शांतिवादियों की संस्था नहीं है, उसकी स्थापना तो भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए हुई है। और यह कहने में भी नहीं चूके कि अगर और कोई विकल्प न हो तो (स्वतन्त्रता के लिए) तलवार उठाने का भी हमें पूरा हक है।

कार्य समिति ने जून 1940 में जो प्रस्ताव स्वीकार किया उसमें यही रुख था। उसमें स्पष्ट कहा गया कि 'कार्य समिति पूरी तरह गांधीजी के साथ जाने में असमर्थ है, मगर इस बात को मानती है कि उन्हें अपने महान आदर्श पर अपने ढंग से चलने की पूरी आजादी होनी चाहिए, इसलिए देशभर में आत्मरक्षा और सार्वजनिक सुरक्षा के लिए (सरकार के साथ साथ) संगठन बनाने का कार्यक्रम कांग्रेस ने बनाया है और जिसे अपनी ही तरफ से कार्यान्वित करने के लिए कांग्रेस जनों से कहा गया है, उसके दायित्व से उन्हें मुक्त करती है।' बाद में कार्य समिति ने भारत की पूर्ण स्वाधीनता की तत्काल स्पष्ट घोषणा करने और केन्द्रीय असेम्बली के निर्वाचित सदस्यों की विश्वासप्राप्त राष्ट्रीय सरकार बनाने की अपनी मांग फिर से रखी। ऐसा करते हुए उसने घोषणा की कि जब तक ऐसा न किया जाय, देश स्वेच्छा से या स्वतंत्र देश की हैसियत से युद्ध के लिए नैतिक और भौतिक साधन नहीं प्रस्तुत कर सकता।

–कांग्रेस ने सहयोग के लिए जो शर्तें रखी थीं उस पर 8 अगस्त 1940 को वाइसराय ने एक वक्तव्य निकाला । उसमें सरकार की ओर से गवर्नर जनरल की एक्जीक्युटिव कौंसिल में विस्तार और युद्ध कार्य में परामर्श के लिए समिति (वार एडवाइजरी कौंसिल) कायम करने की कार्रवाई तत्काल करने की रजामंदी जाहिर की गई । साथ ही कांग्रेस की इस मांग को मानने के लिए भी वाइसराय तैयार थे कि युद्ध समाप्ति पर भारत का संविधान बनाने के लिए संविधान सभा बनाई जाय । लेकिन उनकी इस तजवीज को कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने ही ठुकरा दिया ।

इस बीच सुभाष बाबू के उत्साही अनुयाइयों ने कानून भंग करने का आन्दोलन शुरू कर दिया था । धीरे धीरे गांधीजी के अनुयायी और फिर स्वयं गांधीजी भी सविनय अवज्ञा का सहारा लेने को बाध्य हुए । उसका नेतृत्व, उसके जनक और मुख्य प्रतिपादक होने के कारण, गांधीजी ही अच्छी तरह कर सकते थे । मगर गांधीजी अभी तो अंग्रेजों को जबकि वे अपने अस्तित्व के लिए जीवन मरण की लड़ाई लड़ रहे थे, परेशान नहीं करना चाहते थे, इसलिए सविनय अवज्ञा के आंदोलन का तात्कालिक मुद्दा उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के बजाय भाषण स्वातंत्र्य को बताया । उन्होंने दावा किया कि मुझे भारतीय जनता से यह कहने का पूरा हक है कि युद्ध में मुझे विश्वास नहीं है और युद्ध प्रयत्न को आगे बढ़ाने की किसी कार्रवाई से मुझे कोई सरोकार नहीं है । जैसा कि वह पहले से करते आए थे सितम्बर (1940) में वह वाइसराय से मिले और उन्हें अपने इन इरादों की सूचना दी कि अपने इस हक के अनुसार मैं खुले आम देशभर में लोगों से कहूंगा कि वे भारत के नाम पर होने वाले युद्ध प्रयत्न में किसी तरह की कोई सहायता न करें । वाइसराय ऐसी मांग स्वीकार करेंगे, यह आशा करना व्यर्थ था । फलतः अक्तूबर (1940) में सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू हो गया ।

सविनय अवज्ञा या सत्याग्रह का यह आंदोलन शुरू में सामूहिक न होकर वैयक्तिक ही रहा । कुछ खास व्यक्ति ही उसके लिए चुने जाते, जो युद्ध विरोधी नारे लगाकर गिरफ्तार होते थे । यह समूह के बजाय अकेले ही किया जाता था । बाद में इसने प्रतिनिधिक सत्याग्रह का रूप लिया, जिसमें कांग्रेस के प्रमुख सदस्यों को सत्या

ग्रह के लिए चुना जाता था और उनका कम्‍ युद्ध विरोधी नारे लगाता हुआ गिरफ्तार होता था। कांग्रेस के बड़े-बड़े लोगों ने इसमें भाग लिया और मौ० आजाद तथा राजाजी सहित कोई 600 व्यक्ति इस तरह जेल गए।

युद्ध प्रयत्न में भाग लेने के बारे में कांग्रेस का रुख दुनिया के सामने रखने के लिए केन्द्रीय असेम्बली के मंच का सहारा लेने का भी निश्चय किया गया। इसके अनुसार अठारह महीने बाद 19 नवम्बर, 1940 को भूलाभाई ने उसमें जाकर भाषण दिया। भाषण में बजट को अस्वीकृत करने पर जोर देते हुए उन्होंने कहा कि हमारा दल इस अवसर पर इसीलिए उपस्थित हुआ है जिससे युद्ध प्रयत्न में भारत के भाग लेने के विषय में स्थिति दुनिया को स्पष्ट कर दी जाए।

'पिछले महायुद्ध में भारत ने—यहां तक कि मैंने और महात्मा गांधी ने भी अपना हार्दिक सहयोग प्रदान किया था। अपने मित्र सर टामस स्ट्रांगमैन के साथ जगह जगह जाकर मैंने उसके लिए भाषण दिए थे।' समस्या यह है कि युद्ध को जब तक भारत का युद्ध नहीं बनाया जाएगा तब तक आपको उसमें भारत का समर्थन और सहयोग मिलना असंभव है इसलिए स्थिति यह है—इस सदन को और सारी दुनिया को हम बिलकुल स्पष्ट रूप से बता देना चाहते हैं—कि आपकी लोकतंत्र की तारीफ करना मक्कारी के सिवा कुछ नहीं है। लोकतन्त्र के आप पक्ष में हैं तो वह किस लोकतंत्र के? अपने मरे या सभा के? जो आपके लिए लोकतंत्र हो मेरे लिए पराधीनता, तो उस मक्कारी के सिवा क्या कहूँ? हां, अगर सभी के लिए लोकतंत्र की बात हो, तो युद्ध में बराबरी दर्जे के मित्र राष्ट्र के रूप में लड़ने में हम हमेशा तैयार हैं। युद्ध घोषणा के एक सप्ताह के अन्दर ही हमने इस सम्बन्ध में जो वक्तव्य दिया था उससे यह साफ है कि भारत पीछे नहीं हटा है। लेकिन उसके साथ ही यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भारत को बार बार बेवकूफ नहीं बनाया जा सकता। आपको यह समझ लेना चाहिए कि युद्ध में हम तभी भाग ले सकते हैं जब हमें विश्वास करा दिया जाए कि युद्ध आपका ही नहीं हमारी भी स्वतंत्रता के लिए है।

सशस्त्र संग्राम में ब्रिटेन की सफलता का मतलब भारत पर विदेशी शासन को नया जीवन देना हो और यदि उससे हमारी पराधीनता की अवधि बढ़ती हो तो

मैं उसकी सफलता नहीं चाह सकता।' गांधीजी का यह उद्धरण देकर उन्होंने आगे कहा "सरकारी रुख से निराश होने पर भी, आप विश्वास करें या नहीं, गांधीजी आपको परेशान नहीं करना चाहते, लेकिन परेशान न करने की इच्छा का यह नतीजा नहीं होना चाहिए कि हमारा गला घोंट दिया जाए। हमारी सदिच्छा का आप इतना नाजायज फायदा नहीं उठा सकते कि हमारी जबान पर बिल्कुल ताला ही डाल दिया जाए। हमारी उदारता को आपकी मक्कारी का लक्षण हर्गिज नहीं बनने दिया जा सकता।' अंत में उन्होंने इस वाक्य के साथ भाषण समाप्त किया, साथी के रूप में हम अपनी पूरी ताकत के साथ युद्ध में सहयोग करेंगे लेकिन अनुचर बनकर हर्गिज नहीं। इन शब्दों के साथ मैं इस (फाइनेंस) बिल का विरोध करता हूं।"

इसका फल यह हुआ कि फाइनेंस बिल पर सरकार की हार हो गई। बहुमत से वह अस्वीकृत हुआ, जिससे कांग्रेस की ओर से भूलाभाई ने जो रुख लिया था उसकी पुष्टि हुई। यह बात दूसरी है कि असेम्बली में हुई हार के बावजूद वाइसराय को प्राप्त अधिकार से इसे फिर भी लागू किया गया।

भूलाभाई के निजी विचार कुछ भी रहे हों, पर कांग्रेस के एक प्रमुख सिपाही के रूप में वैयक्तिक सत्याग्रह में उन्होंने भाग लिया। बम्बई प्रांतीय कांग्रेस के अध्यक्ष और कांग्रेस कार्य समिति के सदस्य के नाते 1 दिसम्बर, 1940 को उन्होंने वैयक्तिक सत्याग्रह किया। उसी दिन उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। सरोजिनी नायडू और मंगलदास पकवासा भी उसी सवेरे गिरफ्तार किए गए थे। सरोजिनी नायडू उन्हीं की तरह कांग्रेस कार्य समिति की सदस्या थीं और पकवासा बम्बई लेजिस्लेटिव कौंसिल के अध्यक्ष थे। गिरफ्तारियां भारत रक्षा कानून के मातहत की गई और गिरफ्तार व्यक्ति पूना की यरवदा जेल भेजे गए।

जेल में पहुंचते ही, जैसा स्वाभाविक था, भूलाभाई ने (यरवदा जेल से) अपने घरवालों को पत्र लिखना शुरू कर दिया। इनमें से कुछ सुरक्षित हैं और उनसे उस समय की मनोदशा का उनमें पता लगता है।

11 दिसम्बर 1940 के पत्र में उन्होंने लिखा "इस सप्ताह मेरे मन में जो विचार उठ रहे हैं उन्हें मैं संक्षिप्त में लिपिबद्ध करूंगा। यह मैं शुरू में ही बता

देना चाहता हूं कि उसमें या आगे भी, जो मैं लिखूं, मौलिक कुछ नहीं होगा, उसका तो सिर्फ यही महत्व है कि जीवन को कैसे बनाया जा सकता, यह हम जानते हैं।" बेकन का हवाला देते हुए उन्होंने बताया कि असंतोष ही आधुनिक विज्ञान का आधार है। लेकिन अपने मौजूदा जीवन पर ही संतुष्ट न रहते, आगे बढ़ने की महत्वाकांक्षा रखते हुए भी सुखी जीवन के लिए असंतोष को संतोष में समन्वय करना आवश्यक है। ऐसा किए बिना मन को शान्ति नहीं मिल सकती। आजकल मैं ऐसी ही मनोवृत्ति बनाने का प्रयत्न कर रहा हूं।"

2 जनवरी 1941 को उन्होंने लिखा : "मैं उर्दू सीख रहा हूं, क्योंकि उर्दू भाषा जानते हुए भी उसकी लिपि का मुझे बोध नहीं है। पतंजलि का योगसूत्र पढ़ रहा हूं—मुमुक्षु 'संन्यासी की दृष्टि से नहीं बल्कि एक व्यक्ति की दृष्टि से जो दुनिया में रहते हुए और अपने कर्तव्य करते हुए जीवन की पूर्णता प्राप्त करना चाहता है।

11 जनवरी 1941 से भूलाभाई ने जेल में डायरी लिखना शुरू किया। कोई 150 पृष्ठों की डायरी में अपने कारावास के समय उन्होंने 70 पृष्ठ ही लिखे मालूम पड़ते हैं। डायरी रोज रोज नहीं लिखी गई, बीच बीच में खाली भी है। लेकिन उसमें लिखी कुछ बातें बड़ी रोचक हैं क्योंकि उनमें आत्म निरीक्षण के अलावा गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस द्वारा गृहीत नीति की आलोचना भी है। इसमें सन्देह नहीं कि कांग्रेस के एक प्रमुख कार्यकर्ता के नाते उन्होंने अपना आचरण उसी के अनुरूप रखा, परन्तु उनका जिज्ञासु और भावुक मन उनके मुख्य नेता गांधीजी के अनेक तौर-तरीकों से पूरी तरह सहमत नहीं हो सका।

डायरी का आरम्भ (11 जनवरी को) भूलाभाई ने इस प्राक्कथन के साथ किया : 'आज मुझे अपने लिए यानी अपनी आत्मा के लिए कुछ प्राप्त करना चाहिए।' और उसी दिन लिखा : 'आज मैं आत्मनिग्रह का अभ्यास शुरू करूंगा जिसकी कि इस समय मुझे जरूरत है। ऐसा कोई नहीं जिस पर मैं निर्भर कर सकूं (बच्चों का जीवन में महत्त्व है, पर उनका अपना अलग क्षेत्र है जैसा कि होना भी चाहिए)। दुःखदाई होते हुए भी यह उपयोगी भावना है और आत्महीनता के बजाय आत्मगौरव ही मुझे अपने अन्दर पैदा करना चाहिए।'

स्पष्ट ही कुछ दिनों से घरवालों का कोई पत्र न पाने से वह उदास थे। 15 जनवरी (1941) को तो वह बहुत उद्विग्न भी थे। इस दिन उन्होंने लिखा "यह विश्वास रखना चाहिए कि सब कुछ ठीक ही होगा—यह तो जरूरी नहीं कि जैसा हम चाहते हैं वैसा ही हो, पर जो हो उसके लिए मानना चाहिए कि वह ठीक ही हुआ है। जो होना ही है उसमें मेरे दखल देने से होगा भी क्या? यही मानकर मैं दिमाग को शान्त रखता हूँ और खुश रहता हूँ।' पर दूसरे ही दिन (16 जनवरी को) "आज कितने पत्र आए। एक बुडापेस्त से भी। मैं बड़ा खुश हूँ कोई परेशानी नहीं, कल से कितना अन्तर है।"

इसके बाद कुछ आत्मनिरीक्षण की बारी आती है जिसमें यह ऊहापोह है कि कल परेशान और आज खुश क्यों रहा? हमेशा एकसा रहने जितना आत्मनिग्रह प्राप्त करना एक बड़ी सफलता है—असफलता इसलिए कि मुझमें श्रद्धा की कमी है ऐसा न होता तो कभी-कभी खुश रहने के बजाय हर हालत में बराबर रहता। अपनी इस कमी को मुझे दूर करना ही पड़ेगा।

महीने के अन्त में पुत्र और पुत्रवधू मिलने आए और जेल के अहाते में लगाने के लिए वे कई पौधे दे गए। 23 जनवरी (1941) के पत्र में उन्होंने लिखा, "लिली का जो पौधा तुम दे गए थे, वह फूल उठा है। यह उस सुन्दरता और सुगंध का प्रतीक है, जो तुम यहां छोड़ गए थे।' उन्होंने बताया कि पढ़ाई ठीक चल रही है हाफिज के उर्दू काव्य 75 पृष्ठ, पतंजलि योगसूत्र के कुछ अंश और गीता के कुछ अध्याय पढ़ डाले हैं। नए चरखे से कताई भी नियमित और सुगम हो गई है।"

6 फरवरी (1941) के पत्र में फिर उन पौधों का उल्लेख है जिनकी वह बड़ी सावधानी से जेल में देखभाल कर रहे थे। "पहले वाली लिली एक हफ्ते तक खिली रही और सुगंध व प्रसन्नता फैलाती रही। दूसरा फूल भी खिला है और प्रतिदिन बड़ा होता जा रहा है। यह अपने चारों ओर रंग और सुगंध बिखेर रहा है जो ग्लैडिओला तुम दे गए थे, उसकी पंखुड़ियां एक एक करके खुल रही हैं। इनके मुरझा जाने पर भी, इनके साथ आई प्रेममयी याद बनी रहेगी।"

18 फरवरी के पत्र में उन्होंने फिर लिखा, "ग्लैडिओला पूरी तरह खिला हुआ है। इसका रूप रंग और सुगंध मुझे घर की याद दिलाते हैं।'

6 अप्रैल (1941) के पत्र मे हम उन्हे आत्मसुधार की प्रवृत्ति मे पाते हैं। उस दिन रामनवमी का पर्व था और राष्ट्रीय सप्ताह का पहला दिन। उस दिन की डायरी मे उन्होने लिखा "आज से राष्ट्रीय सप्ताह शुरू होता है। हमारी आजादी की लडाई मे इसका बडा महत्व है क्योंकि इसी सप्ताह के अंतिम दिन जलियावाला बाग हत्याकाड हुआ था। उसे हम भूल नही सकते। महात्मा गाधी ने सप्ताह के आरम्भ और अन्त के दिन (6 और 13 अप्रैल को) उपवास और आत्मनिरीक्षण करने को कहा है। उनका इससे चाहे जो अभिप्राय हो हमे इसका वही अर्थ लगाना चाहिए जो हमारी समझ मे आए। आत्मनिरीक्षण से निस्सदेह अपने को समझने का अवसर मिलता है।"

आत्मचिन्तन मे आगे उन्होने लिखा "परधर्म से स्वधर्म श्रेष्ठ है। यानी दूसरे के बताए रास्ते पर चलने के बजाय अपनी दृष्टि से खुद सोचे हुए रास्ते पर चलना चाहिए। कोई आदमी अपने ही गुणो से तरक्की कर सकता है। आत्म-समर्पण वहा तो ठीक हो सकता है जहा उसके लिए पूर्ण श्रद्धा हो, लेकिन जहा आस्था मे कमी हो और बुद्धि समर्थन न करे वहा अपने रास्ते ही चलना ठीक होगा। जरूरत दरअसल इस बात की है कि राग, लोभ और क्रोध से मुक्त रहते हुए निर्णय करने की आदत डाली जाए।——अब मै ऐसा ही करने का प्रयत्न करूंगा।—कोई प्रयत्न व्यर्थ नहीं जाता। सबसे पहले मुझे मन, वचन और कर्म मे सयत होना चाहिए मतलब कि न ऐसी कोई बात सोचनी चाहिए, न ऐसी कोई बात कहनी चाहिए और न ऐसा कोई काम करना चाहिए जो व्यर्थ हो। उदाहरण के लिए जेल की चर्चा अब मैं नही करूगा, जो कि वस्तुत व्यर्थ ही है। ऐसा करके मैं स्थिति को बदल तो सकता नही, जबरदस्ती मिले विश्राम का सदुपयोग क्यो न किया जाए? इसका लाभ उठाकर आत्मनिग्रह और सतुलन पैदा करने का अभ्यास क्यो न हो जिसके फलस्वरूप ही उस शान्ति और सुख की प्राप्ति हो सकती है जिसके लिए मैं तरस रहा हू। मैं ऐसा करूगा। ऐसा करना मैंने शुरू भी कर दिया है।"

इसी दिन बाद मे उन्होने राजनीतिक आदोलन के बारे मे भी चिन्तन किया। उन्होने लिखा सचाई और ईमानदारी से काम लें तो समस्या का समाधान असभव नही है, ऐसा न भी हो तो कम से कम दिमाग तो साफ हो जायेगा। मनुष्य पर आसपास की परिस्थिति का असर जरूर पडता है

पर उसे परिस्थिति का गुलाम नहीं बन जाना चाहिए। सोच समझकर अपना रास्ता आप निकालना चाहिए। दूसरे को नेता मानकर अपना मार्ग ग्रहण करने का नतीजा तो अपने व्यक्तित्व को खत्म कर देना होता है। नेता स्वधर्म से नहीं हटता यानी वह जैसा ठीक समझे वैसा ही करता है। अनुयायियों से वही अपेक्षा रखता है कि वे उसके बताये रास्ते पर चलें या फिर अपने विवेक से जैसा ठीक समझें वैसा करें। जो लोग उसका यथानुकरण करते हैं उनकी उपेक्षा वह करने लगता है कि ये तो जैसा वह चाहेगा वैसा करेंगे ही। अतः आदमी को अपने बारे में खुद ही निर्णय करना चाहिए और अपने ही रास्ते पर चलना चाहिए।'

सार्वजनिक जीवन में—बल्कि कहा जाना चाहिए कांग्रेस और गांधीजी के नेतृत्व में—अपने स्थान के बारे में उपयुक्त दृष्टि से उन्होंने कहा "समय आने पर उसका लाभ उठाने की मेरी तैयारी न हो यह मैं नहीं चाहता। मेरे विचार में ऊँचे आदर्शों को सामने रखकर उनपर आचरण न करने से ऐसे आदर्श अपनाना कहीं अच्छा है जो चाहे देखने में बहुत ऊँचे न हों पर अमल में लाये जाएं।"

इसके कुछ दिन बाद (13 अप्रैल 1941 को) 'महात्मा गांधी' शीर्षक से उन्होंने राजनीतिक जीवन का विश्लेषण किया "आज जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड का दिन है। गांधीजी ने इस सिलसिले में 6 से 13 अप्रैल तक राष्ट्रीय सप्ताह मनाने का आदेश दिया है। वह इसे शुद्धि और सेवा का सप्ताह कहते हैं। सेवा की उनकी अपनी परिभाषा मापदण्ड विचार और प्रयोग है—उसी का वह सबसे अनुसरण चाहते हैं। मामूली आदमी के लिये यह एक हद तक ही संभव है। लेकिन एक बार उनके रास्ते पर आपने पैर रखा नहीं कि उसमें दलदल की तरह धंसते ही चले जाएंगे। इस तरह लोग उनके प्रयोग के साधन बनते हैं और जिस तरह प्रयोगशालाओं में चूहों पर प्रयोग किए जाते हैं उसी तरह उन पर या उनके द्वारा वह अपने नये नये प्रयोग करते रहते हैं। अहिंसा के विचार और आदर्श ने अब सनक का रूप ले लिया है और मनुष्य की उनकी कल्पना ऐसी जटिल हो गई है कि उनके विचारों का साथ देना संभव नहीं रहा। वह तो मनुष्य को ऐसा नया रूप देना चाहते हैं जिसमें वह अधिक से अधिक कष्टसहिष्णु और अहिंसक बने। यही नहीं, उनका तो यह भी विचार है कि ऐसा मानव समूह,

सगठित हिंसा यानी स य बल के सामने भी छाती खालकर खडा हो जाय, तो उससे हिंसा करने वाले का मन बदले बिना नही रह सकता। लेकिन मैं उनके इस दावे से सहमत नही हो सकता। यह आशा करना और बात है कि मनुष्य एक दिन इतना विकास कर लेगा और इतना सच्चा और न्यायी हो जाएगा कि हिंसा की प्रवृत्ति ही मिट जाएगी लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसा कब होगा। मगर गाधीजी के लिए तो प्रयोग ही काफी है चाहे जिन पर प्रयोग किया जाए उनका कुछ भी क्यो न हो। वास्तव मे लोगो के कष्ट सहन मे उन्हे मजा आता है, क्योकि उनका विश्वास है कि उसका कोई न कोई परिणाम जरूर निकलेगा और कोई परिणाम न निकला तो भी प्रयोग तो होगा ही। वर्धा के प्रसिद्ध प्रस्ताव म हमने उनका जितना साथ दिया मैं समझता हू, उससे आगे जाना हमारे लिए सभव नही है। वह प्रस्ताव भी कुछ न कुछ सपर्क बनाये रखने के लिए किया गया नहीं तो यह बात वह स्वय भी अच्छी तरह जानते थे कि उनस कोई सहमत नही था। जनता पर उनका प्रभाव का उपयोग करने के लालच ने ही, हमे वह प्रस्ताव पास करने को प्रेरित किया। दुनिया की ओर मनुष्य की आज जो स्थिति है उसमें राज्य या सरकार द्वारा सगठित बल या शक्ति ही समाज मे व्यवस्था कायम रख सकती है। निस्सदेह उसके दुरुपयोग या जरूरत स ज्यादा उपयोग की सभावना है लेकिन यह तो सभी उपयोगी साधनो के बारे मे कही जा सकती हैं। यहा तक कि जो विज्ञान मनुष्य का हित साधन है वह भी आज विनाश का साधन बन गया है। और, यह सब विनाश समाज की भलाई के नाम पर ही हो रहा है।'

उन्होने आगे यह भी लिखा 'एक बार गाधीजी मे तर्क करते हुए विनम्रता मे मैंने कहा कि यदि आप मान लेते हैं कि पुलिस ताकत से काम ले सकती है, तो शक्ति के प्रयोग के विरुद्ध आपका बुनियादी विरोध तो खत्म हो जाता है। इसमे शक नही कि हमे आदर्श तो अपनी इच्छानुसार ऊचे स ऊचा ही रखना चाहिए लेकिन अगर जिंदा रहना है तो वास्तविकता की उपेक्षा नही की जा सकती। और वास्तविकता यह है कि समाज मे गुडे बदमाश हैं, जिनका दमन जरूरी है। पर गाधीजी पर इसका कोई असर न हुआ। वह तो कहते है कि इस वक्त तो सत्ता मिलती भी हो तो न लो, नही तो देश के नौजवान युद्ध पिपासु बन जाएगे और मैं जो प्रयोग (अहिंसा का) कर रहा हू वह खत्म हो जाएगा। सच तो यह है कि

उन्होंने हमें दलदल में फसा दिया और वह यह नही चाहते कि उससे हम निकलें। वह कहते हैं इस लड़ाई में भाग लेकर हिंसा और बल के उपयोग से अपने हाथ गंदे मत करो। आगे हम देखेंगे। इस प्रकार जितना ही हम उनके तौर-तरीकों, विचारों, और सिद्धान्तों की जांच करें हमें मालूम पड़ेगा कि वह ऐसा आदिम समाज का सतयुग लाना चाहते हैं जिसमें मनुष्य का जीवन बिल्कुल सीधा-सादा हो और उसकी आवश्यकताएं इतनी कम हों कि लड़ने झगड़ने के लिए कुछ रहे ही नहीं। मतलब यह कि जीवन का स्तर ऊंचा करने की जरूरत नहीं और मनुष्य को ज्यादा से ज्यादा एक कुटिया, एक गाय और एक एकड़ जमीन के सिवा कुछ नहीं चाहिए—अलबत्ता चर्खा जरूर हो। क्योंकि या तो हम आधुनिक विज्ञान का उपयोग करें और उसके खतरे भी उठाएं या फिर चर्खे और बैलगाड़ी के युग में ही पड़े रहें। मजा यह है कि अपने ऐसे विचारों के बावजूद वह रेलगाड़ी और मोटर का उपयोग भी करते हैं। मैं तो इस आदिम अवस्था के बजाय आधुनिक युग को ही पसंद करूंगा जो खतरों के बावजूद मनुष्य के जीवन स्तर को ऊंचा उठाता है। गांवों और ग्रामीणों की स्थिति सुधारने की बात तो ठीक है, पर उसका यही उपाय नहीं कि गांव वालों को पाषाण युग की अवस्था में रखा जाए या उससे कुछ आगे बैलगाड़ी और चर्खे युग में। वह कुछ भी क्यों न कहें दुनिया तो आगे बढ़ती ही रहेगी—जैसा कि स्वयं भारत में भी हम देख रहे हैं।

अंत में निष्कर्ष निकाला : निकट भविष्य में कोई भी राष्ट्र या स्वतंत्र सरकार अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह संगठित शक्ति सेना व पुलिस के बगैर कर सकेगा या करेगा, इसकी कोई संभावना नहीं है। अन्यथा अराजकता के सिवा कुछ नहीं हो सकता। कांग्रेस तो अपनी अहिंसा से एक गांव में हुए दंगे को भी नहीं रोक पाई। ढाका में कांग्रेस कमेटी होते हुए भी दंगा रोकने में वह असफल रही और आसपास के 31 गांवों सहित वहां सर्वनाश हो गया। देश में शांति रखने स्त्री-पुरुष बच्चों और उनकी संपत्ति की रक्षा के लिए यह है कांग्रेस की क्षमता।"

और चर्खे के सम्बन्ध में 15 अप्रैल का लिखा : "यहां आने के कुछ दिन बाद से ही मैं नियमित रूप से चर्खा कात रहा हूं और उसका अच्छा अभ्यास हो गया है लेकिन महात्मा जी के प्रति श्रद्धा भाव रखते हुए भी मैं यह नहीं मानता कि इससे

भारत के कला विज्ञान या ज्ञान में कोई वृद्धि होगी। यह तो समाज की उस अवस्था का प्रतीक है जो कभी की बीत चुकी है। विज्ञान के प्रयोग से उत्पन्न बुराइयों के बावजूद दुनिया 10वीं सदी को नहीं लौट सकती। अगर यह जीवन में सादगी का प्रतीक हो तो उस सादगी से हमारा जीवन स्तर ऊपर नहीं उठेगा और (वैज्ञानिक साधनों के उपयोग में पिछड़ रहने से) हम पराधीन ही रहेंगे। सादगी की यह धारणा आदिम युग की स्थिति का ले जाने वाली है। यह ध्यान देने की बात है कि देश में जब 60 करोड़ से अधिक मूल्य के कपड़े की वार्षिक खपत है, खादी का उत्पादन पिछले 20 साल में दो-तीन करोड़ से ज्यादा का नहीं हुआ है—वह भी जिन परिस्थितियों में जितने प्रचार और खर्च के बाद (महात्मा जी ने इसके लिए उनमें लाखों रुपया इकट्ठा किया जिनका यह उद्योग में ही पूरा विश्वास है और चर्खे में बिलकुल नहीं)। फिर भी कांग्रेसी की हैसियत से इन दो कारणों से मैंने इसका समर्थन किया है—(1) यह हमारी लड़ाई का प्रतीक बन गया है और (2) गांवों में किसानों की कमाई में इससे कुछ वृद्धि होती है। चर्खे में अद्भुत शक्ति का मैंने कभी दावा नहीं किया न ऐसा कहने की ही कभी हिम्मत की कि मिलों का नाश हो जाए तो मुझे बड़ी खुशी होगी। उद्योगों में विश्वास रखने वाले पूंजीपतियों ने महात्मा जी से फायदा उठाया है और महात्मा जी ने उनसे। लेकिन सच पूछो तो कोई भी चर्खे को भारत की मुक्ति का साधन नहीं मानता। उद्योगीकरण की बुराइयों का यह निश्चय ही उपयुक्त विकल्प नहीं है। गांवों और छोटे कस्बों में भी जहां गरीब लोग रहते हैं उनके सिवा किसी के लिए यह उपयोगी नहीं है जो बाप दादों के वक्त से इसे चला रहे हैं और अब भी इससे चिपटे रहना चाहते हैं। चर्खा कातने वालों को गुजारे लायक मजूरी देने के लिए भी चंदा करना पड़ता है। इसी से यह स्पष्ट है कि आर्थिक दृष्टि से यह उपयुक्त नहीं है और बहुत दिन नहीं टिकेगा।"

'सत्याग्रह' की किसी समस्या का जब कोई समाधान नहीं हो पाता तो महात्माजी का अंतिम जवाब यही होता है, 'इसका विशेषज्ञ तो मैं ही हूं क्या तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं? और मजा यह है कि अन्य क्षेत्रों के विशेषज्ञों की तो जांच की जा सकती है पर यहां उसकी कोई गुंजाइश नहीं।' उन्होंने आगे लिखा, 'राष्ट्रीय झंडे पर हम चर्खे को रखते हैं और रचनात्मक कहे जानेवाले कार्यक्रम में इतना

महत्व देते हैं इसका कारण इसके सिवा कुछ नहीं है कि महात्मा जी की खातिर हमें चर्खे को मंजूर करना ही होगा। बुद्धि से काम लेने वाला कोई व्यक्ति इसके महत्व को नहीं मानता, पर महात्मा जी के प्रभाव का लाभ उठाने के लिए विरोध कोई नहीं करता। और बाकी सब तो भेड़चाल चलने वाले ही हैं।—महात्मा जी तो यह भी कहते हैं कि अहिंसा के साथ चर्खे को भी स्वीकार करना चाहिए मानो दोनों में कोई रहस्यपूर्ण सम्बन्ध हो। लेकिन चर्खे में सुधार का प्रयत्न भी मशीन और आविष्कार की उपयोगिता का प्रमाण है। अब चर्खे के साथ साथ तकली चली है। यह तो चर्खे से भी एक कदम पीछे है।'

16 अप्रैल (1941) के पत्र में संसार में घट रही घटनाओं का उल्लेख करते हुए बताया कि युद्ध तो पहले भी हुए हैं पर ऐसा कोई नहीं हुआ जिसमें सारी दुनिया फंस गई हो और जिसका संसार के भविष्य पर भारी प्रभाव पड़ना निश्चित है। अब तो हर दिन नक्शे बदल रहे हैं। इसके बाद 18 अप्रैल को फिर डायरी में अहिंसा पर लम्बा तर्क वितर्क मिलता है। उसमें बताया कि अहिंसा से यदि यह आशय हो कि समाज शान्तिप्रिय बने और शांतिपूर्वक रहे तब तो ठीक है लेकिन यदि इसका अर्थ समाज की सुरक्षा के लिए समाज या राज्य के पास संगठित शक्ति (सेना और पुलिस) न रखना हो तो वह ठीक नहीं। 'आत्मनियंत्रित अराजकता' या राज्यहीन समाज का स्वप्न तो जरूर लुभावना है पर व्यावहारिक नहीं। हमारे बीच ऐसे भी लोग हैं जो आज के रूस के ढंग पर भारत को ढालना चाहते हैं वे अराजकता को इसलिए पसंद करते हैं कि वैसी स्थिति होने पर ही उनके मनोनुकूल नई व्यवस्था यहाँ लाई जा सकेगी। लेकिन इस सम्भावना को दरगुजर नहीं किया जा सकता कि अराजकता आकर भी वैसी नई व्यवस्था कायम न हो क्योंकि उनके पास ऐसी नई व्यवस्था कायम करने की शक्ति नहीं। विदेशी सत्ता हमारे देश से हट जाए और अपना सैन्यबल भी अपने साथ ले जाए तो स्वतन्त्रता हम हो जाएगी पर अहिंसा के मौजूदा रुख पर कायम रहे तो प्राप्त आजादी टिकाऊ नहीं होगी। सैन्य बल न होने से, महज एक हजार शस्त्रधारी भी हमसे उसे फिर छीन लेंगे और अहिंसावादी होने से हम उनका कुछ नहीं कर पाएंगे। उसके बाद तो फिर अहिंसक असहयोग ही हम शुरू करेंगे और वही सिलसिला बना रहेगा।— वास्तव में युद्ध का विरोध करने वाले भी नकली शांतिवादी हैं। वे फौज चाहते हैं, मगर

कहते हैं कि इस लडाई से अलग रहो। बाद मे देख लेंगे। मेरा कहना है कि अगर हमें फौज खडी करनी ही है तो हम इस मौके का लाभ उठाएं और क्यो न विदेशी सरकार के ही खर्च पर क्यो न हम अपने नौजवानो को फौजी तालीम दिलवाएं।

आगे उन्होने कहा कि सोचना तो हमने बिलकुल ही छोड दिया है और कोई कुछ सोचता भी है तो डर के मारे साफ कहता नही न उस पर अमल ही करता है। सत्याग्रह का यह आन्दोलन जैसा महात्माजी कहते हैं, कांग्रेस को जीवित रखने के लिए शुरू किया गया है, क्योकि उनके कथनानुसार युद्ध में ब्रिटेन को परेशान न करने की इच्छा को इस हद तक नही ले जाया जा सकता कि कांग्रेस का अस्तित्व ही खत्म हो जाए। सवाल यह है कि कांग्रेस को और देशवासियो पर उसके प्रभाव को हम कायम क्या रखना चाहते हैं? इसका अर्थ तो यही हो सकता है (माना हमारा ऐसा विश्वास है) कि भारत पर ब्रिटिश आधिपत्य बना रहेगा, वही हमारे देश में शांति और व्यवस्था बनाए रखने का काम करता रहेगा और हमारे लिए एसा शासनविधान भी बनाएगा जिसके अंतर्गत हम चुनाव लड कर शासन का भार ग्रहण करेंगे। दूसरा कोई अर्थ तो हो ही नही सकता, क्योकि और किसी काम के लायक तो हमारा संगठन (कांग्रेस) है ही नही। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि सत्याग्रह की यह लडाई इसीलिए शुरू की गई है कि शांति कायम रखने का काम दूसरा करे और हम इसके बाद जो कुछ सत्ता प्राप्त कर सकें वह कर लें। इस प्रकार एक ओर तो हम ब्रिटेन की विजय में विश्वास रखते हैं और उस विजय को देखना चाहते हैं, दूसरी ओर हमारा आन्दोलन इसी मे रुकावट डाल रहा है। एक ओर हम युद्ध प्रयत्न मे अधिक से अधिक बाधा डालना चाहते हैं दूसरी ओर यह भी कहते है कि हम ब्रिटेन को परेशान नही करना चाहते। तो क्या हम चाहते हैं कि युद्ध में बाधा डालने का हमारा आन्दोलन सफल न हो। आखिर आन्दोलन तो इसी उद्देश्य से चलाया जाता है कि वह सफल हो। आन्दोलन चलाकर यह सोचना कि यह सफल न हो राजनीतिक मूढता की हद है। सिर्फ गांधीजी को खुश करने के लिए यह किया जा रहा है। हम ब्रिटेन से साफ कह देना चाहिए कि हमारी सुरक्षा और स्वतन्त्रता उसकी सुरक्षा व स्वतन्त्रता से बधी है और अगर वह हम पर विश्वास करे और ऐसे अधिकार दे कि हम अपने देशवासियो को उत्साहित कर सकें तो हम युद्ध में पूरी मदद करने को तैयार है। विश्व संकट की ऐसी स्थिति में हमें

इस दाग को खतम करना चाहिए। और नही तो ब्रिटेन के इस महान सकट म, उससे सदभाव दिखाने के लिए ही हमे ऐसा करना चाहिए। जब ब्रिटेन की हालत अच्छी थी, तब गाधीजी सदभाव की बात कहत थ। आज तो पूरा ब्रिटेन खडहर हो रहा है।"

भूलाभाई की उस समय क्या मनोदशा थी यह इससे स्पष्ट है। गाधाजी के अन्य अनेक बुद्धिवादी अनुयायियो की तरह वह भी उनके बताए रास्त पर चलत रहे, पर यह स्पष्ट है कि उसकी साथकता मे उन्ह विश्वास नही था और न वह यही मानत थे कि ऐसा करने से देश का भला होगा। आग चलकर हिन्दू मुसलमानो के बीच सद्भावना का उन्हाने जा प्रयत्न किया वह भी उनकी इस समय की विचार-धारा के ही अनुकूल था।

20 अप्रैल 1941 की अपनी डायरी म उन्होने अहमदाबाद म हुए दग पर लिखा "झूठी अफवाह पर वह शुरू हुआ बतात है पर सवाल यह है कि अफवाह उठी क्यों और कसे? निश्चय ही उसके गहरे कारण रहे होगे—आपसी वमनस्य और शिकायतें चाहे सही या गलत। उन्हे गुण्डा की करतूत या 'अग्रेजा' (पुलिस) की करामातें कहन भर से काम नही चलेगा, बल्कि उनकी तह मे जाना चाहिए। मुख्य बात यह है कि जिस अहमदाबाद ने भारत को सत्याग्रह का माग दिखाया और जो सत्याग्रहियो का गढ कहे जान वाले गुजरात की राजधानी है, वहा आज दग को रोकन के लिए सत्याग्रह के बजाय पुलिस सशस्त्र पुलिस और सना का ही माग की जा रही है। इससे स्पष्ट है कि गडबडी और अशाति को रोकन के लिए राज्य की सगठित शक्ति या बल ही एकमात्र उपाय है और उसी के सहारे राज्य शाति और व्यवस्था कायम रख सकता है। काग्रेस का सगठन यह काम नही कर सकता, यह बिल्कुल स्पष्ट है।"

21 अप्रल 1941 को इसी सबध म उन्हाने फिर लिखा 'दगा (जिसने अब हिन्दू मुस्लिम दगे का रूप ले लिया है) जारी है। आज सवेरे सुपरिण्टेण्डेण्ट जब रोज की तरह गश्त पर आए तो मेरी और उनकी बातचात हुई। सुपरिण्टेण्डेण्ट ने दगे का जो हाल बताया उस पर हमारे एक बुजुर्ग साथी ने कहा, 'हिन्दू अच्छी तरह पिटाइ कर दें तो मुसलमान दगा शुरू करने की हिम्मत नही

करेंगे।' और इस संबंध में कलकत्ता तथा दो-तीन अन्य स्थानों के उदाहरण भी दिए। सुपरिण्टण्डेण्ट ने कहा कि सिंध में हिन्दू कमजोर हैं और बुरी तरह पिटे। इस पर एक और साथी ने पहले बुजुर्ग का समर्थन करते हुए कहा, 'जहां एक बार अच्छी तरह ठुकाई हुई नहीं कि फिर मुसलमान दंगा करने की हिम्मत नहीं करेंगे।' ये उनके असली विचार हैं जो उत्तेजना में प्रकट हुए लेकिन जाहिरा वे अहिंसा की बात करते हैं।

9 मई को फिर घरवालों की ओर उनका मन गया और अपने पुत्र पुत्रवधू का विवाह तिथि पर स्नेहपूर्वक उनका स्मरण करते हुए इस बात पर संतोष अनुभव किया कि पुत्र (धीरूभाई) ने वकालत का धंधा जमा लिया है और पुत्रवधू (माधुरी) ने घर गिरस्ती सम्हाल ली है।

इसके बाद 19 मई (1941) के एक संक्षिप्त पत्र में दुनिया में हो रही घटनाओं को दृष्टि में रखते हुए भारत के स्वतंत्रता संघर्ष के बारे में विचार किया "इस संघर्ष का अन्त क्या होगा ? दुनिया में घटनाओं की पृष्ठभूमि में देखने पर यह बहुत छोटी बात मालूम पड़ती है। जैसी द्रुतगति से इस समय घटनाचक्र चल रहा है ऐसा पहले कभी नहीं था। इसका अंत क्या होगा इसका सही अंदाज कोई नहीं लगा सकता। अतः हमें वास्तविकता का ध्यान रखते हुए भविष्य के लिए तैयार रहना चाहिए।"

दुनिया में हो रही घटनाओं के ही सिलसिले में 24 जून की डायरी में भारत की स्थिति की चर्चा की और कांग्रेस के रुख को अयथार्थ बताया "युद्ध में, जो दो दिन पूर्व रूस और जर्मनी के बीच शुरू हुआ था अमरीका और इंग्लैण्ड का रूस के साथ हो जाना राजनीति में 'यथार्थवाद' का बढ़िया उदाहरण है। हमारे यहां ऐसे यथार्थवाद का अभाव है और मुझे लगता है कि अपने ढीले स्वभाव के कारण हम कभी यथार्थवादी नहीं बन पाएंगे। अमरीका और इंग्लैण्ड साफ कहते हैं कि कम्युनिज्म उन्हें पसंद नहीं फिर भी आज वे जर्मनी के विरुद्ध जिस भीषण युद्ध में ग्रस्त हैं, उसमें अपने कम्युनिज्म विरोध के कारण रूस का साथ न दे अप्रत्यक्ष रूप से जर्मनी को मदद नहीं पहुँचाना चाहते। यही राजनीति का यथार्थ है। महान

राजेन्द्र बाबू कहते थे और कृपालानी भी जो देश भर में नाच रहे हैं और इस समस्या का कोई समाधान नहीं बताते, उनका समर्थन करते हैं कि यह आन्दोलन हम अपनी आजादी के लिए चला रहे हैं और जिस तरह तथा जितने परिमाण में वह चल रहा है उस पर हम संतोष है। यह लोग जनता का इस प्रकार भ्रम में क्या टालन है। क्या अपने से कभी उन्होंने यह पूछा है कि यह सत्याग्रह है किसके विरुद्ध ? क्या नए संभावित आक्रमणकारी के विरुद्ध ? महादेव देसाई का यही कहना है और वह शांति सेना की बात करते हैं। ऐसी बात है तो अभी उसकी कोई जरूरत नहीं क्योंकि अभी के सत्याग्रह का उससे भला क्या लेना-देना ? और अगर यह अंग्रेजों के खिलाफ है तो भी इस समय इसकी कोई जरूरत नहीं। क्योंकि वह हटाया जाने वाला है और अगर वह नहीं हटता तो यह आन्दोलन और भी गलत है। किसी संघर्ष की चर्चा की जाती है और आशा की जाती है कि उसकी वजह से आजादी आसमान से टपक पड़ेगी। निश्चय ही यथार्थवाद नहीं है।

"पिलपिले दिमाग वालों के लिए, जेल में सिवा बाल बच्चों के विछोह के और कोई असुविधा नहीं। उन्हें कुछ करना धरना नहीं। गांधीजी ने उन्हें चर्खा चलाने का काम दे दिया है जिसमें सोचने विचारने की जरूरत नहीं। मगर जिसके पास दिमाग है, उसे यदि वास्तविक समस्याओं पर सोचने का अवसर न मिले तो वह कूद पड़ जाएगा।

" यथार्थवाद से संपर्क न रहने के कारण वह कुछ सोचना विचारता नहीं। सिर्फ बैठा बैठा अंगरेजों को गाली देता है। उसे यह भी नहीं दिखाई देता कि भारत में हिंदू मुसलमानों के बीच खाई बढ़ रही है। वह शांति सेना और सतयुग के सपने देखता है। गांधीजी के सत्याग्रह करने पर अंगरेजों ने कोई सदभाव नहीं दिखाया, इसलिए महात्माजी की सम्मान की रक्षा के लिए उसे जारी रखना चाहिए। देश में क्या हो रहा है दुनिया में क्या हो रहा है इससे कोई मतलब नहीं, सेवा ग्राम की जय।"

घरवालों को लिखे पत्र (26 जून) में समकालीन इतिहास का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने का जिक्र है "पिछले डच, बेल्जियन और फ्रांसीसी युद्धों की ही तरह रूस का युद्ध भी दिलचस्प है। इसलिए कृपया एक अच्छा युद्ध का नक्शा लेते आना।"

इसी दिन कांग्रेस द्वारा यथार्थ की उपेक्षा का अपनी डायरी में फिर उल्लेख किया कांग्रेस ने यथार्थ की तो बिल्कुल उपेक्षा कर दी है। यह नारा तो ठीक है कि 40 करोड़ लोगों की आजादी की मांग पूरी होने में भला कौन रुकावट डाल सकता है ? पर असली रूप में तो 40 करोड़ का बहुत छोटा हिस्सा भी आन्दोलन का साथ नहीं दे रहा। सचाई तो यह है कि कांग्रेस ने अपने प्रभाव का अतिरंजित अनुमान लगा रखा है। यह सही है कि उसकी सभाओं में लाखों की भीड़ होती है, लेकिन दो आदमी भी अपनी जेब से कुछ देने को तैयार नहीं होते और न ऐसे कार्यक्रम में ही शरीक होने को तैयार हैं, जिसमें खतरा या कष्ट सहने की आशंका हो। इसके अलावा कांग्रेस ने लोगों को बहुत ऊंची आशाएं बंधाई हैं, लेकिन कुछ करने को वे तैयार नहीं, साथ ही बातें वे बड़ी गरम करते हैं और समझौता करने को तैयार नहीं। यह बात लोगों के दिमाग में बिठाने में कांग्रेस बिल्कुल असफल रही है कि हम पराजित लोग हैं और हमारा राष्ट्र पराधीनता में ग्रस्त है। इसलिए हमें वास्तविकता का ध्यान रखना चाहिए और स्थिति का अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिए।'

जापान के युद्ध में पड़ने के बाद 31 जुलाई को लिखे पत्र में उन्होंने भारत पर उसकी आंख होने का संकेत दिया 'जापान के नए आक्रमण से अब युद्ध भारत के अधिक नजदीक आ गया है। जापान भारत और चीन पर कब्जा करने की कोशिश करेगा। वह थाईलैण्ड (स्याम) पर भी कब्जा करेगा। बर्मा उसका तात्कालिक लक्ष्य है और उसके बाद डच ईस्ट इंडीज (पूर्वी द्वीप समूह)। पश्चिम के मोर्चे का जहां तक सवाल है, पिछले दो दिनों में उसकी स्थिति काफी स्पष्ट हो गई है।"

2 अगस्त (1941) को वह मुसलमानों के प्रति कांग्रेस की नीति की निरर्थकता की आलोचना करते हैं ' मुसलमानों के साथ समझौते का इससे अच्छा अवसर नहीं हो सकता। इसके बाद लम्बे अरसे तक ऐसा अवसर नहीं मिलेगा। लेकिन हमारी इच्छा युद्ध को क्या न हो महात्माजी उसके लिए कभी तैयार न होंगे क्योंकि युद्ध में उनकी मदद के आधार पर ही ऐसा हो सकता है और यह उन्हें हर्गिज मंजूर न होगा। हिन्दू मुसलमानों की एकता को निश्चय ही वह बड़ा

महत्व देते हैं, लेकिन उन्हें समझना चाहिए कि अपने मौजूदा रुख से अपनी जिन्दगी में उन्होंने उसकी संभावना समाप्त कर दी है। जिन्ना और उन लोगों के बीच जो जाहिरा उनके समर्थक माने जाते हैं (तथा जिनका अपने अपने सूबे में बड़ा असर है) मतभेद है। वे समझौते की बात करने को रजामंद हैं, बल्कि उत्सुक हैं लेकिन हमारी तरफ से दरवाजा बन्द है। उनके (गांधीजी के) कट्टर भक्त इतने पर भी, यह अच्छी तरह जानते हुए भी कि दरवाजा हमारी तरफ से बन्द है, दोष उल्टे उन्हीं पर डालना चाहते हैं। हमारी स्थिति इस तरह सच पूछो तो दुरंगी और अनिश्चित है। बात यह है कि चुनाव जीतने के लिए कांग्रेस महात्मा जी पर अवलम्बित है और महात्माजी इसके बदले में कांग्रेस द्वारा राजनीतिक क्षेत्र में अपने आध्यात्मिक प्रयोग करना चाहते हैं। वह कांग्रेस से हट जाएं तभी इस दिशा में प्रगति संभव है। आज तो स्थिति यह है कि युद्ध के बीच कुछ नहीं किया जा सकता और युद्ध समाप्त होने पर भी कुछ नहीं, क्योंकि अंग्रेज जीते तो उनकी स्थिति अब से ज्यादा मजबूत होगी और हार गए तो क्या होगा यह कुछ कहा ही नहीं जा सकता। युद्ध से दूर रहने की इस वृत्ति से कुछ नहीं हो सकता। राजनीतिक दृष्टि से तो सौदा पटाने का यही अवसर है, लेकिन कोई आकस्मिक घटना न घटे तो कुछ समय के लिए तो कांग्रेस के लिए राजनीति मानो [illegible] गई है। यह स्थिति कब तक रहेगी, यह कहना कठिन है, यह बहुत [illegible] तक न रहे यही मानना चाहिए।"

यदि अपने प्रियजनों पर या घर द्वार पर हमला हो तो क्या बलपूर्वक उसका प्रतिरोध करना गलत है इस पर गांधीजी ने लिखा कि किसी भी हालत में बल प्रयोग गलत है। मेरी समझ में गांधीजी की भूल है। गांधीजी यह भूल जाते हैं कि उन्हें आदर्श मनुष्य नहीं साधारण मनुष्य से काम पड़ता है। पंजाब के इन लोगों ने जो प्रश्न किया था वह कोई सैद्धान्तिक प्रश्न नहीं था यह स्थिति किसी भी दिन उनके राज्य में या गाव में आ सकती है। तो वे क्या करें। यही है यथार्थ की उपेक्षा। वर्तमान स्थिति की उपेक्षा करके आदर्श स्थिति की कल्पना या इच्छा करना यथार्थवादी नीति नहीं। हम यह कहने में संकोच न होना चाहिए कि गांधी जी की नीति गलत है। उनकी नीति या सिद्धान्त आगे किसी समय सही हो सकते हैं, पर आज की स्थिति में नहीं। आज जो स्थिति है उसमें हमारा ही विचार ठीक है और गांधीजी गलती पर है, क्योंकि प्रकृति के प्रत्यक्ष और महत्वपूर्ण नियम सापेक्षता के सिद्धांत की उन्होंने उपेक्षा की है।'

10 अगस्त के पत्र में उन दिनों पढ़ी 'गुडबाई मि० चिप्स' पुस्तक का उल्लेख कर बताया कि वह ऐसी पुस्तक है जिसे मानवता की भावना रखने वाला कोई व्यक्ति पढ़कर भूल नहीं सकता।

पारसियों के नववर्ष दिवस पर (5 सितम्बर 1941) व्यंग्य में लिखा 'सारे दिन डाक्टर को सत्याग्रहियों ने बधाई और शुभकामना दी और जवाब में डाक्टर ने उनकी रिहाई की कामना की। अर्थात ब्रिटिश सरकार की कृपा से जेल से छुटकारा।" महायुद्ध की दूसरी वर्ष तिथि पर (3 सितम्बर को) आकाशवाणी से हुए वाइसराय के भाषण का यह अंश उन्होंने उद्धत किया "हमारे बीच ऐसे भी लोग हैं जो हल को हाथ लगाये बगैर ही (यानी युद्ध में योगदान के बिना ही) विजय रूपी फसल में हाथ बटाना चाहते हैं।" आगे कहा "रामगढ़ कांग्रेस से पहले केन्द्रीय असेम्बली में हाजिरी लगवाने के लिए हम दिल्ली गए थे, जिससे कि हम सदस्यता से हटाये न जा सके। यह ठीक ही हुआ, क्योंकि ऐसा न करने पर सदस्यता समाप्त हो जाने से अक्टूबर नवम्बर में फाइनेंस बिल अस्वीकृत कराने हम वहां न जा पाते। (और) दिल्ली में रहते हुए सर जगदीश प्रसाद से मैं कई बार मिला। उनका यह विचार था कि शासन में

जो भी थोड़े से अधिकार के स्थान हैं उन्हें छोड़ना नहीं चाहिए। इन्हीं के बल पर हम और ले सकेंगे। उन्हीं के कहने पर मैं मि० लथवेट से मिलने को सहमत हुआ और उन्हें अपनी (कांग्रेस की—जैसा कि मैं समझता था) स्थिति स्पष्ट की। मैंने उन्हें बताया कि सत्याग्रही समझौते की बात करने से कभी इन्कार नहीं कर सकता। उन्होंने भी माना कि सार्वजनिक रूप से हम (कांग्रेस) स्वतन्त्रता की मांग से पीछे नहीं हट सकते। उस वक्त तक सरकार से हमारा थोड़ा बहुत संपर्क कायम था, इसलिए गतिरोध (जो 1935 के शासन विधान के केन्द्रीय सरकार सम्बन्धी भाग को अस्वीकृत करके हमने पैदा कर रखा था) और भावी संविधान के सम्बन्ध में कुछ ऐसे सभ्रान्त व्यक्तियों से मैंने बातचीत की जो ऐसे मामलों में असर रखते थे। सर मारिस गायर से कई घंटे इस बारे में विचार विनिमय हुआ कि क्या रास्ता निकाला जा सकता है और विधान में क्या परिवर्तन सम्भव हैं। उन्होंने कहा, अंग्रेज लोग हमारे साथ इस बारे में कोई रास्ता निकालने के लिए बातचीत करने को तैयार हैं, बशर्ते कि 'नया विधान' या नयी व्यवस्था मौजूदा विधान से बिल्कुल ही भिन्न न हो।"

भूलाभाई ने जेल में 1940-41 के बीच जो डायरी लिखी थी, उसके इन उदाहरणों से उस समय की उनकी मनोदशा पर प्रकाश पड़ता है और पता चलता है कि कैसी व्यग्रता से उनका दिमाग काम कर रहा था। उससे हमें एक ऐसे आदमी की झांकी मिलती है जो आत्मनिरीक्षण द्वारा अपनी कमियों को सदा देखना ही नहीं बल्कि उन्हें दूर करने के लिए बराबर प्रयत्नशील रहता है। देश की समस्याओं पर उनके विचारों की भी इससे झांकी मिलती है। उनका दृष्टिकोण तटस्थ था, जिसके कारण वह सामान्य कांग्रेसजनों से अलग दिखाई पड़ते थे। उनके कुछ विचार तो कांग्रेस वालों के सामान्य स्तर से सर्वथा भिन्न थे। सम्भवतः इसी कारण जिन लोगों के साथ उन्होंने देश की स्वाधीनता के लिए काम किया उन्हीं से बाद में उन्हें अच्छा व्यवहार नहीं मिला।

— — —

पिछले आंदोलन में सजा पाने पर भूलाभाई नासिक जेल में रखे गए थे, उस समय वहां के सुपरिन्टेण्डेण्ट भंडारी थे, वही अब यरवदा जेल आ गए थे, जहां

इस बार भूलाभाई को रखा गया। वह भूलाभाई का विशेष ध्यान रखते थे। उन्हीं के प्रयत्न से सत्याग्रही कैदियों को रात में ताले में बंद करने जैसे कुछ तकलीफदेह नियम उठा लिए गए थे। उन्होंने भूलाभाई के बारे में बताया है कि उन्होंने जेल के नियम भंग करने और अधिकारियों की हुक्म उदूली करने पर कैदियों को कोड़े न लगाने का उनसे अनुरोध किया था।

सरकार ने 16 सितम्बर 1941 को बीमारी के कारण भूलाभाई को जेल से रिहा कर दिया। इस विषय की सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया— "श्री भूलाभाई देसाई का स्वास्थ्य ठीक नहीं है और बम्बई सरकार को (डाक्टरों द्वारा) मिली सलाह के अनुसार जेल में उसके और बिगड़ने की संभावना है। इसलिए डाक्टरी सलाह पर सरकार ने उन्हें जेल से रिहा करने का आदेश दिया है।" ऐसा मालूम पड़ता है कि कुछ समय तो जेल में ही उनका इलाज होता रहा, उसके बाद पूना के सासून अस्पताल में उन्हें इलाज के लिए रखा गया। वहां दो बार डा० मोदी ने उनके स्वास्थ्य की परीक्षा कर सिविल सर्जन को रिपोर्ट दी। इसके बाद 16 सितम्बर को जेल सुपरिटेण्डेण्ट सासून अस्पताल आए और वहीं उनकी रिहाई का हुक्म दिया। उस समय भूलाभाई का स्वास्थ्य इस काबिल नहीं था कि बंबई का सफर कर सकते इसलिए बंबई आने लायक होने तक उन्हें अस्पताल में ही रहने की सलाह दी गई। एसोशिएटेड प्रेस के प्रतिनिधि को डा० मोदी ने बताया कि भूलाभाई का स्वास्थ्य इस समय ऐसा नहीं कि उन्हें बंबई ले जाया जा सके। उन्हें पूर्ण विश्राम की आवश्यकता बताते हुए उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि उनसे मुलाकात और बातचीत जहां तक हो कम से कम करनी चाहिए। उन्होंने कहा, मैंने उन्हें जब पहली बार देखा था तब से कुछ सुधार तो है फिर भी कम से कम एक सप्ताह उन्हें अस्पताल से नहीं हटाना चाहिए। बाद में बंबई लौटने पर वह पुनः अपना इलाज कराते रहे। पर बंबई में डा० मोदी के पास पहुंचने वाले पत्रों के अनुसार अक्टूबर 1941 तक भी वह पूरी तरह रोग मुक्त नहीं हुए थे।

अब हम उन घटनाओं पर आएं जिनके कारण अंत में कांग्रेस को भारत छोड़ो प्रस्ताव पास करना पड़ा। वाइसराय की कार्यकारी परिषद के विस्तार

और रक्षा समिति (एडवाइजरी डिफेंस कौंसिल) की स्थापना से भारत को सन्तोष नहीं हुआ। तब 1941 के अगस्त में युद्ध के उद्देश्यों के बारे में ब्रिटेन और अमरीका का वक्तव्य निकला जो अटलांटिक चार्टर के नाम से मशहूर है। उसमें अन्य बातों के साथ यह भी कहा गया कि दोनों राष्ट्र "सभी देशों की जनता के अपनी इच्छानुसार अपना शासन करने के अधिकार को मानते हैं, और जिन राष्ट्रों से ऐसे मौलिक अधिकार बलपूर्वक छीन लिए गए हैं उनके सार्वभौम अधिकार और स्वशासन की फिर से स्थापना करना चाहते हैं।" कुछ भारतवासियों को इससे प्रसन्नता हुई और उन्हें आशा हुई कि इसके फलस्वरूप भारत के प्रति ब्रिटेन की नीति में उदारतापूर्ण परिवर्तन होगा। लेकिन इस घोषणा के कुछ ही समय बाद चर्चिल ने ब्रिटिश पार्लियामेण्ट (हाउस आफ कामंस) में ऐलान किया कि 'अगस्त प्रस्तावों में निर्दिष्ट (भारत के प्रति) ब्रिटिश नीति यद्यपि इस (अटलांटिक) घोषणा के अनुरूप ही है, फिर भी मुझे यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि अटलांटिक घोषणा भारत पर लागू नहीं होती।" इस प्रकार सिवा इसके कि दिसम्बर 1941 को जवाहरलाल नेहरू और मौलाना आजाद सहित सत्याग्रही कैदियों को जेलों से रिहा कर दिया गया, भारत की मांग पूरी करने की दिशा में कोई कदम नहीं उठाया गया।

लेकिन 7 दिसम्बर 1941 को जब जापान युद्ध में शामिल हो गया तो ब्रिटेन की दृष्टि से ही नहीं बल्कि स्वयं कांग्रेस की दृष्टि से भी स्थिति बिल्कुल बदल गई। सत्याग्रहियों की रिहाई जापान के युद्ध में आने के कुछ ही पहले हुई थी। जापान के युद्ध में आने पर 7 दिसम्बर के कुछ बाद वाइसराय ने भारत वासियों से परिवर्तित स्थिति को देखते हुए संयुक्त मोर्चा बनाने की अपील की। मगर जापान के युद्ध में आने से भारतीय जनता के मन में भारत पर जापानी हमले का डर या और किसी वजह से ब्रिटेन का साथ देने की भावना पैदा हुई हो—ऐसा नहीं मालूम पड़ता।

कांग्रेस कार्य समिति ने इस पर यह रुख लिया कि भारत पर जापानी हमला होने की स्थिति में लोगों की मदद और सेवा करने के लिए गैर-सरकारी रूप में एक स्वतंत्र संगठन बनाना चाहिए। मुस्लिम लीग का रुख तो कांग्रेस से भी

अधिक उग्र था क्योंकि उसने भारत पर जापानी हमले के परिणामों की उपेक्षा करते हुए पाकिस्तान की अपनी माग ही बुलद की। नरम दल वालो ने अलबत्ता फरवरी 1942 मे हुए अपने लिबरल फेडरेशन म अधिक यथार्थवादी रुख अपनाया। सर तजबहादुर सप्रू न 15 निदलो नताओ की ओर से तार द्वारा चर्चिल से अनुरोध किया कोई ऐसा कदम उठाना चाहिए जिससे भारत के दिल पर असर हो और सारा राष्ट्र तयार हो।" उन्होने नरम दल के इस कार्यक्रम को स्वीकार करन का सुझाव दिया कि ' भारत म ऐसी राष्ट्रीय सरकार कायम की जाए जिसके सभी सदस्य भारतीय हो और वह सीधी सम्राट के प्रति जिम्मेदार रहे। इसके अलावा अतर्राष्ट्रीय और साम्राज्य के आतरिक सबधो म भारत का दर्जा बढाया जाए।" लेकिन जापानी सकट के बावजूद ब्रिटिश राजनीतिज्ञ भारत के नरम दल की बात पर भी ध्यान देने को तयार नही थे। वे तो भारत की विभिन्न जातियो के बीच भेदभाव का ही राग अलापते रहे, जो वस्तुत उन्ही की देन थे और जिसे उन्होने जान बूझकर भडकाया था। भारत मत्री एमरी ने घोषणा की—"आपसी समझौते के अभाव म भारत म हम उसी तरह कोई शासन विधान लागू नही कर सकते जिस तरह कि यूरोप पर हम कोई विधान नही लाद सकते। तज बहादुर सप्रू के तार पर तो दो महीने से ज्यादा समय तक ध्यान ही नही दिया गया। मार्च 1942 म जब रगून पर जापान का कब्जा हो गया तब जाकर कहीं चर्चिल ने यह घोषणा की कि ब्रिटिश मत्रिमडल न सर स्टफर्ड क्रिप्स को, जो ब्रिटिश मत्रिमडल मे तुरत ही शामिल हुए थे, भारत भेजने का निश्चय किया है। यह अब रहस्य नही रह गया है जो अमरीकी परराष्ट्र विभाग के गुप्त कागजपत्रो से भी प्रकट हो चुका है कि अमरीकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट, 1941 के मध्य से ही ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाल रहे थे कि मित्रराष्ट्रो की सफलता के लिए भारतीय समस्या का यथा सभव जल्दी से जल्दी हल करना चाहिए। चर्चिल बहुत समय तक इसकी उपेक्षा करते रहे, लेकिन मार्च 1942 मे उन्हे बाध्य होकर इस दिशा म कदम उठाना ही पडा। भारत मे क्रिप्स के आने का मूल कारण यही था। उसकी सफलता के लिए लगभग उसी समय राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने विशेष हिदायतो के साथ अपना एक विशेष प्रतिनिधि भी नई दिल्ली भेजा था।

क्रिप्स प्रस्ताव और उस पर कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के रुख के विस्तार में जाने की हमें जरूरत नहीं। अलबत्ता यह बताना होगा कि कांग्रेस अध्यक्ष अबुल कलाम आजाद ने जापानी हमले के खतरे की वजह से कांग्रेस की ओर से जिम्मेदारी ग्रहण करने की रजामंदी जाहिर की, बशर्ते जो सरकार बने वह सचमुच राष्ट्रीय हो। अगर राष्ट्रीय सरकार वाइसराय की कार्यकारी परिषद का ही परिवर्द्धित रूप होने के बजाय पूर्णदायित्वयुक्त मंत्रिमंडल होता, वह भविष्य के सारे प्रश्नों को फिलहाल स्थगित करने के लिए भी तैयार थे। लेकिन क्रिप्स इसे स्वीकार नहीं कर सके। आम धारणा उस समय यही थी कि क्रिप्स स्वयं तो इस मांग से सहमत थे, पर चर्चिल की सहमति प्राप्त नहीं कर सके। राष्ट्रपति रूजवेल्ट के विशेष प्रतिनिधि ने उन्हें इस संबंध में जो विवरण भेजा उससे भी बाद में इसी बात की पुष्टि हुई। इतने पर भी सरकारी तौर पर ब्रिटिश सरकार द्वारा यही कहा गया कि गांधी के शांतिवादी दृष्टिकोण के कारण क्रिप्स मिशन असफल रहा।

भूलाभाई उस समय कांग्रेस कार्य समिति के सदस्य नहीं थे, फिर भी क्रिप्स से बातचीत में उनका योग रहा। मौ० आजाद ने अपनी पुस्तक 'इंडिया विन्स फ्रीडम' में इस संबंध में लिखा है 'कार्य समिति ने निश्चय किया था कि (क्रिप्स मिशन से) बातचीत कांग्रेस अध्यक्ष को ही करनी चाहिए। इसलिए मैंने फैसला किया कि अन्य सदस्यों का उनसे अलग बातचीत करना ठीक नहीं होगा, लेकिन किसी कारणवश क्रिप्स किसी से मिलना चाहेंगे तो उसकी व्यवस्था अवश्य की जाएगी। क्रिप्स ने भूलाभाई देसाई से मिलने की विशेष उत्सुकता जाहिर की। उन्होंने बताया कि अपनी पिछली भारत यात्रा में उन्हीं के यहां वह ठहरे थे और जो खादी का सूट वह उस समय पहने हुए थे उसकी ओर इशारा कर मुस्कराते हुए कहा, "ये जो कपड़े मैं पहने हुए हूं वे भी भूलाभाई देसाई की भेंट हैं। तब मैंने भूलाभाई देसाई को उनसे मिलने को कहा और मेरे कहने पर उन्होंने सर स्टैफर्ड क्रिप्स से मिलकर बातचीत भी की।'

क्रिप्स मिशन की विफलता का दोष गांधीजी के मत्थे मढ़ने में ब्रिटिश सरकार ने स्पष्ट रूप से झूठ का सहारा लिया। इससे गांधीजी का क्षुब्ध होना

स्वाभाविक था क्योंकि वह तो वस्तुत इस बात के लिए सबसे अधिक इच्छुक थे कि कठिनाई के वक्त अंग्रेजों को परेशान न किया जाए। क्रिप्स मिशन की विफलता के बारे में ब्रिटिश सरकार की इस बात पर कहा जाता है कि गांधीजी की उक्ति थी—' यह सब झूठी बकवास है।

क्रिप्स मिशन की विफलता के बाद अंग्रेजों के प्रति गांधीजी का रुख बदल गया। उपर्युक्त घटना के कुछ समय बाद ही उन्होंने खुलेआम कहा कि ब्रिटेन और भारत दोनों का हित इसी में है 'वक्त रहते ब्रिटेन शांति से भारत से हट जाए।" उनके इसी रुख का परिणाम भारत छोडो प्रस्ताव और उसके बाद हुआ आंदोलन है। 2 मई को और उसके बाद फिर 10 मई को उन्होंने (गांधीजी ने) लिखा समय आ गया है जब ब्रिटेन की दासता से भारत को सर्वथा मुक्त हो जाना चाहिए। इसके लिए युद्ध की समाप्ति का इंतजार करने की जरूरत नहीं बल्कि युद्ध के बीच ही ऐसा कर डालना चाहिए। इसी महान कार्य की पूर्ति के लिए मैं अपनी शक्ति लगाऊंगा भारत में अंग्रेजों की मौजूदगी तो जापान को भारत पर आक्रमण का निमंत्रण है। उनके यहां से चले जाने पर इस खतरे का खात्मा हो जाएगा। मान लो कि ऐसा न हो, तो भी पराधीनता से मुक्त भारत कहीं अच्छी तरह आक्रमण का मुकाबला कर सकेगा। विशुद्ध असहयोग तब अपना पूरा चमत्कार दिखाएगा।" कुछ दिन बाद तो वह इससे भी आगे बढ़ गए। उन्होंने कहा 'भारत को ईश्वर के भरोसे छोडकर यहां से चले जाओ। अर्थात अराजकता की हालत में हम रहने दो। अराजकता में यही तो होगा कि आपस में झगडे फसाद होंगे और लूट खसोट मचेगी। लेकिन यह अराजकता कुछ ही समय तक रहेगी और उससे ही फिर भारत का सच्चा रूप सामने आएगा सच्चे भारत का निर्माण होगा।" गांधीजी का यह विश्वास सचमुच आश्चर्यजनक मालूम पड़ता है कि अंग्रेजों के भारत से हट जाने पर कुछ झगड़े फसाद के बाद ही भारत में उत्तरदायित्व की भावना पैदा होगी, जिसके फलस्वरूप विविध सम्प्रदायों में वाजिब समझौता होकर सौहार्द कायम होगा और शांति व अहिंसा कायम होगी।

कहते हैं कि मौलाना आज़ाद [illegible] स्पष्ट [illegible] जापानी सेना ने अगर हमारे देश पर आक्रमण किया [illegible] के कारण नहीं बल्कि अंग्रेजों की मौजूदगी के कारण [illegible]। मेरा विश्वास है कि अंग्रेज तत्काल भारत छोड़कर चले [illegible] फिर [illegible] भारत पर आक्रमण करने की कोई वजह नहीं रह जायेगी।' स्पष्ट [illegible] कांग्रेसजनों के नहीं [illegible] और [illegible] मौलाना आज़ाद इस मामले में गांधीजी से [illegible] यह [illegible]।

आखिर जब कांग्रेस-कार्यसमिति में मामला आया तो वहाँ मतभेद खुलकर सामने आए। लेकिन ऐसा लगता है कि [illegible] के बाद जो लोग गांधीजी के विचारों से [illegible] भी उनसे प्रभावित हो गए। गांधीजी ने सामूहिक अहिंसात्मक आन्दोलन का प्रतिपादन किया। [illegible] के अनुसार 'गांधीजी ने स्पष्ट कहा है कि [illegible] की तरह [illegible] अहिंसा के आधार पर [illegible] जायेगा। [illegible] जवाहरलाल ने बताया कि गांधीजी के दिमाग में जो कुछ है वह अहिंसात्मक होते हुए भी [illegible] होगा। गांधीजी ने इस उक्ति को पसन्द किया और [illegible] अहिंसात्मक विद्रोह की ही बात की।' इस प्रकार 24 जुलाई 1942 को [illegible] कार्यसमिति में भारत छोड़ो प्रस्ताव पास हुआ। [illegible] के अनुसार कार्यसमिति के प्रस्ताव और उसमें प्रस्तावित [illegible] के लिए गांधीजी ने अपना प्रतिनिधि [illegible] कार्यसमिति के अधिकांश सदस्यों का [illegible] कारण मिलने से इनकार कर दिया कि [illegible] उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि युद्ध [illegible] हिंसात्मक हो या अहिंसात्मक, [illegible] तरह की बात करता है उससे मिलने [illegible] ही नहीं उठता।

बाद कुछ मामूली संशोधनों के साथ भारी बहुमत से उसे स्वीकार कर लिया गया।

भूलाभाई का, जो 'उस समय' कार्य समिति के सदस्य नहीं थे, इस प्रस्ताव पर क्या रुख था ? इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहने की स्थिति में हम नहीं हैं पर जेल में जो उनकी मनोदशा थी उसे देखते हुए लगता है कि उन्होंने उसे बिल्कुल नापसंद ही किया होगा। विद्रोह के साथ होने वाले गंभीर और हिंसात्मक उपद्रवों की आशंका और उसके फलस्वरूप होने वाले क्रूर दमन की कल्पना से वह उसके विरुद्ध ही रहे होंगे।

कांग्रेस की हलचलों पर सरकार की कैसी कड़ी नजर थी और उनके लिए उसकी कैसी तैयारी थी, यह इसी से स्पष्ट है कि कांग्रेस महासमिति द्वारा 8 अगस्त को भारत छोड़ो प्रस्ताव स्वीकृत होने के तुरंत बाद सरकारी वक्तव्य सामने आया, जिसमें कांग्रेस के प्रस्ताव पर खेद व्यक्त करते हुए उसकी चुनौती का सामना करने का दृढ़ निश्चय घोषित किया गया। सरकारी प्रस्ताव के अंत में कहा गया "भारतीय जनता के प्रति अपने दायित्व और अपने मित्र राष्ट्रों के प्रति अपने कर्तव्य की दृष्टि से भारत सरकार ऐसी किसी भी मांग पर विचार नहीं कर सकती जिसे स्वीकार करने से भारत में गड़बड़ी और अराजकता फैले और उसके फलस्वरूप मानव स्वतंत्रता के समान उद्देश्य की पूर्ति में भारत के प्रयत्नों में रुकावट हो।"

सरकार बड़ी कार्यवाही के लिए तैयार बैठी थी, इसका पता अगले सवेरे ही लग गया—'रविवार 9 अगस्त को गांधीजी रोज की तरह सवेरे 4 बजे प्रार्थना के लिए उठे। गिरफ्तारी की अफवाह चारों तरफ फैल रही थी। संभवतः उन्हें ध्यान में रखते हुए महादेव देसाई से उन्होंने कहा कि 'रात को महासमिति में मैंने जैसा भाषण दिया उसके बाद ऐसा नहीं लगता कि मुझे गिरफ्तार किया जायगा। लेकिन प्रार्थना के बाद वह नित्यकर्म को जा ही रहे थे कि खबर आई, पुलिस कमिश्नर बिड़ला हाउस के फाटक पर खड़े हैं और गांधीजी के सेक्रेटरी से मिलना चाहते हैं। उनके पास भारत रक्षा कानून के मातहत गांधीजी महादेव देसाई और मीराबेन की गिरफ्तारी और

नजरबन्दी के वारण्ट थे। कस्तूरबा गांधी और प्यारेलाल के लिए वारण्ट नहीं थे। पुलिस कमिश्नर ने कहा कि उसी रूप में वे भी गांधीजी के साथ चलना चाहें तो मैं उन्हें भी ले चलने को तैयार हूं पर उन्होंने न जाने का ही निश्चय किया। पुलिस ने गांधीजी और उनके साथियों को तैयारी के लिए आधे घण्टे का समय दिया। गांधीजी ने रोज की तरह बकरी का दूध और फलों के रस का कलेवा किया, उनके प्रिय भजन "वैष्णव जन तो तेण कहिए" की संगत हुई और कुरान की आयतें भी पढ़ी गईं। इसके बाद गीता, आश्रम भजनावली, कुरान, उर्दू के कायदे और अपनी धनुष तकली के साथ वे पुलिस के साथ हो लिए।'

गांधीजी ने पुलिस के साथ जाने से पहले राष्ट्र के लिए प्यारेलाल को यह संदेश दिया "स्वतन्त्रता के प्रत्येक अहिंसक सैनिक को चाहिए कि वह कागज या कपड़े के टुकड़े पर 'करेंगे या मरेंगे' का नारा अंकित कर उसे अपने कपड़ों में लगा ले, जिससे सत्याग्रह करते हुए अगर उसकी मृत्यु हो जाए तो उस चिह्न से पता लग सके कि वह उन लोगों में से नहीं है जो अहिंसा को नहीं मानते।"

अहिंसा और सत्याग्रह के महान पुजारी का यह कितना जबरदस्त आशीर्वाद था, यद्यपि बाद की घटनाएं कुछ ऐसी हुईं कि स्थिति इससे उलटी ही रही।

आजाद उस समय भूलाभाई के ही यहां ठहरे हुए थे। उन्होंने स्वयं जो वर्णन किया है उससे अधिकारियों के रुख और इरादों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उन्होंने लिखा है

"बंबई जाने पर मैं आमतौर पर स्व० भूलाभाई देसाई के घर ही ठहरा करता था। इस समय भी मैंने वैसा ही किया। वह (भूलाभाई) उस वक्त बीमार थे और कुछ समय से उनका स्वास्थ्य खराब चल रहा था। इसलिए कांग्रेस महासमिति की बैठक के बाद जब मैं देर से रात को घर लौटा तो उन्हें अपने इन्तजार में जागते हुए पाकर मुझे थोड़ा अचरज हुआ। रात काफी बीत चुकी थी और मैं थका हुआ था। मेरा ख्याल था कि वह सो गए होंगे। मैंने कहा आपको इतनी रात तक जागकर इन्तजार नहीं करना चाहिए, यह ठीक बात नहीं। लेकिन उस पर

---

* 'महात्मा' से (खंड 6, पृष्ठ 216)

ध्यान न दे उन्होने बताया कि मेरा एक रिश्तेदार मुहम्मद ताहिर, जो बबई में तिजारत करता है मुझसे मिलने आया था। उसने बहुत देर तक मेरा इन्तजार किया और तब तक भी मेरे न आने पर उनके पास मेरे लिए एक सदेश छोड गया है। मुहम्मद ताहिर का एक दोस्त बबई की पुलिस मे काम करता था, उससे उसे पता चला था कि दिन निकलते निकलते सभी काग्रेस नेता गिरफ्तार कर लिए जाएगे। ताहिर के दोस्त ने यह भी कहा था कि उसे निश्चित तौर पर तो नही मालूम पर खबर है कि हमे भारत से बाहर सभवत दक्षिण अफ्रीका भेजा जाएगा।

'कलकत्ता से रवाना होने के पहले, वहा भी मैंने ऐसी अफवाह सुनी थी। बाद मे मुझे मालूम हुआ कि अफवाह निराधार नही थी। सरकार ने हमारी गिरफ्तारी का निर्णय करते वक्त यह भी सोचा था कि देश मे ही हम रखना राजनीतिक दूरदर्शिता नही होगी। दरअसल दक्षिण अफ्रीका की सरकार से इस बारे मे पूछा भी गया था। जरूर ऐन वक्त पर कोई रुकावट खडी हो गई होगी, जिसके कारण बाद मे वह निर्णय बदलना पडा। जल्दी ही हम इस बात का भी पता लग गया कि सरकार ने गाधीजी को पूना मे और हम सबको अहमदनगर के किले मे नजरबद रखने का निश्चय किया है।

'भूलाभाई इस खबर से बडे विचलित हुए थे, इसीलिए मेरा इन्तजार कर रहे थे। मैं उस वक्त बहुत थका हुआ था और ऐसी अफवाहो पर ध्यान देने की मनोदशा नही थी। भूलाभाई से मैंने कहा कि खबर सच हो तो आजादी के कुछ ही घण्टे मेरे पास हैं अच्छा हो कि जल्दी से खाना खाकर सोने चला जाऊ जिससे सवेरे थकावट न हो। ऐसी अफवाहो पर अटकल लगाते रहने के बजाय आजादी के इन कुछ घण्टो मे सोकर आराम कर लेना बेहतर है। भूलाभाई इससे सहमत हुए और जल्दी ही मैं सो गया ।

"(बडे सवेरे) मुझे लगा कि कोई मेरे पैरों को छू रहा है। आखें खोलीं तो भूलाभाई के लडके धीरूभाई देसाई को हाथ मे एक कागज लिए खडा पाया। धीरूभाई के कहने से पहले ही मैं जान गया कि वह वारण्ट है जिसे लेकर पुलिस वाले

मरी गिरफ्तारी के लिए आए है । धीरूभाई न बताया कि डिप्टी कमिश्नर बरामदे म बठे इतजार कर रह हैं । मैंने धीरूभाई से कहलवाया कि तयार होकर थोडी ही देर म आता हू ।

"जल्दी स नहा धोकर मैंने कपडे पहन । साथ ही मुहम्मद अजमलखा को, जो मेरे प्राइवेट सेक्रेटरी का काम कर रहे थे जरूरी हिदायतें दी । उसके बाद बरामदे मे चला गया । वहा भूलाभाई और उनकी पुत्रवधू डिप्टी कमिश्नर के साथ बातचीत कर रहे थे । मैंने हसकर भूलाभाई से कहा कि हमारे दोस्त न कल शाम जो खबर दी थी वह सही निकली । इसके बाद डिप्टी कमिश्नर की तरफ मुखातिब होकर कहा 'मैं तयार हू ।' उस वक्त सवेरे के 5 बजे थे ।"

सरकार ने कांग्रेस के मुकाबले की निश्चय ही पूरी तयारी कर रखी थी । कुछ ही दिनो मे शायद ही कोई प्रमुख कांग्रेसी जेल से बाहर रह गया हो । कांग्रेस महासमिति और सीमा प्रान्त की कमेटी को छोड सभी प्रातीय कांग्रेस कमेटियो का गरकानूनी करार द दिया गया । इलाहाबाद स्थित कांग्रेस क प्रधान कार्यालय को पुलिस न अपन कब्ज म ले लिया और कांग्रेस का रुपया-पैसा सब जब्त कर लिया । आ दोलन सबधी खबरो और उनकी आलोचनाओ पर इतना सख्त नियत्रण किया गया कि गाधीजी क 'हरिजन' और अय कई अखबारो को प्रकाशन ब द कर दना पडा ।

इतन पर भी यह कहना ही पडेगा कि यदि एसी सख्त और तज कारवाई के द्वारा सरकार का उद्देश्य लोगो म आतक फलाना और कांग्रेस सबधी सभी प्रवृत्तियो को कुचलने का था, तो इसमे वह सवथा विफल रही । कांग्रेस नेताओ की गिरफ्तारी से लोगो मे उत्तेजना फली । लेकिन उ ह नियत्रण म रखन और रास्ता दिखान वाला कोई नही रहा । नतीजा यह हुआ कि गाधीजी और उनके अनुयाइयों के जेल मे बद कर दिए जाने से अहिंसा के सिद्धा त का—जिस रूप म कि व उस समझत और उसका प्रतिपादन करते थे—खात्मा हो गया । जवाहरलाल नेहरू न खेदपूवक यह स्वीकार किया है कि "अहिंसा का जो पाठ बीस वष से अधिक समय स लोगो को पढाया जा रहा था उस उ होन बिल्कुल भुला दिया ।" इसमे शक नहीं

कि शुरुआत हड़ताल और ऐसे प्रदर्शनों से ही हुई जो हिंसात्मक नहीं थे। लेकिन अधिकारियों ने उन्हें गैरकानूनी घोषित कर दिया और उन्हें रोकने के लिए लाठी और गोलियों का खुलकर प्रयोग किया। नतीजा यह हुआ कि लाचार हो लोगों ने हिंसा का सहारा लिया। फिर तो देश भर में सरकार को ऐसे विद्रोह का सामना करना पड़ा, जिसने सशस्त्र न होते हुए भी हिंसात्मक रूप ले लिया। यह ऐसा विद्रोह था जैसा 1857 के विद्रोह के बाद शायद ही देखने में आया हो।

उस समय की घटनाओं के विस्तार में जाना यहां अनावश्यक है, इतना कहना ही काफी होगा कि वह भारतीय जनता में व्याप्त क्रान्तिकारी भावना का ऐसा उफान था, जो लगभग सारे देश में मुख्यतः हिंसात्मक घटनाओं के रूप में प्रकट हुआ। बंगाल में तथा अन्यत्र अनेक स्थानों पर आन्दोलनकारियों ने स्थानीय तथा अन्य सरकारी अधिकारियों को बन्दी बना कर समानान्तर सरकारें कायम करने की कोशिश की। बदले में सरकारी कार्रवाई तो इससे भी तीव्र और हिंसात्मक थी। बलिया और मेदिनीपुर में खास तौर पर जो जुल्म ढाए गए उसकी तो बात ही क्या, पर वसे भी लाठी प्रहार, कोड़ों की मार, गोलियों से निशानेबाजी, कैद, लूट खसोट, आगजनी, बलात्कार, तरह-तरह के बर्बर तरीकों से लोगों को सताना और सामूहिक जुर्माने (जो ज्यादातर हिन्दुओं पर किए गए) रोजमर्रा की बात हो गई थी। 1942 के नवम्बर में कांग्रेस महासमिति द्वारा प्रकाशित एक वक्तव्य में बताया गया कि गांवों को जलाना और लूटना, सामूहिक रूप से बलात्कार और लूट पाट मशीनगनों से ही नहीं, बल्कि हवाई जहाजों से गोलियों की वर्षा रोजमर्रा की बातें हैं। 1942 के उपद्रवों के सिलसिले में पुलिस और फौज की गोलियों से हताहत होने वालों की संख्या सरकारी अनुमान के अनुसार 1 028 मरे और 3 200 घायल थी। यह अनुमान वास्तविकता से बहुत कम है। हताहतों की सही संख्या निश्चय ही बहुत ज्यादा होगी, क्योंकि सरकारी तौर पर ही बताया गया है कि कम से कम 538 अवसरों पर गोलाबारी की गयी। यही नहीं उसके अलावा भी चलती फिरती लारियों से भी पुलिस या फौज ने लोगों को गोलियां चलाकर मारा। ऐसी स्थिति में सही संख्या का तो मोटा अन्दाज लगाना भी मुश्किल है। आम लोगों के अनुमान से तो मरने वालों की संख्या 25,000 से

10

गतिरोध और देसाई-लियाकत समझौता

भारत छोड़ो प्रस्ताव के बाद—अगस्त 1942 से जून 1945 तक का, कोई तीन साल का काल—कांग्रेस के लिए बड़ा अनिश्चय और अंधकारपूर्ण रहा। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास के अनुसार 60,000 से अधिक व्यक्ति तो 1942 के अंत तक ही गिरफ्तार किए जा चुके थे। 26,000 को मुकदमा चलाकर सजा दी गई और 18,000 व्यक्ति भारत रक्षा नियमों (डिफेंस ऑफ इण्डिया रूल्स) के मातहत नजरबन्द किए गए। इसके अलावा कांग्रेस के हजारों कार्यकर्ता पुलिस की आंखों में धूल झोंककर लापता हो गए थे और गुप्त आन्दोलन चला रहे थे।

इस बीच गांधीजी ने वाइसराय, होम मेम्बर और भारत सरकार के सेक्रेटरी से पत्र-व्यवहार बराबर जारी रखा। अहिंसा पर और कांग्रेस महासमिति की बैठक में 7 और 8 अगस्त 1942 को उन्होंने जो रुख लिया था, उसी पर वह इस पत्र व्यवहार में जोर देते रहे। 29 जनवरी, 1943 को उन्होंने उपवास शुरू करने के अपने निश्चय की वाइसराय को सूचना दी। अपने पत्र में उन्होंने इस बात की शिकायत की कि कांग्रेस के दृष्टिकोण को बिल्कुल गलत समझा गया है। उन्होंने सरकार के दमन की भी निन्दा की। उन्होंने लिखा, मैं इसी हालत में यह सोचे बिना नहीं रह सकता कि "खाद्य की कमी के कारण देश में लाखों गरीबों को जो मुसीबत उठानी पड़ रही है, अगर यहां जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी वास्तविक राष्ट्रीय सरकार होती तो वह बिल्कुल दूर न होती तो भी बहुत हद तक दूर अवश्य हो जाती। मैं अगर इसका कोई उपाय नहीं कर पाता और लोगों को

म कहा गया 'हमम से कुछ लोगो की हाल म गाधीजी से जो बातचीत हुई उसम हमे ऐसा लगता है कि इस समय समझौते की बात चलाई जाए तो उसकी सफलता की सभावना है। हमारा विश्वास है कि गाधीजी को अगर रिहा कर दिया जाए तो उससे युद्ध के सफलतापूर्वक सचालन मे कोई बाधा उपस्थित नही होगी, बल्कि देश म जो गतिरोध हो रहा है उसके समाधान के लिए वह लोगो का मार्गदर्शन करेंगे और इस काम मे अपनी शक्ति भर पूरी मदद पहुचाएगे। अत हमारी तरफ से कुछ प्रतिनिधियो को उनसे मिलने की वाइसराय से अनुमति मागनी चाहिए जिससे हाल की घटनाओ पर उनकी प्रतिक्रिया निश्चित रूप से मालूम हो और समझौते का रास्ता निकालने की कोशिश की जा सके।"

इस वक्तव्य पर सप्रू, जयकर, राजाजी, भूलाभाई आदि के हस्ताक्षर थे। लेकिन वाइसराय ने नेताओ की माग को ठुकराते हुए यह सक्षिप्त जवाब दिया 'नजर बन्द काग्रेस नेताओ से पहले कुछ आश्वासन और गारटिया ले ली जाने के बाद ही इस बारे मे आगे विचार किया जा सकता है।' यह उल्लेखनीय है कि राजाजी और भूलाभाई दोनो ही निर्दलीय नेताओ के मच पर उसी रूप मे शामिल हुए और उनके द्वारा स्वीकृत वक्तव्य पर भी उन्होने हस्ताक्षर किए। इसका इसके सिवा और क्या अर्थ हो सकता है कि भारत छोडो प्रस्ताव से भूलाभाई सहमत नहीं थे और उसके फलस्वरूप होने वाले आदोलन से भी उन्होने अपने को अलग ही रखा ?

वाइसराय लार्ड लिनलिथगो के साथ, जिनका कार्यकाल समाप्ति पर था, गाधीजी का लबा और लगातार पत्र व्यवहार जारी था। दोनो ही तरफ से अपनी बातो की पुष्टि मे दलीलें दी जाती रही, लेकिन देश जहा का तहा रहा और काग्रेस तथा सरकार के बीच जो गतिरोध था उसके समाधान मे कोई प्रगति नहीं हुई। इस बीच दो बातें ऐसी हुई जिनका उल्लेख आवश्यक है। एक तो यह कि मुसलमान नेता धीरे धीरे पर निश्चित रूप से इस विचार के होते जा रहे थे कि देश का (हिन्दू मुसलमानो मे) बटवारा होना चाहिए। दूसरी यह कि 1943 की फरवरी म जब जेल म गाधीजी ने उपवास किया तो राजाजी ने उनसे मिलकर 'पाकिस्तान के आधार पर जिन्ना से समझौते की बात चलाने की अपनी योजना पर उनकी शुभ कामना प्राप्त कर ली थी।' लेकिन जिन्ना के साथ राजाजी ने समझौते की कोई

बात नही की, क्योंकि गाधीजी के रुख मे इतना भारी परिवर्तन हो गया था कि स्वय उन्होंने जिन्ना से बातचीत का प्रस्ताव किया। मुस्लिम लीग ने दिसम्बर 1943 मे जो रुख अख्तियार किया और 'भारत छोडो' के मुकाबले 'बटवारा करो और जाओ' का जो नया नारा अपनाया, उसे देखते हुए शायद इसके सिवा और चारा न था।

1944 की 22 फरवरी के दिन आगाखा महल मे कस्तूरबा का देहावसान हो गया। इसके बाद अप्रैल (1944) से गाधीजी जेल मे बीमार हुए और 5 मई को उन्हें रिहा कर दिया गया। आगाखा महल से उन्हे पूना के एक मकान मे ले जाया गया, जहा से स्वास्थ्य सुधार के लिए फिर वह पचगनी गए।

20 अक्तूबर, 1943 को लार्ड लिनलिथगो वाइसराय पद से अवकाश ग्रहण कर चले गए। वह साढे सात साल तक वाइसराय रहे—जितने लम्बे समय तक शायद और कोई इस पद पर नही रहा, लेकिन इस बीच देश मे अशान्ति ही रही और जब वह गए तब भारत की हालत बडी खराब थी। नए वाइसराय लार्ड वेवल हुए, जो 1942 की गडबडी के वक्त भारत मे कमाण्डर-इन चीफ थे।

शासन के शीर्षस्थान पर ही परिवर्तन नही हुआ, युद्ध मे भी मित्रराष्ट्रो का भाग्य चमकने लगा और उनकी विजय निश्चित लगने लगी। परिवर्तित स्थिति से शायद गाधीजी के विचार भी कुछ बदले। जुलाई, 1944 मे 'न्यूज क्रानिकल' (लन्दन) के प्रतिनिधि स्टुअर्ट गेल्डर ने उनसे भेंट की। गेल्डर ने उस भेंट का जो विवरण प्रकाशित किया उसको लेकर अच्छा खासा विवाद उठा, क्योंकि भेंट इस शर्त पर हुई थी कि उसका विवरण प्रकाशित नही किया जाएगा। लेकिन यह स्पष्ट था कि भेंट मे जो कुछ कहा गया वह वाइसराय तक पहुचाने के लिए ही था और वह परिवर्तित स्थिति मे गाधीजी की नई नीति थी, बशर्ते कार्यसमिति उसे मान ले। गाधीजी अगर वाइसराय लार्ड वेवल से मिलें तो उनसे क्या कहेंगे, गेल्डर के इस प्रश्न पर गाधीजी का जवाब था "मैं वाइसराय से यही कहूगा कि मैंने आपसे मुलाकात मित्र राष्ट्रो के काम मे रुकावट डालने के लिए नही बल्कि उसमे सहायक होने की दृष्टि से मागी है और कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्यो से मुलाकात की जो अनुमति माग रहा हू वह भी इसी उद्देश्य से।" आगे पूछा गया कार्यसमिति के

सदस्यों की रिहाई के बाद वे जो माग पेश करें उसे सरकार पूरी न करे तो क्या आप फिर से सत्याग्रह शुरू करेंगे ? इस पर गाधीजी ने कहा "कार्यसमिति की रिहाई के बाद तो वही सारी स्थिति की जाच पडताल करेगी और आपस म तथा मेरे साथ विचार विनिमय करेगी । मैं तो यही कह सकता हू कि आज सत्याग्रह करने का मेरा कोई इरादा नही है। देश को मैं 1942 पर वापस नही ले जा सकता, क्योंकि इतिहास की पुनरावृत्ति नही होती । या काग्रेस से अधिकार लिए बगर भी मैं चाहू तो जनता पर अपने परिकल्पित प्रभाव के सहारे आज ही सत्याग्रह शुरू कर सकता हू लेकिन मेरे ऐसा करने से ब्रिटिश सरकार को परेशान करने के सिवा कोई लाभ न होगा और ऐसा करना मेरा उद्देश्य नही है ।" पत्र प्रतिनिधि ने कहा कि युद्ध के जारी रहते ब्रिटिश सरकार आजादी की माग मजूर करके भारतवासियो को सत्ता सौंप देगी, ऐसा म नही मानता । इस पर गाधीजी ने कहा "1942 म जो माग रखी गई थी और जो माग रखी जाएगी, उसम अन्तर है । आज तो मैं नागरिक प्रशासन का पूर्ण अधिकार रखने वाली राष्ट्रीय सरकार पर ही सतोष कर लूगा, लेकिन 1942 म ऐसी बात नही थी । यह जरूर है कि ऐसी सरकार केन्द्रीय असेम्बली के निर्वाचित सदस्यो द्वारा चुने गए व्यक्तियो की ही होनी चाहिए । युद्धकाल म यही भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा समझी जाएगी ।"

गाधीजी के 1942 की अगस्त मे जो विचार थे उनसे देखते उनके विचारो म यह महत्वपूर्ण परिवर्तन था । इस राजनीति के उलटफेर के सिवा क्या कहे ? लेकिन हमारी खास दिलचस्पी तो उनके निश्चित रूप से प्रकट किए इस विचार म है कि युद्ध काल म काग्रेस की सतुष्टि के लिए यही काफी है कि नागरिक प्रशासन के लिए ऐसी राष्ट्रीय सरकार कायम कर दी जाए जिसम केन्द्रीय असेम्बली के निर्वाचित सदस्यो द्वारा चुने गए व्यक्ति ही रहे । मोटे तौर पर इसी के लिए भूलाभाई ने उनकी अनुमति से प्रयत्न किया जसा कि आगे हम बताएगे ।

सितम्बर 1944 म जिन्ना स समझौते की गाधीजी ने जो कोशिश की उससे अनुमान लगायें तो मुस्लिम लीग के प्रति काग्रेस के रुख म भी निश्चय ही बहुत परिवर्तन हो गया था । यह हो सकता है कि काग्रेस नेताओं म स काफी लोग समझौते की ऐसी चर्चाओं क पक्ष मे नही थे और समझौते की दिशा म कोई सफलता

म नहीं मिली, लेकिन यह स्पष्ट है कि जिन्ना से मिलकर राजाजी ने जो योजना तैयार की थी, उसके पक्ष में गांधीजी को भी कर लिया गया था, जिनका कांग्रेस में अभी भी बोलबाला था। 10 जुलाई, 1944 को राजाजी ने उसे प्रकाशित किया। उसके अनुसार समझौता, कांग्रेस और मुस्लिम लीग में होना था और उसकी शर्तें निम्न प्रकार थीं

(1) मुस्लिम लीग स्वशासन प्राप्त करने के लिए स्वतन्त्रता की मांग का समर्थन करेगी।

(2) युद्ध-समाप्ति के बाद एक कमीशन द्वारा पश्चिमोत्तर और पूर्वोत्तर भारत के उन इलाकों की हदबन्दी की जाएगी जिनमें मुसलमान पूर्ण बहुमत में हैं और वहां सभी निवासियों की इस प्रश्न पर जनमतगणना की जाएगी कि उन्हें हिंदुस्तान से पृथक किया जाए या नहीं।

(3) जनमतगणना में उन इलाकों के हिंदुस्तान से पृथक होने के निश्चय की स्थिति में, रक्षा, वाणिज्य, संचार तथा अन्य आवश्यक मामलों पर इकरारनामे किए जाएंगे।

(4) ये शर्तें लागू तभी होंगी जब ब्रिटेन द्वारा भारत के शासन की पूरी सत्ता और जिम्मेदारी भारत को सौंप दी जाएगी।

इस समझौते की बातचीत उस वक्त हुई जब देश में करीब दो साल से जोरों से दमन जारी था और कांग्रेस आन्दोलन के सभी प्रमुख नेता जेलों में बन्द थे। गांधीजी के निर्विवाद नेतृत्व और जनता पर उनके व्यापक प्रभाव के कारण नरम दल (लिबरलों) की तो भारत की राजनीति में कोई गिनती ही नहीं रही थी। फिर भी भारतीय राजनीति के चाणक्य राजगोपालाचारी से प्रभावित हो गांधी जी जिस रास्ते को पकड़ रहे थे उसका उनमें से अनेक ने खुलकर विरोध किया। और तो और, वाइसराय लार्ड वेवल तक ने जो लार्ड लिनलिथगो के उत्तराधिकारी हुए थे और इस महादेश की आर्थिक तथा सामरिक अखण्डता की महत्ता से भली भांति परिचित थे इसका विरोध किया। अपने पूर्ववर्ती वाइसराय द्वारा केन्द्रीय असेम्बली

गाधीजी को हुई कि केन्द्रीय असेम्बली मे काग्रेस दल के नेता की हैसियत स व$_2$ वाइसराय से मिलकर गतिरोध दूर करने का कोई रास्ता निकालने की कोशिश करें। भूलाभाई के कागजपत्रो म मिले सय्यद महमूद के इस पत्र स यह स्पष्ट है जो वर्धा से 18 नवम्बर 1944 को उनके पास भेजा गया था

सेवाग्राम, वर्धा

व्यक्तिगत और गोपनीय 18 11 44

प्रिय श्री भूलाभाई

कुछ मुसलमान मित्रो ने हमे यहा लिखा है कि जिन्ना साहब से बातचीत के वक्त महात्माजी न उन्हे अतरिम सरकार का कोई मोटा खाका पेश किया होता तो मुमकिन है समझौता हो जाता। डा० अब्दुललतीफ का पत्र तो आपने अखबारो मे देखा ही होगा। बापू ने आपको कहलवाया है कि साम्प्रदायिक तथा अन्य मामलो मे दिल्ली मे आप कुछ कर सकत हो ता करें।

खबर मिली है कि नवाबजादा लियाकत अली खा—इस बात का निश्चय हो जान पर कि अतरिम सरकार का क्या रूप होगा और उसका क्या काम होगा—काग्रेस से समझौते के इच्छुक हैं। ये अफवाह कहा तक सही हैं, यह म नही जानता। आप नवाबजादा साहब स बात करके देखिए। अफवाह सच हो तो गाधीजी की ओर स (उस आधार पर बात करन म) कोई कठिनाई नही होगा। उनके मन मे क्या है इसका आपको पता है अत इस सबध मे आप जो ठीक समझ वह कर सकत हैं।

यह पत्र म बापू की जानकारी म और उनकी अनुमति से लिख रहा हू। उन्होने इसे देख भी लिया है। वाइसराय से आपकी मुलाकात का हाल आज के अखबारो से मालूम हुआ।

मेरा पहला पत्र आपको मिल गया होगा। उस पर कोई कारवाई करना आपने ठीक समझा या नही यह मुझे नही मालूम।

आपका

सय्यद महमूद

सय्यद महमूद ने अपने जिस पिछले पत्र का इसमें उल्लेख किया है, वह हमें नहीं मिला।

वाइसराय भी शायद गतिरोध दूर करने का कोई रास्ता निकालने के लिए उत्सुक थे। उनके प्राइवेट सेक्रेटरी का 7 नवंबर 1944 का एक पत्र मिला है, जिसमें भूलाभाई को 15 नवम्बर को वाइसराय से मुलाकात का निमंत्रण है। भूलाभाई के कागजों में तो वाइसराय से हुई उनकी उस मुलाकात का कोई विवरण उपलब्ध नहीं है, पर वी० पी० मेनन ने उसका उल्लेख किया है "केन्द्रीय असेम्बली में कांग्रेस दल के नेता भूलाभाई देसाई से भी वाइसराय मिले। देसाई ने वाइसराय को बताया कि मैं खुद तो औपनिवेशिक स्वराज्य पर तैयार हूं। औपनिवेशिक स्वराज्य और स्वतंत्रता में कोई वास्तविक अन्तर नहीं। उन्होंने यह भी बताया कि कांग्रेस के नेताओं की संकट पैदा करने की कोई इच्छा नहीं है। देसाई ने कहा कि कांग्रेस अपने मंत्रिमंडलों में (प्रांतों के) ऐसे मुसलमान को शामिल करने के लिए तैयार है, जिसे उस प्रांतीय असेम्बली का मुस्लिम बहुमत नामजद करे। यह जरूर है कि वे कांग्रेस के सामान्य अनुशासन को मानें और मंत्रिमंडल के संयुक्त उत्तरदायित्व को स्वीकार करें। बंगाल और पंजाब में कांग्रेस भी ऐसा ही दावा करने का हकदार है, पर मुझे शक है कि वह इन प्रांतों में ऐसा करेगी। हां सिंध की स्थिति भिन्न है। कांग्रेस बहुमत शासन और मंत्रिमंडल के संयुक्त उत्तरदायित्व पर जोर देती है।" गांधीजी का जहां तक संबंध है मेनन के अनुसार, "वह शांतिपूर्ण समाधान निकालने के लिए उत्सुक थे और सरकार से संघर्ष का उनका कोई इरादा नहीं था।"

स्पष्टतया इसी मुलाकात की खबर अखबारों में छपी होगी, जिसका सय्यद महमूद ने 18 नवंबर के अपने पत्र में उल्लेख किया। 15 नवंबर 1944 को यह मुलाकात हुई थी।

इसके बाद ऐसा मालूम पड़ता है कि सय्यद महमूद का पत्र पाकर भूलाभाई लियाकत अली से मिले और अंतरिम सरकार की संभावना पर कई बार उनकी बातचीत हुई। यह भी मालूम पड़ता है कि लियाकत अली से बातचीत के बाद भूलाभाई सेवाग्राम गए और 3 से 5 जनवरी 1945 तक वहां गांधीजी से मिलकर

उन्हें लियाकतअली से हुई बातचीत का सार बताया। जैसा कि भूलाभाई ने अपने वक्तव्य में बताया है, उनसे सामान्य स्वीकृति प्राप्त कर "मैं दिल्ली गया। वहां नवाबजादा से आगे बातचीत चलाई और उन्हें बताया कि इन प्रस्तावों पर महात्माजी की सहमति मिल गई है अब इन्हें लिखित रूप देना चाहिए।"

मौलाना आजाद और प्यारेलाल ने इस संबंध में जो प्रकाश डाला है उससे ऐसा मालूम पड़ता है कि भूलाभाई और लियाकत अली की बातचीत के फलस्वरूप प्रस्तुत योजना पर गांधीजी ने मौखिक सहमति ही नहीं दी बल्कि ऐसा भूलाभाई को लिखकर भी दिया। मौ० आजाद ने अपनी किताब (इण्डिया विन्स फ्रीडम) में लिखा है 'भूलाभाई देसाई ने गांधीजी से मिलकर उन्हें लियाकतअली खां तथा दूसरों से हुई बातचीत का हाल बताया। गांधीजी सोमवार को मौन रखते हैं। भूलाभाई उनसे मिले, उस दिन सोमवार होने के कारण गांधीजी का मौन था, इसलिए गुजराती में जवाब लिखकर उन्होंने भूलाभाई को दिया। उसमें भूलाभाई को जो सलाह दी उसका सार यही था कि भूलाभाई अपने प्रयत्न जारी रखें और तफसील मालूम करके उन्हें बताएं।"

मगर, ऐसा मालूम पड़ता है, भूलाभाई के साथ हुई गांधीजी की बातचीत का विवरण वर्धा में रखा गया था। प्यारेलाल के अनुसार ('महात्मा गांधी—दी लास्ट फेज़') "भूलाभाई के साथ हुई अपनी बातचीत का संक्षिप्त विवरण लिपिबद्ध करते हुए गांधीजी ने लिखा 'कोई इसकी आड़ न ले, हर एक को अपने ही दिमाग से सोचना और जो ठीक लगे वह करना चाहिए। फिर भी यह बताने के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है कि मैं इस प्रयत्न के विरुद्ध नहीं था। मेरी धारणा के अनुसार कांग्रेस और लीग की संयुक्त सरकार बन जाए तो मैं उसका स्वागत ही करूंगा। विधान सभा में कांग्रेस और लीग मिलजुलकर काम करें तो मैं उसे पसंद करूंगा। लेकिन इसके लिए कांग्रेस कार्यसमिति से अधिकार प्राप्त करना आवश्यक है। उसके बगैर कोई समझौता करने में मुझे खतरा मालूम पड़ता है। कार्यसमिति की रिहाई के प्रयत्न में लीग को साथ देना चाहिए 'मैं यह नहीं चाहता कि आप गजमद हों या बिना उचित समझौते के इसमें पड़ें।' भूलाभाई और गांधीजी की बातचीत के फलस्वरूप जो कार्यक्रम बना उसका भी प्यारेलाल ने उल्लेख किया है।

इनम से एक यह था कि उपयुक्त समय पर गाधीजी कायसमिति को बताएगे कि भूलाभाई ने जो कुछ किया वह उनकी सहमति से ही किया ।"

इसके बाद क्या हुआ, यह भूलाभाई के ही श दो मे उक्त वक्त य म बताया गया है "समझौते के दस्तावेज की मैंने दो प्रतिया तयार कराई जि हे लेकर 11 जनवरी को मैं नवाबजादा (लियाकत अली) से मिला और दोनो प्रतियो पर हम दोनो ने अपने अपने दस्तखत किए । दस्तावेज की एक प्रति उ होने रखो और दूसरी मैंन । उस वक्त भी मैंने उ ह बताया कि समझौते का सागश मैं गाधीजी को बता चुका हू और उ होने उसे पसद किया है ।"

सौभाग्यवश भूलाभाई के कागजपत्रो मे दस्तावज की वह प्रति मिल भा गई है जिस पर लियाकत अली और भूलाभाई दोना के हस्ताक्षर हैं। साथ ही उस दस्तावेज का भूलाभाई के हाथ का लिखा मसौदा भी मिला है जिसम गाधीजी क हाथ से किए सशाधन हैं । उससे यह साफ जाहिर है कि मसौदे का गाधीजी ने दखा था और उसम सशोधन भी किए थे ।

भूलाभाई ने एक व्याख्यात्मक टिप्पणी भी अपने हाथ से लिखकर तयार की थी और 3 से 5 जनवरी, 1945 के बीच, गाधीजी स मिलने पर उ ह दिखाई थी । गाधीजी ने पॅसिल से उसमे कुछ सशोधन और सवधन किए हैं । उस दिन गाधीजो का मौन था, इसलिए भूलाभाई ने उनके जवाब के लिए कुछ प्रश्न लिखकर तयार किए थे । उस टिप्पणी को गाधीजी के सशोधन सवधना क साथ (जो मोट टाइप म हैं) नीचे दिया जाता है

' मेर विचार म (समझौत की शर्तों का) क्रम कुछ नीचे लिखे प्रकार का होगा''

केन्द्र म अतरिम सरकार के सगठन पर लीग हमस सहमत है । सहमति स (सरकार मे) लिए गए लोग, निर्वाचित धारा सभा के प्रति जवाबदेह होंगे ।

लीग इस बात पर सहमत है कि गवनर जनरल हमारी इस तजवीज को मजूर कर लें तो नई सरकार का पहला काम कायसमिति के सदस्यो की रिहाई होगी।

ऐसा हो जाने पर गवनर जनरल से इस बात का अनुरोध किया जाएगा कि सरकार के गठन पर हमारे सहमत सदस्यो को (और उसके साथ दूसरे निर्वाचित दलो या व्यक्तियो के प्रतिनिधियो को) स्वीकार कर।

प्रश्न—नई अस्थायी सरकार का पहला काम कायसमिति के सदस्यो की रिहाई हो, इस पर लीग की सहमति क्या उसकी नेकनीयती का (यथष्ट)† प्रारंभिक सबूत है ?

कायसमिति के नजरबद रहते नई अस्थायी सरकार बन जाए और वह कायसमिति के सदस्यो को रिहा करे तो इससे हिंदू मुस्लिम समस्या के स्थायी समाधान म बाधा पडेगी, ऐसा आप क्या मानते हैं ?

उसमे खतरा यह है कि केन्द्रीय असेम्बली अस्पष्ट और दुरगी बात करेगी।

मरा सर्वाधिक आग्रह इसलिए है कि लीग की सहमति से यदि अंतरिम सरकार बन गई और उसम सहयोगपूवक काम होने मे कोई रुकावट न आइ तो हो सकता है कि (खुले रूप म ऐसा मजूर किए बिना) लीग का पाकिस्तान (बटवार) के लिए उत्साह खत्म हो जाए।

अस्थायी सरकार लीग और गवनर जनरल की सहमति से अभी बन सकती है, लेकिन वह होगी मौजूदा शासन विधान के अतगत ही। उसमे कमाण्डर इन चीफ (और असम्बली म चुनकर आए हुए ग्यारह अग्रेज सदस्यो के एक प्रतिनिधि)* को छोडकर सभी भारतीय होगे जिन्हें काग्रेस और लीग द्वारा नामजद किया जाएगा पर वे असेम्बली के चुने हुए सदस्यो के प्रति जिम्मेदार होगे।

---

†इसे गांधीजी ने काट दिया था। टिप्पणी की फोटोप्रति परिशिष्ट I म देखिए।
*गांधी जी ने काट दिया था।

इसके बारे में अपना कुछ कहना है।

कांग्रेस और लीग के बीच यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि सदन से जो प्रस्ताव पास न हुए हों उन्हें शासन विधान के अन्तर्गत गवर्नर जनरल को प्राप्त अधिकारों के द्वारा न लागू किया जाएगा। (यहां सदन का मतलब 'केन्द्रीय असेम्बली' से है)।

प्रत्येक सदस्य ([illegible]) कांग्रेस और लीग की पसंद का होना चाहिए।

अब हम 11 जनवरी 1945 के देसाई लियाकत समझौते को (जिसकी प्रति पर भूलाभाई देसाई और लियाकत अली खां दोनों के हस्ताक्षर हैं) यहां प्रस्तुत करते हैं।

केन्द्र में अंतरिम सरकार की स्थापना के प्रस्ताव*

कांग्रेस और लीग इस बात पर सहमत हैं कि वे मिलकर केन्द्र में अंतरिम सरकार बनाएंगे। ऐसी सरकार का गठन इस प्रकार किया जाएगा

(अ) कांग्रेस और लीग समान संख्या में उसके लिए अपने प्रतिनिधि नामजद करेंगी (जो जरूरी नहीं है कि केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य ही हों)।

(ब) अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधि (खास कर परिगणित जातियों और सिक्खों के)

(स) कमाण्डर इन-चीफ

सरकार का गठन मौजूदा भारत शासन विधान के अंतर्गत होगा और उसी के अंतर्गत वह काम करेगी। लेकिन इसमें यह मान लिया गया है कि मंत्रिमंडल अपनी किसी खास तजवीज को केन्द्रीय असेम्बली से मंजूर न करा पाए, तो गवर्नर जनरल या वाइसराय के विशेष अधिकार का सहारा लेकर उसे लागू करने को

*इसकी फोटो कापी परिशिष्ट 2 में देखिए।

कोशिश नहीं करेगा। (इस तरह वह गवनर जनरल के हस्तक्षेप से काफी हद तक स्वतन्त्र बनेगी)।

कांग्रेस और लीग इस बात पर सहमत हैं कि ऐसी अंतरिम सरकार बनी तो, कांग्रेस कायसमिति के सदस्यो की रिहाई, उसका पहला काम होगा।

इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए इस प्रकार प्रयत्न करने का विचार है

उपयुक्त समझौते के आधार पर कोई एसा रास्ता निकालना होगा कि गवनर जनरल की तरफ से ऐसा प्रस्ताव या सुझाव आए कि केन्द्र मे कांग्रेस और लीग की सहमति से अंतरिम सरकार बने, ऐसी उनकी इच्छा है। और इसके लिए श्री जिन्ना और श्री देसाई को इकट्ठे या अलग अलग जब आमन्त्रित करें तो वे सरकार बनाने की रजामदी दें और उपयुक्त योजना प्रस्तुत करें।

अंतरिम सरकार बनने के बाद उसका अगला काम प्रान्तो को दफा 93 से मुक्त करके, यथासभव जल्दी स जल्दी प्रान्तो म भी मिली जुली सरकार की स्थापना कराना होगा।

बी० जे० डी० 11 1 45
एल० ए० के० 11 1 45

प्यारेलाल के वक्तव्यो और भूलाभाई के कागजपत्रो स मालूम पडता है कि 1945 की जनवरी के अंतिम दिनो मे और फरवरी, अप्रल तथा जून म इस समझौते के सम्बन्ध मे गाधीजी और भूलाभाई के बीच पत्र व्यवहार हुआ। जनवरी म जिन्ना और लियाकत अली के कुछ वक्तव्य अखबारो मे निकले जिनसे गाधीजी के मन म समझौते के बारे मे कुछ गलतफहमी हो गई। 24 और 31 जनवरी, 1945 को सेवाग्राम से भूलाभाई को भेजे गए पत्रो स यह स्पष्ट है। भूलाभाई ने 1 फरवरी को लिखे पत्र मे गाधीजी को पुन आश्वस्त किया जिसका 2 फरवरी को गाधीजी ने जवाब दिया मालूम पडता है। इसके बाद 20 फरवरी को गाधीजी ने

भूलाभाई को लिखा—"समझौते का आपने जो रूप दिया है, उसे चलने दें लेकिन कार्यसमिति की स्वीकृति आवश्यक है।' गांधीजी का एक पत्र ऐसा भी है जिस पर भेजने की तारीख नहीं है, पर लगता है कि लिखने के कई दिन बाद भेजा गया। उसमें लिखा है कि 'बिना किसी भय के आप अपना प्रयत्न आगे बढ़ाएं। इस पत्र का अपने बचाव के लिए उपयोग करने की जरूरत नहीं। अपनी स्वतंत्र इच्छानुसार ही हरएक को काम करना चाहिए। पर यह बताने में कोई हर्ज नहीं कि मैं उनके प्रयत्न के खिलाफ नहीं हूं। इसके लिए आप मेरे इस पत्र का उपयोग कर सकते हैं। हिंदू मुस्लिम समस्या के समाधान के लिए आप जो कर सकते हो वह करें। जैसा मैंने सुझाया है उस तरह अगर कांग्रेस और लीग का (मिला जुला) मंत्रिमंडल बने तो मुझे खुशी होगी।"

9 अप्रैल को भूलाभाई ने बंबई से गांधीजी को पत्र लिखकर बताया कि चीमूर काण्ड के बंदियों को कठोरतम दण्ड देने के सरकारी इरादे से एक नई स्थिति पैदा हो गई है। जून में गांधीजी शायद महाबलेश्वर में थे। वहां से उन्होंने भूलाभाई को लम्बा पत्र लिखा, जिसका कुछ अंश 7 जून का लिखा हुआ है और बाकी 11 जून का। भूलाभाई के पत्र के जवाब में वह लिखा गया था और उसमें गांधीजी ने समझौते की शर्तों पर अपने विचार व्यक्त किए थे। प्यारेलाल के विवरण से मालूम पड़ता है कि महाबलेश्वर में जून 1945 में भूलाभाई गांधीजी से मिले थे और जिस दिन मिले वह गांधीजी के मौन का दिन था। इस कारण गांधीजी ने अपने विचार लिखकर भूलाभाई को दिए। इस तरह यह स्पष्ट है कि जून 1945 में कार्यसमिति के सदस्यों की रिहाई होने के पहले समझौते की सारी बातचीत, वह गांधीजी के पूरे सहयोग और परामर्श से ही चला रहे थे।

देखना चाहिए कि दिल्ली में क्या हो रहा था। भूलाभाई के कागजों में उनके नाम वाइसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी का 13 जनवरी, 1945 का एक पत्र मिला है। उससे मालूम पड़ता है कि 20 जनवरी, 1945 को वह वाइसराय से फिर मिले थे। पत्र इस प्रकार है "आपने आज तीसरे पहर मुझे अपने जो विचार बताए उसी सम्बन्ध में वह (वाइसराय) आपसे बातचीत करना चाहते हैं। वह यह भी चाहते हैं कि हमारे बीच जो बातचीत हुई उसे और इस सम्बन्ध में आगे उनसे जो बातचीत

हो उसे आप अपने तक ही रखेंगे।' पर इस मुलाकात मे क्या बातचीत हुई और देसाई लियाकत समझौते पर वाइसराय से चर्चा हुई या नही इस बार म हमारे पास कोई जानकारी नही है। अत कुछ समय के लिए समझौता सम्बधी घटनाओ को छोड 1945 के माच मे घटी कुछ महत्वपूण घटनाओ पर ही ध्यान दें।

वाइसराय से मुलाकात और देसाई लियाकत समझौत पर हस्ताक्षरो के बाद भूलाभाई गतिरोध को जो अभी भी जारी था दूर करने के प्रयत्न म लग गए। ऐसा मालूम पडता है कि लाड ववल जब परामश के लिए लदन गए उस समय भूलाभाई क्रिप्स से पत्र व्यवहार कर रहे थे। भूलाभाई के 21 माच के पत्र के जवाब मे क्रिप्स ने 27 माच 1945 को उहे पत्र लिखा। एयरक्राफ्ट प्रोडक्शन मिनिस्टरी (वायुयान उत्पादन मत्रालय) मिल बैंक लदन (एस० डब्ल्यू० 1) से लिखे इस पत्र मे क्रिप्स ने भूलाभाई को लिखा

"बम्बई मे जो सुखद दिन मैंने आपके घर पर बिताए हैं, उहें मैं नही भूल सका हू और वाइसराय के साथ आपकी बातचीत मे निश्चय ही मरी दिलचस्पी है। वह यहा आए हुए है इसलिए सब बातो पर उनसे चर्चा होगी ही।

"इस समय परिस्थिति उतनी अनुकूल नही है जितनी 1942 मे थी, जब मैं दिल्ली आया था। मैं जानता हू कि आपको मेरे प्रस्ताव पसद थे और आपकी ही तरह मैं भी समझता हू कि, हम किसी समझौत पर नही पहुच पाए यह बडे दुर्भाग्य की बात हुई। फिर भी स्थिति जसी भी हो व्यक्ति और दल उसे कितनी ही कठिन क्यो न बताए समाधान और प्रगति के लिए प्रयत्न करते ही रहना चाहिए। जल्दी ही हमारे यहा आम चुनाव होने वाले हैं। उनका जो परिणाम होगा उसका भारतीय परिस्थिति पर भी निस्सदेह काफी असर पडेगा। भारत के लिए नया शासन विधान बनाने म निश्चय ही हम बडी सूझबूझ से काम लेना होगा क्योकि मेरे ख्याल मे भारत जसे घने और अधिक आबादी वाले देश के लिए पश्चिम म प्रचलित लोकतत्र का तरीका उपयुक्त नही है। वहा की साम्प्रदायिक स्थिति की दृष्टि से भी यह उपयुक्त नही है क्योकि वहा सम्प्रदाय के आधार पर बहुमत और अल्पमत होने से अल्पमत के बहुमत म परिवर्तित होने की कोई आशा नही जबकि हमारे यहा लोगो

व राजनीतिक विचारों में परिवर्तन होकर अल्पमत बहुमत में बदल सकता है। जब प्रश्न सामाजिक या धार्मिक होता है तब अल्पमत बहुमत के शासन को स्वीकार करने को तैयार नहीं होता। इसलिए इसका कोई नया रास्ता निकालना होगा।

"आप भी इसी ढंग से सोचते होंगे और सप्रू कमेटी इसी ढंग से कुछ सुझाव रखेगी। आपके लिए मेरी शुभकामना और आशा है कि गतिरोध शीघ्र समाप्त होगा।"

यह स्मरणीय है कि तेज बहादुर सप्रू कुछ अन्य नेताओं के साथ ऐसा रास्ता निकालने की बराबर कोशिश कर रहे थे जिससे कठिनाइयां दूर हों और कांग्रेस के प्रमुख व्यक्ति जेलों से छूटें।

इससे भी महत्वपूर्ण और बाद की घटनाओं की दृष्टि से और भी मार्मिक घटना मार्च 1945 में हुए केन्द्रीय असेम्बली के बजट अधिवेशन में भूलाभाई के शामिल होने की थी। उसमें उन्होंने जो भाषण किया वह असेम्बली का उनका अंतिम भाषण ही नहीं था बल्कि इतना महत्वपूर्ण रहा कि स्मरणीय बन गया।

किन परिस्थितियों में ऐसा हुआ यह जानने लायक है। बात यह हुई कि अनेक प्रमुख व्यक्तियों को लगा कि असेम्बली से कांग्रेसी सदस्यों की अनुपस्थिति का लाभ उठा सरकार युद्धकालीन बजट पास करा ले यह ठीक न होगा। अतः उन्होंने असेम्बली में विपक्षी दल कांग्रेस के नेता की हैसियत से भूलाभाई से अनुरोध किया कि वह बजट अधिवेशन में शामिल हों और बजट के विरुद्ध विपक्ष को संगठित करें। भूलाभाई ने उन्हें कांग्रेस कार्यसमिति के प्रस्ताव का हवाला देते हुए बताया कि उसके अनुसार हम (कांग्रेस वाले) ऐसा नहीं कर सकते। लेकिन संयोगवश अधिवेशन शुरू होने के कुछ पहले ही कार्यसमिति की एक सदस्या सरोजिनी नायडू जेल से छोड़ दी गईं और रिहाई के बाद वह दिल्ली आई। तब, जो लोग यह चाहते थे कि बजट पास न होने देने के लिए कांग्रेसी सदस्य असेम्बली के बजट अधिवेशन में भाग लें, वे उनसे मिलें और उन्हें सारी स्थिति बताकर कांग्रेसी सदस्यों को ऐसा

करने का आदेश देने को कहा। उन्होंने यह भी बताया कि जेल में होने के कारण कार्यसमिति के अन्य सदस्यों के पास तो इसके लिए पहुंचा नहीं जा सकता, उनके बाहर होने के कारण केवल उन्हीं से कहा जा सकता है और यदि वे यह बात मान लें तो उन्हें कांग्रेस दल को ऐसा आदेश देने का पूरा हक है। इसके फलस्वरूप सरोजिनी नायडू ने भूलाभाई को परामर्श के लिए दिल्ली बुलाया, साथ ही असेम्बली के अन्य कांग्रेसी सदस्यों को भी दिल्ली आने के लिए कहा। भूलाभाई के दिल्ली आने पर योजनानुसार बातचीत हुई और अंत में सरोजिनी नायडू ने अपनी जिम्मेवारी पर युद्धकालीन बजट पास न होने देने के विशेष उद्देश्य से भूलाभाई को कांग्रेसी सदस्यों के साथ असेम्बली में जाने का आदेश दिया।

इस अवसर पर भूलाभाई ने अपनी संसदीय योग्यता और नेतत्व का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया। असेम्बली के मुस्लिम लीगी तथा स्वतंत्र सदस्यों से मिलकर उन्होंने बजट के विरुद्ध मोर्चा बनाया। सरकार को इससे चिंता हुई और बजट अस्वीकृत न हो पाए इसके लिए उसने पूरी कोशिश की। कहा तो यहां तक जाता है कि मुस्लिम लीग के दो सदस्यों को उसने किसी तरह दिल्ली से बाहर भी भेज दिया, जिससे वे बजट के विरुद्ध मत न दे सकें। लेकिन इस सबके बावजूद सरकार को सफलता न मिल पाई। थोड़े ही बहुमत से बजट का सरकारी प्रस्ताव गिर गया। इस तरह कांग्रेस ने दुनिया को बता दिया कि जिस केंद्रीय असेम्बली में जनता को कोई खास अधिकार प्राप्त नहीं हैं, वहां भी युद्ध प्रयत्न में सरकार को जनता के प्रतिनिधियों का समर्थन नहीं है।

लियाकत अली खां ने इस बहस में भूलाभाई से पहले बोलते हुए कहा था 'हम पृथक राज्य चाहते हैं जिससे प्रत्येक सम्प्रदाय (हिन्दू और मुसलमान) अपने अपने राज्य में अपनी संस्कृति, अपनी विचारधारा और अपने आदर्शों के अनुसार अपनी उन्नति करे। मैं आपको बताना चाहता हूं कि पाकिस्तान की मांग भारत को गुलाम बनाए रखने के लिए नहीं है। यह तो उसे आजाद करने की मांग है। यह मांग तो ऐसी है जो हिन्दू, मुसलमान सिख तथा दूसरी सभी जातियों की आजादी के हक में है। भारत की वैधानिक समस्या के समाधान के लिए ही हमारी यह तजवीज है। इसलिए, अध्यक्ष महोदय, मैं आशा करता हूं कि, जितना

लाग समझते हैं उसम पहले ही बहुत जल्द वह दिन आने वाला है जब हिन्दू मुसलमान आपस में शान्तिपूर्वक रहेंगे। पाकिस्तान बनने के बाद वहां अल्पसंख्यक हिन्दुओं के साथ जैसा व्यवहार किया गया, उसे देखते हुए हम पिछले इन बीस वर्षों की क्रूर घटनाओं का यह बिल्कुल ही गलत अनुमान मालूम पड़ता है।

भूलाभाई ने, लियाकत अली खां के बाद बोलते हुए मार्मिक शब्दों में कहा "मेरे माननीय मित्र नवाबजादा लियाकत अली खां ने आपको बताया है वही मैं भी कहता हूं, कि यदि देश का शासन हमें सौंपकर हमसे अपने देश की रक्षा तथा देश के हित में आवश्यक अन्य देशों की रक्षा के लिए कहा जाता तो हम वैसा करने में किसी तरह पीछे नहीं रहते। नवाबजादा साहब ने जिस भाषा में यह बात कही उससे मेरी भाषा भिन्न हो सकती है लेकिन मैं भी बिल्कुल स्पष्ट रूप में यह कह रहा हूं जिसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है लेकिन गुलाम कठपुतले बनकर हम ऐसा नहीं करेंगे। फिर से पराधीन बनने के लिए हम ऐसा नहीं करेंगे यह ठीक है कि सभी बातें तत्काल ठीक नहीं हो जातीं। लेकिन फिर भी मैं सोचता हूं—और ऐसा सोचने का मुझे पूरा हक है—कि इस समय में हमारी सुविधा के जो साधन उपलब्ध हैं उनके बावजूद, देश को युद्ध से क्या मिला है? इस देश में तो लोगों के पास तन ढकने को वस्त्र तक पूरे नहीं है। उन पर कर्ज का बोझ लदा हुआ है। शोषण करने के लिए सभी तरह के तरीके काम में लाए जाने से देश में चीजों का भारी अभाव है। इतने पर भी, ऐसी बुरी हालत के बावजूद, हमसे इस (युद्ध के भारी खर्च वाले बजट को) मंजूर करने की आशा की जाती है, यह आश्चर्य की बात है।"

दूसरे दिन, असेम्बली के अपने अन्तिम भाषण में उन्होंने तीखा व्यंग्य करते हुए कहा "एक बात और मैं कहना चाहता हूं। परसों बी० बी० सी० (ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कार्पोरेशन) के एक प्रवक्ता की बड़ी बुलंद आवाज में मैंने यह घोषणा सुनी—'बर्लिन अपनी शुद्धि के लिए जल रहा है। इस घोषणा में जो बात गर्भित है उससे लगता है कि दुनिया को समय आई है। बर्लिन अगर अपनी शुद्धि के लिए जल रहा है तो निश्चय ही और भी जो अनेक साम्राज्य निर्माता हैं उन्हें भी अपनी शुद्धि के लिए जलना चाहिए। इंग्लैंड की स्वतन्त्रता छीनने का प्रयत्न करने के पाप के प्रायश्चित स्वरूप बर्लिन जल रहा है, तो, मैं कहता हूं, इंग्लैंड को भी अपने

ऐसे अनेक पाप कृत्यों का प्रायश्चित करना होगा। मैं आशा करता हूं कि साम्राज्य वाद के पापों के लिए शुद्धि और प्रायश्चित को बी० बी० सी० न केवल बर्लिन के लिए ही सीमित नही रखा है और इस बारे म मुझे कोई सदेह नही कि उस प्राय श्चित को काय रूप देने का अब समय आ गया है। यह ऐसा अच्छा सबक है जिसको, मैं समझता हूँ, बिना कोई बहाना बनाए आज ही ब्रिटन को सीख लेना चाहिए। बजट को अस्वीकार करने के प्रस्ताव का समथन करते हुए कल जसा कहा था, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि अब हम जनता के प्रतिनिधि अपने देश का शासन खुद ही करना चाहते हैं।'

भूलाभाई का यह भाषण असम्बली के उनके भाषणो म सर्वोत्तम था। एक्जीक्युटिव कौंसिल के कुछ सदस्यो ने तो तुरन्त ही अपने स्थानो से उनके पास जा उन्हें बधाइयां दी। बजट तो अस्वीकृत हुआ ही।

गाधीजी का उस समय भूलाभाई म कितना विश्वास था और किसी बात के निणय मे व उनके मत को कितना महत्व देते थे, यह कायसमिति के सदस्यो की रिहाई से कुछ समय पहले की एक घटना से स्पष्ट है। कम्युनिस्ट पार्टी के जो सदस्य कांग्रेस म शामिल हो गए थे उनके खिलाफ शिकायत थी कि कांग्रेस म शामिल होकर भी उन्होंने 1942 के भारत छोडो प्रस्ताव के बाद कांग्रेस की नीति और उसके विचारो के विरुद्ध प्रचार किया। कम्युनिस्टो ने इन आरोपो की ट्रिब्युनल द्वारा जाच कराने पर जोर दिया और उसके लिए कुछ लोगो के नाम भी सुझाए। इस पर गाधीजी ने इस सम्बन्ध के सारे कागजात भूलाभाई के पास—जिनका नाम भी इस काम के लिए प्रस्तावित था—भेज दिए। भूलाभाई ने उनकी जाच कर जो सिफारिश की, उसे गाधीजी ने मजूर कर, निणय किया कि कम्युनिस्टो को कांग्रेस की सदस्यता से नही हटाया जा सकता, न कम्युनिस्ट होने के कारण ही उनके खिलाफ कोई कारवाई की जा सकती है अलबत्ता व्यक्तिगत रूप म जिन्होंने कांग्रेस अनु शासन भग किया हो उनके खिलाफ कारवाई हो सकती है। जून 1945 म काय समिति के सदस्यो की रिहाई हुई तब कायसमिति के सामने यह मामला आया। उसने भी भूलाभाई के निष्कष का अनुमोदन कर यही निणय बहाल रखा।

× × ×

जिसे मानना-न मानना उनका काम है। फिर भी शिमला में आयोजित सम्मेलन का उन्होंने स्वागत किया और कहा, "प्रस्तावित सम्मेलन यदि उपयुक्त राजनीतिक स्तर पर रहे और विघटन की प्रवृत्ति से बचे तो वह उपयोगी काम कर सकता है। ——भूलाभाई और लियाकत अली के बीच हुए समझौते को मैंने इसी दृष्टि से देखा है और मैं समझता हूं उसी के कारण वाइसराय द्वारा प्रस्तावित सम्मेलन हो रहा है——साम्प्रदायिक समस्या के समाधान में दिलचस्पी होने के कारण भूलाभाई के प्रस्ताव ने मुझे आकर्षित किया और मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि कार्य समिति को उसके कारण बताकर उसके सदस्यों से मैं उसकी स्वीकृति के लिए सिफारिश करूंगा। समझौते के दोनों पक्ष अगर अपने अपने पक्ष का सही तौर पर प्रतिनिधित्व करें और भारत की स्वतन्त्रता दोनों का लक्ष्य हो तो इसका परिणाम अच्छा ही निकलेगा, इसमें मुझे कोई शक नहीं है। इससे आगे मुझे कुछ नहीं कहना चाहिए, क्योंकि आगे की कारवाई तो कार्यसमिति के हाथ में है। प्रस्तुत समस्याओं पर कांग्रेस की ओर से तो उसके सदस्य ही बोल सकते हैं।

कार्यसमिति के सदस्यों से गांधीजी 21 जून को बम्बई में मिले। विचार विनिमय के बाद कार्यसमिति ने शिमला सम्मेलन में कांग्रेस के भाग लेने का निश्चय किया। कांग्रेस की ओर से भाग लेने के लिए जिन्हें वाइसराय के निमन्त्रण मिले थे उन्हें सम्मेलन में जाने की अनुमति दी गई। भूलाभाई को तो पहले ही 13 जून को, वाइसराय के सेक्रेटरी से वाइसराय का यह संदेश मिल चुका था, जिसे उन्होंने अपने रेडियो भाषण के बाद यथाशीघ्र पहुंचाने को कहा था "आपने मेरा आज शाम का रेडियो भाषण सुना होगा। पार्लियामेण्ट में भारत मंत्री द्वारा दिए गए वक्तव्य के साथ वह कल अखबारों में प्रकाशित होगा। मुझे पूर्ण आशा है कि सोमवार 25 जून के सवेरे शिमला के वाइसरीगल लाज में शुरू होने वाले सम्मेलन में आप भाग ले सकेंगे। कृपया तार से अपने निर्णय की सूचना दीजिए। आ रहे हों, तो कृपया यह भी सूचना दें कि आप के ठहरने की क्या व्यवस्था की जाए।"

इस संदेश के साथ भेजे अपने पत्र में सेक्रेटरी ने लिखा "इस सम्मेलन से राजनीतिक संपर्क पुनः कायम करने का जो अवसर मिलेगा, मेरा विश्वास है कि

उसका ठीक तरह से उपयोग किया जाए तो, उससे वतमान गतिराध समाप्त किया जा सकता है । इसीलिए अपनी आर से भी मैं इस पत्र द्वारा आशा करता हू कि आप श्रीमान वाइसराय का निमत्रण स्वीकार करेंग ।

गाधीजी ने वाइसराय को सूचना दी कि मैं सम्मलन म ता शामिल नही हाऊगा पर आवश्यकता पडने पर सलाह मशवर के लिए उस समय शिमला ही रहूगा ।

शिमला सम्मेलन मे 25 जून को जा लोग शामिल हुए उनम काग्रेस और लीग के विविध प्रतिनिधियो क अलावा काग्रेस और लीग क अध्यक्ष तथा केन्द्रीय असम्बली मे काग्रेस के नेता (भूलाभाई दसाई) और लीग के उपनेता (लियाकतअली खा) भी थे । शिमला सम्मेलन म विचार विनिमय के बाच वाइसराय ने विविध पक्षा के नताओ से ऐसे नामो की सूची देने को कहा जिनम वह एक्जीक्युटिव कौंसिल के लिए नाम छाट सकें । यह भी उन्हाने स्पष्ट कर दिया कि नाम वह छाटेंगे इसलिए किसको क्यो लिया गया इसकी सारी जिम्मेदारी स्वय उनकी हागी । इसके अनुसार काग्रेस तथा सभी छोट दलो न 7 जुलाइ तक अपनी अपना सूची दे दी, पर मुस्लिम लीग न एसा करन से इनकार कर दिया । आश्चय की बात यह थी कि काग्रेस की सूची मे भूलाभाई का नाम नही था जिसका कारण उस समय के काग्रेस अध्यक्ष मौ० आजाद के अनुसार कायसमिति के सदस्यो की यह धारणा थी कि "भूलाभाइ ने लियाकतअली खा स समझौता कर, काग्रेस की अनुमति प्राप्त किए बिना ही एक्जीक्युटिव कौंसिल म शामिल हाने की कोशिश की ।'

शिमला सम्मेलन, 14 जुलाई को सफलता प्राप्त किए बिना समाप्त हा गया । असफलता का मुख्य कारण यह था कि काग्रेस न दा राष्ट्र की बात नहीं मानी और प्रस्तावित अतरिम सरकार के लिए अपने नामो म दा राष्ट्रवादी मुसलमाना—मौ० आजाद और आसफअली—क नाम अवश्य रखन का आग्रह किया ।

काग्रेस की कायसमिति और महासमिति न सितबर म काग्रेस क पुरान ध्येय की पुन पुष्टि की और चुनाव लडन का निश्चय किया । लकिन इस निणय क

साथ ही कांग्रेस ने यह भी निश्चय किया कि जिन भूलाभाई ने केन्द्रीय असेम्बली में दस साल तक कांग्रेस का प्रतिनिधित्व और कांग्रेस दल का नेतृत्व किया उन्हें कांग्रेस का उम्मीदवार न बनाया जाए।

उस समय पर नजर डालें तो ऐसा मालूम पड़ता है कि कार्यसमिति के सदस्य जब जेल में नजरबन्द थे तब कार्यसमिति की उपेक्षा कर भूलाभाई ने कांग्रेस की पीठ में छुरी भोंकी, ऐसी लोगों में आम अफवाह फैली हुई थी और अखबारों में भी इस तरह की बातें देखने को मिलती थी। इन्हीं कारणों से 29 जुलाई, 1945 को जब एक पत्र प्रतिनिधि वर्धा में गांधीजी से मिला तो इस बारे में उनसे भी पूछा। उस मुलाकात का विवरण दूसरे दिन बंबई के 'फ्री प्रेस जर्नल' में इस शीर्षक से छपा : 'कांग्रेस की पीठ में छुरा नहीं भोंका गया : गांधीजी द्वारा भूलाभाई का समर्थन।' मुलाकात में गांधीजी ने कहा था : 'एडवोकेट भूलाभाई के बारे में मैं सिर्फ यही कह सकता हूं कि गतिरोध का सम्मानपूर्ण समाधान निकालकर कांग्रेस की सेवा करने के सिवा उनका कोई और इरादा नहीं था।

इसके बाद, ऐसा मालूम पड़ता है, पत्र प्रतिनिधि ने गांधीजी से यह लम्बा प्रश्न किया : "डा॰ पट्टाभि सीतारामय्य के अनुसार देसाई लियाकत समझौते में पहली बात नई सरकार के निर्माण की थी, उसके बाद ही कार्यसमिति के सदस्य रिहा होते। समझौते की इसी बात के अनेक अर्थ लगाए गए हैं और इसी को किसी ने 'कांग्रेस की उपेक्षा' और किसी ने 'कांग्रेस की पीठ में छुरा भोंकना' कहा है। पंचगनी से जारी किए अपने वक्तव्य में आपने कहा है कि उसमें साम्प्रदायिक समझौते का आधार होने के कारण आपने उसका समर्थन किया। आम ख्याल यह है कि समझौते की बातचीत के हर दौर में आपसे परामर्श किया गया। ऐसी हालत में ऐसा कहना क्या सच है कि कांग्रेस की उपेक्षा करके समझौता किया गया ?" इस पर गांधीजी ने पहले तो ऐसी बातें कहीं, जिन्हें पत्र प्रतिनिधि ने 'सवाददाताओं को उपदेश' की संज्ञा दी, उसके बाद प्रश्न के उत्तर में कहा :

"एडवोकेट भूलाभाई देसाई का, जिनकी तरफ से ही मैं कह सकता हूं 'कांग्रेस की पीठ में छुरा भोंकने' या कांग्रेस की उपेक्षा करने का कभी कोई इरादा

नही था। उनका जो भी राजनीतिक जीवन है वह कांग्रेस के ही कारण है, इसलिए ऐसे किसी इरादे के दोषी वह कभी हो नही सकते, और जहा तक मेरा सवाल है, मैं ऐसे किसी प्रयत्न म साझीदार बनकर तो अपनी आत्महत्या ही कर सकता हू।

"एडवोकेट भूलाभाई के बारे म मैं सिर्फ यही कह सकता हू कि गतिरोध का सम्मानपूर्ण रास्ता निकालकर कांग्रेस की सेवा करने के सिवा उनका कोई और इरादा नही था।

'समझौते के हर दौर म मेरी सलाह ली गई, यह कहना तो गलत होगा लेकिन यह बिल्कुल सच है कि समझौते के सम्बन्ध म एडवोकेट भूलाभाई एक से अधिक बार मुझसे मिले थ।

सबसे बड़े नेता (गाधीजी) ने इस प्रकार भूलाभाई का पूरी तरह समर्थन किया।

यह बात हम नही भूलनी चाहिए कि समझौते का मूल रूप अभी सामने नही आया था। इसलिए गाधीजी से पूछा गया 'कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्यो की रिहाई समझौते की शर्तों म थी या नही दोनो पक्षो म यह तय हुआ था या नही कि नई सरकार के मुसलमान सदस्यो का चुनाव मुस्लिम लीग ही करेगी, और समझौते के पक्ष विपक्ष म सामने आए अनेक वक्तव्यो के कारण क्या यह वाछनीय नही होगा कि समझौते को उसके मूल रूप म प्रकाशित कर दिया जाए ?" इस पर गाधीजी ने कहा 'मैं समझता हू कि समझौता अभी सामने नही आया है इस बात को जानते हुए उसके बारे म जो कुछ मैं कह सकता था वह कह चुका हू। समझौता करने वाले पक्ष उसे प्रकाशित करने को तैयार हो जाए तो अच्छा ही होगा।'

उसी दिन, यानी 30 जुलाई को केद्रीय असेम्बली म कांग्रेस दल के तत्कालीन मत्री श्रीप्रकाश का बनारस (वाराणसी) से वक्तव्य निकला। समझौते को लेकर भूलाभाई के खिलाफ जो प्रचार किया जा रहा था उसकी निन्दा करते हुए, श्रीप्रकाश ने कहा "नवाबजादा लियाकतअली खा और वाइसराय के साथ भूलाभाई देसाई ने जो बातचीत चलाई उसको लेकर भूलाभाई पर दोषारोपण करना बहुत अपमानजनक और अनुचित बात है।"

"मैं नही समझता कि भूलाभाई पर कांग्रेस की उपेक्षा का दोषारोपण कैसे किया जा सकता है जबकि नवाबजादा लियाकतअली के साथ किए समझौते में नई सरकार का पहला काम कार्यसमिति के सदस्यों की रिहाई निश्चित किया गया था।

"सभी कांग्रेसजन कांग्रेस के अनुशासन में हैं इसलिए यदि रिहाई के बाद कार्य समिति भूलाभाई के विचारों से सहमत न होती तो अन्य कांग्रेस जनों की तरह वह उसके अधीन थे। भूलाभाई तथा अन्य सबकी इच्छा का स्पष्ट रूप से यही थी कि कार्यसमिति के सदस्यों को किसी तरह मुक्त कराया जाए, जिससे राजनीतिक स्थिति ठीक हो और तनाव दूर हो।

"भूलाभाई लियाकत सरकार बनी—अगर वह अस्तित्व में आई—तो उसका पहला काम कार्यसमिति के सदस्यों की रिहाई होगा, इस बात का ऐसा अर्थ निकालना सर्वथा अनुचित है कि नई सरकार के निर्माण से पहले उन्हें नहीं छोड़ा जा सकता। सरकार ने जब यह कहा कि वह उनकी रिहाई की जिम्मेदारी लेने को तैयार नहीं है, क्योंकि ऐसा करके वह खतरा मोल नहीं लेना चाहती तब उस कठिनाई को पार करने का भूलाभाई ने जो रास्ता निकाला उसके सिवा और कोई रास्ता था ही नहीं। भूलाभाई ने जो कुछ किया उसके लिए तो उनके प्रति हमें कृतज्ञ होना चाहिए, क्योंकि कम से कम मैं तो स्पष्ट रूप से यह मानता हूं कि उसी के फलस्वरूप कार्य समिति के सदस्य जेल से छूटे और उसी के कारण बाद में शिमला सम्मेलन किया गया।"

श्रीप्रकाश ने जिस आरोप का खंडन किया, अर्थात नई सरकार बनने से पहले कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्यों की रिहाई न हो, यह आरोप बिल्कुल अनुचित था। कार्यसमिति के सदस्यों की रिहाई तो, जैसा हम देख चुके हैं इसीलिए हुई थी जिससे कांग्रेस वाइसराय की अंतरिम सरकार सम्बन्धी योजना पर विचार कर सके और इसके लिए आयोजित शिमला सम्मेलन में शामिल हो।

1945 की पहली सितम्बर को इस शीर्षक से 'बाम्बे क्रानिकल' में एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ—'देसाई लियाकत समझौता प्रकाशित गलतफहमी रोकने के लिए"

लीग के मंत्री द्वारा गुप्त योजना पर प्रकाश।" यह लियाकतअली खां का वह वक्तव्य था जो इन्होंने आल इंडिया मुस्लिम लीग के प्रधान मंत्री की हैसियत से 31 अगस्त 1945 का नई दिल्ली से जारी किया था। समझौते का मूल रूप (जो हम पहले दे चुके हैं) प्रकाशित करते हुए उन्होंने बताया 'यह (समझौता) पिछले साल मेरे साथ हुई ग्यानगी बातचीत में मि० देसाई ने मुझे दिया था।' और आगे कहा 'मुझे बताया गया है कि केन्द्रीय असेम्बली में कांग्रेस दल के नेता श्री भूला भाई देसाई ने बम्बई के अखबार वालों से कहा है कि देसाई-लियाकत समझौता प्रकाशित नहीं किया जा सकता क्योंकि मैं उसे गुप्त रखना चाहता हूं। श्री देसाई के ऐसे वक्तव्य से गलतफहमी होने की संभावना है, इसलिए मैं समझता हूं कि मुझे इस सम्बन्ध के सभी तथ्य जनता के सामने रख देने चाहिए।'

इसके बाद उन्होंने ये तथ्य प्रस्तुत किए

"केन्द्रीय असेम्बली के अंतिम अधिवेशन के बाद श्री देसाई मुझसे मिले। देश में उस समय—आर्थिक तथा अन्य रूप में—जैसी कष्टकर स्थिति थी और युद्ध के कारण लोगों को जो मुसीबत व कठिनाई उठानी पड़ रही थी उसपर हमारी अनौपचारिक रूप में बातचीत हुई। युद्ध उस समय यूरोप में पूरे जोर पर था और कोई यह नहीं कह सकता था कि कब उसका अंत होगा, आम राय यह जरूर थी कि यूरोप में युद्ध समाप्त होने के बाद भी जापान से पार पाने में कम से कम दो साल और जरूर लगेंगे। पूर्व में जापान के खिलाफ लड़ाई के लिए भारत ही मित्र राष्ट्रों का मुख्य फौजी अड्डा बनने वाला था, जिसका मतलब यह था कि भारतीय जनता की किस्मत में पहले से भी ज्यादा कठिनाई और मुसीबतें बदी थीं। सभी यह मानते थे कि जो समस्याएं पैदा हो चुकी थीं और जो भविष्य में पैदा होनी थीं, भारत में जिस तरह की सरकार है, उसके लिए उनका ठीक से सामना करना संभव नहीं है।

"हमारी बातचीत में श्री देसाई ने मुझसे पूछा कि केन्द्र में कोई अंतरिम व्यवस्था करने और गवर्नर जनरल की एक्जीक्यूटिव कौंसिल का आरजी तौर पर ऐसा पुनर्गठन करने के बारे में मुस्लिम लीग का क्या रुख होगा जिससे उसे (सरकार को) सभी लोगों का विश्वास प्राप्त हो और वह उनकी मौजूदा मुसीबत में उनकी

मदद कर सके और युद्ध के विस्तार से भविष्य में स्थिति जो और भी गंभीर होने वाली है उसका ज्यादा अच्छी तरह सामना कर सके। इस सम्बन्ध में मुस्लिम लीग ने जो प्रस्ताव समय समय पर पास किए थे उनके हवाले से मैंने मुस्लिम लीग का रुख स्पष्ट किया। साथ ही अपना व्यक्तिगत मत दिया कि कष्ट के समय लोगों की मदद करने और संकट के समय देश की रक्षा के प्रयत्न में मुस्लिम लीग हमेशा योग दान को तयार रही है इसलिए स्थिति में सुधार की बाद योजना सामने आए तो उस पर जरूर गौर किया जाएगा। इस साल की जनवरी के आरम्भ में श्री देसाई दिल्ली में फिर मुझसे मिले जबकि मैं मद्रास प्रांत के दौरे पर रवाना होने ही वाला था। केन्द्र में अंतरिम सरकार बनाने के लिए तयार की गई योजना का मसौदा उन्होंने दिखाया जिसके आधार पर उनके कथनानुसार वह देश की सरकार के रूप में परिवर्तन के लिए प्रयत्न करने वाले थे। योजना के मसौदे की एक प्रति भी उन्होंने मुझे देने की कृपा की और उसे बिल्कुल गुप्त रखने के लिए कहा।

'उन्होंने मुझे बताया कि इस सम्बन्ध में वाइसराय और जिन्ना से मिलने का उनका विचार है। मैंने कहा कि मेरे अपने विचार में तो योजना बातचीत का आधार बन सकती है। लेकिन बातचीत आगे तभी बढ़ सकती है जब या तो गांधीजी खुद इसमें अगुआ बनें या फिर उनका निश्चित और खुला समर्थन इसे प्राप्त हो, क्योंकि कार्यसमिति की अनुपस्थिति में वही एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जो कांग्रेस की ओर से बोल सकते हैं।

श्री देसाई से मेरी बातचीत बिल्कुल व्यक्तिगत थी और बातचीत के बीच बिल्कुल स्पष्ट रूप में मैंने उन्हें बता दिया था कि मैंने जो कुछ कहा है वह मेरी निजी राय है मुस्लिम लीग या और किसी का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। कांग्रेस की ओर से अगर वह बात करें तो, मैंने उन्हें बताया, कांग्रेस से वैसा अधिकार प्राप्त करके उन्हें मुस्लिमलीग के अध्यक्ष से मिलना होगा, क्योंकि मुस्लिम लीग की तरफ से किसी योजना को मंजूर करने के लिए वही उपयुक्त अधिकारी हैं देसाई लियाकत फार्मूला, देसाई लियाकत योजना वगैरह नामों से अखबारों में बहुचर्चित योजना का यही कच्चा चिट्ठा है।

श्री दसाई की इच्छा का पूरा ध्यान रखते हुए योजना के मसौदे को मैंने बिल्कुल गुप्त रखा है, किसी को भी उसे नही बताया है लेकिन श्री देसाई के वक्तव्य की वजह से और इस मामले को लेकर जो गड़बड़ मची हुई है उसके कारण मुझे लगता है कि अब इसे प्रकाशित कर देना चाहिए। इसीलिए इसे अखबारों म प्रकाशनार्थ दे रहा हू।"

इस वक्तव्य के साथ देसाई लियाकत समझौते के नाम से मशहूर प्रस्तावित योजना की मूल प्रति दी गई जिसे हम पहले ही दे चुके है।

लियाकतअली खा न जो यह कहा कि उन्होने सारी शर्तें जिन्ना की सहमति लिए बगर खुद अपनी निजी हैसियत म की थी उस पर आसफअली ने अखबारों को एक वक्तव्य दिया। जिन्ना को क्यो नही बताया?" शीर्षक से उनका वह वक्तव्य 3 सितम्बर, 1945 के बाम्बे क्रानिकल म प्रकाशित हुआ। उसम उन्होंने कहा कि 'अतरिम सरकार सम्बन्धी देसाई लियाकत योजना का कच्चा चिट्ठा नवाबजादा लियाकतअली खा ने खोलकर रख दिया है लेकिन उससे यह बात स्पष्ट नही होती और अचरज जसी बात लगतीहै कि मुस्लिम लीग के अध्यक्ष को उसकी जानकारी क्यो नही दी गई ?'

इधर बबई म जिन्ना ने एक वक्तव्य म कहा 'मुझे इसके बारे म इससे ज्यादा कुछ मालूम नही कि नवाबजादा लियाकतअली खा से भूलाभाई के साथ उनके समझौते की अफवाह के बारे म पूछे जाने पर उन्होने उसे झूठी बकवास बतलाया।'

आसफअली ने अपने वक्तव्य के अत मे यह भी कहा 'गुप्त समझौते कभी अभीष्ट नही, भले ही दलो के जिम्मेदार नेता अपनी निजी हैसियत स ही उन्हे क्यो न करें। जनता के हित से सम्बन्धित मामले तो स्पष्ट रूप म जनता के सामने आने चाहिए, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को खुद ही उनके बारे म निर्णय करने का अवसर मिले।'

भूलाभाई ने भी जवाबी वक्तव्य दिया, जो 11 सितम्बर के बाम्बे क्रानिकल म इस शीर्षक से प्रकाशित हुआ—"लियाकत ने जिन्ना से सलाह ली—देसाई का

वक्तव्य।" उसमे भूलाभाई ने वस्तुस्थिति इस प्रकार रखी 'बबई लौटने पर नवाबजादा लियाकतअली खा का वक्तव्य मुझे बताया गया, जिसे देखकर मुझे सचमुच आश्चय हुआ। गाधीजी से 28 जून को हुई पत्र प्रतिनिधि की भेंट का हाल जब मैंने अखबारो मे देखा, जिसम समझौते का प्रकाशित करने का सुझाव था, तब तत्काल मैंने नवाबजादा साहब से सम्पक कायम कर समझौते को उसके मूल रूप मे, प्रकाशित करने के लिए कहा। ऐसा होता तो सब बातें अपने आप साफ हो जाती, जिनको नवाबजादा साहब ने तोड मरोड कर गलत रूप म पेश किया है। मगर दुर्भाग्यवश उस वक्त नवाबजादा साहब ने उसका प्रकाशन पसद नही किया। अब उन्होने मुझ कुछ बताए बगर ही उसे प्रकाशित किया है। अब जब प्रकाशित कर ही दिया गया है तो मैं यही कह सकता हू कि वक्तव्य सारे मामले को सही रूप मे पेश नही करता।

'पहली बात तो यही है कि वक्तव्य म इस बात का कोई स्पष्टीकरण नही है कि समझौता होने के बावजूद पिछले कुछ महीनो मे वह उसस लगातार बिलकुल इनकार क्यो करते रहे? जनता, अब इस बात को समझ सकती है कि मुझे कितनी परेशानी होती होगी। जब नवाबजादा साहब असेम्बली के मच स तथा अपने अ य भाषणों मे प्रयत्नपूवक इस बात का खडन करत रहे कि गतिरोध को हटाने के लिए मेरे और उनके बीच कोई समझौता हुआ है फिर भी अगर उनकी बात को गलत बताकर उनके साथ सावजनिक विवाद म मैं नही पडा ता वह सिफ इसीलिए कि ता कालिक समस्या को सुलझाने का रास्ता निकलने की अभी भी मुझे आशा थी।

"समझौते के बारे मे नवाबजादा साहब स मेरी कई बार बातचीत हुई। बातचीत म मैंने जिन्ना से इस बारे म बात करने को कहा था और बाद म उनसे मुझे मालूम हुआ कि उन्होने बात कर ली है। इसके बाद 3 व 4 जनवरी का मैं सेवाग्राम मे गाधीजी से मिला और जो कुछ हुआ था उसका सार उन्ह बताया। उनकी सहमति पाकर आगे की बातचीत के लिए मैं वापस दिल्ली गया और गाधीजी की सहमति की बात बताकर, समझौते की शर्तों को लेखबद्ध करने के लिए कहा। तदनुसार समझौते के दस्तावेज की दो प्रतिया तयार कर 11 जनवरी को नवाबजादा

से मिला और उन पर हम दोनों ने अपने दस्तखत किए। एक प्रति उन्होंने रखी और एक मैंने। उस समय भी मैंने उन्हें बताया था कि समझौते का सार मैंने गांधीजी को बता दिया है और उस पर उनकी सहमति है।"

इसके बाद भूलाभाई ने समझौते से यह उद्धरण दिया "उपयुक्त समझौते के आधार पर कोई ऐसा रास्ता निकालना होगा कि गवर्नर जनरल की तरफ से ऐसा प्रस्ताव या सुझाव आए कि उनकी इच्छा है कि केन्द्र में कांग्रेस और लीग की सहमति से अंतरिम सरकार बने और इसके लिए श्री जिन्ना या श्री देसाई को इकट्ठे या अलग-अलग जब वह आमंत्रित करें तो उपयुक्त योजना प्रस्तुत की जाए और वे सरकार में शामिल होने की रजामंदी जाहिर करें।" भूलाभाई ने बताया कि समझौते के इस उद्धरण से स्पष्ट है कि नवाबजादा ने इस संबंध में श्री जिन्ना से पहले जरूर बातचीत कर ली होगी। ऐसा न होता तो समझौते में, जिस पर उनके हस्ताक्षर मौजूद हैं, ऐसे इकरार का समावेश हो ही नहीं सकता था।'

वक्तव्य में अंत में उन्होंने कहा कि नवाबजादा और लीग के अध्यक्ष दोनों के ही समझौते से इनकार कर देने के कारण अब उसका कोई महत्व नहीं रहा, फिर भी मैंने यह जो जवाब दिया है वह सिर्फ इसीलिए कि 'जनता में कोई गलत फहमी न रह जाए।"

समझौता करने वाले दोनों नेताओं के विवाद का अंतिम दौर 18 सितम्बर 1945 को जारी किए उस वक्तव्य से सामने आया जो 21 सितम्बर के 'बाबे क्रानिकल' में इस शीर्षक से प्रकाशित हुआ था—"भूलाभाई को लियाकत का जवाब" इस वक्तव्य में लियाकतअली खां ने कहा कि भूलाभाई को इस बात का बखूबी पता था कि समझौता कोई नहीं हुआ था, जो कुछ था वह विचार के लिए कुछ प्रस्ताव मात्र थे। उन्होंने उसे समझौते का नाम कैसे दिया इसका कारण तो वही जानते होंगे। जहां तक जिन्ना से परामर्श का सवाल है उन्होंने कहा "श्री देसाई जब यह कहते हैं कि मुझसे उन्हें मालूम हुआ कि श्री जिन्ना से सलाह कर ली गई है तो मुझे लगता है कि उनकी याददाश्त ठीक तरह साथ नहीं दे रही है। मैंने उनसे ऐसा कभी नहीं कहा। इसके विपरीत जब जब मुझसे उनकी बात हुई

मैंने उनको बिल्कुल साफ तौर पर बताया कि मैंने जो कुछ कहा वह मेरा निजी विचार है और श्री जिन्ना से इस बारे में कोई सलाह-मशवरा नहीं हुआ है।"

अब जब इस विषय के मुख्य तथ्य सामने आ चुके हैं और उपलब्ध दस्तावेजों की छानबीन की जा चुकी है, हम पहले उठाए उन प्रश्नों का जवाब देने की कोशिश करेंगे जिनके स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। भूलाभाई ने जो कुछ किया वह गांधीजी की जानकारी में उनकी सम्मति और सहमति से किया, गांधीजी के वक्तव्यों को देखते हुए यह असंदिग्ध है। गांधीजी ने यह भी कभी नहीं कहा कि भूलाभाई ने इस संबंध में उनकी सलाह की कोई उपेक्षा की या उन्हें जिस हद तक जाने को कहा था उससे आगे बढ़ गए।

प्यारेलाल ही अकेले ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने अपनी किताब (महात्मा गांधी—दी लास्ट फेज, खंड 1 पृ० 126) में यह कहा है कि भूलाभाई ने गांधीजी के आदेश का पूरी तरह पालन नहीं किया। गांधीजी तथा अन्य लोगों के उद्धरण देकर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है "गांधीजी द्वारा लगातार यह चेतावनी देने पर भी कि कोई वचन देने से पहले, सब बातें लिखित होनी चाहिए और साथ ही इस बात का भी निश्चय कर लेना चाहिए कि जिन्ना की उस पर सहमति है या नहीं, ऐसा मालूम पड़ता है, परिणाम की अधीरता में उन्होंने अपनी दूरदर्शिता और वकालती कुशलता की उपेक्षा कर, गांधीजी के सुझाव के अनुसार यह प्रारंभिक सावधानी नहीं बरती।" लेकिन जिन वचनों से श्री प्यारेलाल ने उद्धरण दिए हैं, उनकी बारीकी से छानबीन करने पर, वैसा निष्कर्ष नहीं निकलता जैसा उन्होंने निकाला है। आश्चर्य इस बात पर होता है कि प्यारेलाल ने गांधीजी के उन वक्तव्यों का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया जिनमें उन्होंने भूलाभाई को दोषमुक्त किया है। इस बात को भी प्यारेलाल ने दरगुजर किया है कि उनकी तरह गांधीजी ने भूलाभाई पर असावधानी का कोई दोषारोपण नहीं किया। यह भी बड़े आश्चर्य की बात है कि मौलाना आजाद की किताब के प्रकाशित होने पर भी, प्यारेलाल की किताब में समझौते और उस पर कार्य समिति के रुख संबंधी मौलाना आजाद के विवरण का कोई जिक्र तक नहीं किया गया है। इस सबसे यह माने बिना नहीं रहा जा सकता कि कार्य

लियाकतअली द्वारा जारी किए गए वक्तव्य पर उन्होने (अपनी 'पाथवे टु पाकिस्तान' पुस्तक पृ० 326 31 मे) लिखा है "मैं इस नतीजे पर पहुंचा हू कि यह वक्तव्य शायद मि० जिन्ना के कहने पर दिया गया है, हालांकि नवाबजादा उसी नीति पर चल रहे थे जिस पर केन्द्र मे राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिए स्वय जिन्ना साहब 1940 से चल रहे थे।"

कायसमिति की उपेक्षा या उसकी पीठ मे छुरा भोकने के दोषारोप का खुद गाधीजी न खुलआम गलत बताया है जसाकि गाधीजी के वक्त य का उल्लेख करके, पहले बताया जा चुका है।

सवाल यह है कि भूलाभाई ने समझौते के लिए जो प्रयत्न किया, उसपर रिहाई के बाद काय समिति के सदस्यो न उनके विपरीत रुख क्यो लिया? जिन भूलाभाई ने गतिरोध को दूर करने का प्रयत्न किया उनके प्रति कायसमिति का ऐसा रुख क्या यथोचित कहा जा सकता है। सौभाग्यवश इस प्रश्न के उत्तर के लिए हम अत्यन्त प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध है। भला मौलाना आजाद से अधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय और कौन हो सकता है जो उस समय कांग्रेस के अध्यक्ष थे? अध्यक्ष के नाते कायसमिति की बठक की अध्यक्षता उन्होने ही की होगी विचार विनिमय मे उनका भाग रहा होगा और निणय भी उन्ही की सहमति से हुआ होगा। इस सबध म उनका कहना है '1945 म जब हम जेल से छूटकर बाहर आए तब हम सारी बातें बताई गइ और कांग्रेसजनो म उस पर काफी बहस मुबाहसा हुआ। बदकिस्मती की बात यह है कि इसमे इस बात की हमेशा उपेक्षा हुई कि भूलाभाई ने जो कुछ किया वह गाधीजी की जानकारी मे और उनकी इजाजत से ही किया। सरदार पटल ने इसम खास दिलचस्पी ली और किसी न किसी तरह ऐसा असर पदा हो गया कि भूलाभाई ने कांग्रेस को अधेरे म रखते हुए लियाकत अली के साथ समझौता करके एक्जीक्युटिव कौंसिल म जाने की कोशिश की है। जसाकि मैं पहले बता चुका हू, कांग्रेस म आकर भूलाभाई जिस तेजी से आगे बढ उससे बहुत से कांग्रेसी उनसे ईर्ष्या करने लगे थ। इसे उन्होने कांग्रेस के प्रति उनकी गरवफादारी समझा और उनके प्रति अपनी नाराजगी जाहिर करने का उन्हें यह बहाना मिल गया। भूलाभाई के विरोधियो न उनके निजी जीवन को लेकर

गांधीजी के भी कान भरे और उन्हें भी उनके खिलाफ कर दिया। उन पर जो दोष लगाए गए उनमें से ज्यादातर झूठे थे पर महीनों उनका प्रचार होते रहने से भूलाभाई के खिलाफ हवा बहनी स्वाभाविक थी। इससे उन्हें ऐसी हानि हुई जिसकी पूर्ति फिर नहीं हो पाई।"

मौलाना आज़ाद ने आगे बताया है कि गांधीजी को उनके खिलाफ करने के लिए कुछ लोगों ने यह तरीका अपनाया कि पहले गांधीजी के निकटवर्ती लोगों को उनके खिलाफ उभारना शुरू किया। तरह-तरह के मनगढ़न्त किस्से भूलाभाई के खिलाफ उन तक पहुंचाए गए कि उनके द्वारा गांधीजी तक वे पहुंचे बिना नहीं रहेंगे। गांधीजी आमतौर पर मनगढ़न्त किस्सों और दोषारोपणों पर ध्यान नहीं देते थे। उन्हें दरगुजर करने की उनमें क्षमता थी। लेकिन अपने खास आदमियों से कोई बात बार-बार सुनकर कभी-कभी उससे प्रभावित हो जाना अस्वाभाविक नहीं था। मुझे याद है कि मोतीलाल नेहरू के खिलाफ बातें सुन-सुनकर इसी तरह एक बार उनके प्रति भी उनका मन खराब हो गया था। जवाहरलाल के साथ भी एक बार ऐसी ही नौबत आई थी। लेकिन दोनों ही बार सही बात का जब उन्हें पता चल गया तो उन्होंने अपनी गलती सुधार ली थी। यह बदकिस्मती की ही बात है कि भूलाभाई के मामले में ऐसा नहीं हुआ और इस तरह गांधीजी उनसे विमुख हो गए।

"यह मैं पहले ही बता चुका हूं कि भूलाभाई जब गांधीजी से मुस्लिम लीग के साथ समझौते की बातचीत शुरू करने की इजाज़त लेने गए उस दिन गांधीजी का मौन दिवस था, इसलिए गांधीजी ने जवाब लिखकर दिया। उस कागज को भूलाभाई ने सम्हाल कर रख लिया था। सरदार पटेल तथा दूसरे लोगों को उसे दिखाकर उन्होंने बताया कि समझौते की बातचीत मैंने गांधीजी की जानकारी में और उनकी रजामन्दी से की, इसलिए मुझे दोषी नहीं ठहराया जा सकता। उनका यह कहना बिलकुल ठीक था और दरअसल उनकी इस बात का कोई जवाब नहीं था। पर बदकिस्मती से उनकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया गया और उनके सम्बन्ध में षड्यन्त्र की अफवाह बराबर फैलती रही।' (इंडिया विन्स फ्रीडम, पृ० 136)

यह एसा विवरण है जिसे असंदिग्ध रूप से सही माना जा सकता है। भूलाभाई जैसे प्रमुख लोकसेवक के साथ, जिसने बरसों तक कांग्रेस की बड़े उत्साह के साथ विशिष्ट सेवा की किस तरह पेश आया गया, इससे यही पता नहीं चलता बल्कि ऐसा क्यों किया गया इसकी असलियत भी सामने आती है।

भूलाभाई के साथ सरदार पटेल के शुरू में बड़े अच्छे सम्बन्ध थे और बंबई में काफी दिनों तक वह उनके मेहमान भी रहे, लेकिन सब जानते हैं कि बाद में उनके सम्बन्ध अच्छे नहीं रह गये। मौलाना आजाद ने यह बताया ही है कि भूलाभाई ने थोड़े ही दिनों में अपना जो स्थान बना लिया उससे कुछ पुराने नेता खुश नहीं थे और उनसे ईर्ष्या करते थे। तो क्या यह बात तो नहीं है कि सम्भावित मे कल्पित अंतरिम सरकार में भूलाभाई कहीं उनके प्रतिद्वंद्वी न बन जाएं, इस आशंका के कारण उनको रास्ते से बिल्कुल हटा देना ही ठीक समझा गया? इस बात का तो मुझे भी पता है कि उन दिनों कांग्रेस के ही अनेक लोगों और बुद्धिजीवियों का यह आम ख्याल था कि कार्यसमिति ने भूलाभाई के साथ जो सलूक किया वह एक तरह उन्हें प्रतिद्वंद्वी मानकर रास्ते से हटा देने की दृष्टि से ही किया। इसे असंभव भी नहीं कहा जा सकता। सभी जानते हैं कि राजनीति में सत्ता के लोभ और महत्वाकांक्षा की ही तूती बोलती है, जिसके कारण न जाने कितने अन्याय और क्रूर काम किए जाते हैं।

मौलाना आजाद ने इस मामले में सरदार पटेल द्वारा खास दिलचस्पी लेने की जो बात कही है उसके कारण मेरा यह कर्तव्य हो जाता है कि स्वयं सरदार ने मुझे इस सम्बन्ध में जो कुछ मालूम हुआ वह भी बता दूं। उससे इस अन्याय में सरदार का जैसा हाथ समझा जाता है उससे बिल्कुल विपरीत रूप सामने आता है। बात यह हुई कि 1946 में जब भूलाभाई गंभीर रूप से बीमार थे, कांग्रेस के सामने आजाद हिन्द फौज के कुछ ऐसे लोगों के बचाव का सवाल आया जिन पर नवम्बर दिसम्बर 1945 में लाल किले में चले मुकदमे के फैसले के बावजूद सरकार मुकदमा चलाना चाहती थी। सरदार मुझे अच्छी तरह जानते थे, इसलिए मुझे उनके बचाव का काम सम्हालने को कहा। मगर उन्हें यह मालूम था कि वकीलों तथा अन्य अनेक लोगों की इस आम धारणा के कारण कि भूलाभाई को चुनाव में उम्मीदवार तक

न बनाकर कांग्रेस ने उनके साथ भारी अन्याय किया है मैं शायद राजी न होऊं इसलिए उन्होंने मुझे मिलने को बुलवाया और हमारी लम्बी बातचीत हुई। बातचीत का सार यह था कि गांधीजी के पास भूलाभाई के निजी जीवन सम्बन्धी जो बातें पहुंची थीं, उनके कारण ही उन्होंने उन्हें असेम्बली में कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में न भेजने का आग्रह किया। सरदार ने तो उल्टे भूलाभाई के हक में बड़ा जोर लगाया और उनके साथ ऐसा अशोभनीय व्यवहार करने का विरोध किया। एक हद तक यह बात मौलाना आज़ाद ने जो कुछ कहा उससे मेल खाती मालूम पड़ती है।

यहां अपना एक संस्मरण देना भी अप्रासंगिक न होगा। भूलाभाई को जब यह मालूम हुआ कि कांग्रेस ने 1945 के चुनाव में उन्हें असेम्बली का उम्मीदवार नहीं बनाया है तो स्वभावतः उन्हें धक्का लगा और क्षोभ हुआ। शब्दों से तो नहीं पर कुछ रोषमिश्रित चुनौती के रूप में कुछ कांग्रेसी मित्रों से उस समय उन्होंने कहा था कि कांग्रेस को ढूंढने पर भी असेम्बली के लिए मेरे जैसा उपयुक्त व्यक्ति दूसरा कोई नहीं मिलेगा। उनके उन मित्रों में से दो ने—जिनमें से एक उनके निकट साथी थे और दूसरे उनके प्रशंसक—अपने नेता पर इस तरह मुसीबत आने पर उनका साथ छोड़ दिया। उनके नाम बताने की जरूरत नहीं पर यह निश्चय है कि ऐसा करके उन्होंने राजनीतिक अवसरवादिता दिखाई। सरदार का नाम लेकर मुझ से उन्होंने चुनाव में भूलाभाई की जगह कांग्रेस का उम्मीदवार बनने के लिए कहा। मेरे लिए तो ऐसे अनुरोध का एक ही जवाब हो सकता था और तत्काल वही मैंने उन्हें दिया। मैंने उन्हें बताया कि जो आदमी वकालत के धंधे में बरसों तक भूलाभाई के इतना निकट रहा उससे यह आशा करना तो दुराशा है कि कांग्रेस में वह उनकी जगह ले—खासकर तब जब कांग्रेस ने बड़े अनुचित और क्रूर ढंग से उन्हें हटाया है। मेरे इस इनकार का भूलाभाई को बाद में उस वक्त पता लगा जब वह आजाद हिन्द फौज के मुकदमे में पैरवी कर रहे थे। तब 9 नवम्बर 1945 को उन्होंने मुझे लिखा था मेरे रवाना होने के पहले ने मिलकर आपको केन्द्रीय असेम्बली में लाने का जो प्रयत्न किया था उसके बारे में धन्यवाद। आपने उस पर जो रुख लिया उससे मुझे खुशी है। मैं आपको अच्छी तरह जानता हूं आप जैसे उच्चाशय और मुझसे स्नेह रखने वाले आदमी से यही आशा थी। कांग्रेस

का जो उददश्य है उसकी पूर्ति के लिए—यानी देश की आजादी के लिए ही—मैंने काम किया और उसमे कोई कसर नही रखी। लेकिन आप जानते हैं दुनिया के इतिहास मे ऐसे उदाहरणो की कमी नही कि किसी भी सगठन का नियत्रण किसी भी समय ऐसे लोगो के हाथ म जा सकता है जो आपसे सहमत न हो और आपको उससे हटाने म ही अपना हित समझें। जो कुछ मेरे साथ हुआ, उसे इसी भावना स अनासक्त रूप मे मैंने ग्रहण किया है।''

काग्रेस कायसमिति न जिस प्रकार बिना कारण अन्यायपूवक भूलाभाई को असेम्बली मे काग्रेस की ओर से जाने से रोका, उसकी विविध लेखको न आलोचना की है, जिसे अस्वाभाविक नही कहा जा सकता।

डा० नारायण भास्कर खरे ने गाधीजी और कायसमिति की अपनी किताब ('माई पोलिटिकल मेमायस) मे इसके लिए कडी आलोचना की है। जो निष्कष उन्होने निकाले उनका आधार उन्होने भूलाभाई स हुई अपनी बातचीत को बताया है। उन्होने तो यहा तक कहा है कि गाधीजी ने न केवल कायसमिति के रुख को न्यायोचित बताया बल्कि भूलाभाई से यह भी अनुरोध किया कि वाइसराय की एक्जीक्युटिव कौंसिल की सदस्यता जसे नगण्य पद का लोभ वह न करें। आगे उन्होने यह भी बताया है कि भूलाभाई ने इस पर जब यह कहा कि यह पद तो मैं चाहू तो अभी भी मुझे मिल सकता है, तो गाधीजी ने उन्हे लिखित रूप म यह वचन देने के लिए कहा कि वह एसा प्रयत्न नही करेंगे। डा० खरे और गाधीजी के मतभेदो का सभी को पता है इसलिए भूलाभाई स बातचीत का जो विवरण डा० खरे ने दिया है उस पर विश्वास करना लखक के लिए कठिन है। वह असभव और अजीब जान पडता है।

राजेद्र बाबू ही ने स्थिति का सही निरूपण किया है। उन्होने अपनी आत्म कथा म इस सम्बन्ध म लिखा है

'केन्द्र म सरकार बनाने के लिए काग्रेस ने अपनी ओर स जो नाम लार्ड वेवल को दिए उनमे भूलाभाई का नाम नही था। केन्द्रीय असेम्बली के बहिष्कार से पहले वह उसमे काग्रेस दल के नेता थे और उस रूप म उन्होने बडा नाम कमाया

था। 1928 में बारडोली सत्याग्रह के समय वह कांग्रेस में आए और तभी से उन्होंने सक्रिय रूप में कांग्रेस का काम किया जिसके लिए जेल जाने में भी कभी नहीं हिचकिचाए। उनकी योग्यता और त्याग के कारण ही उन्हें कार्यसमिति का सदस्य भी बनाया गया। चुनाव में कांग्रेस का उम्मीदवार न बनाने पर उन्हें गहरा धक्का लगना स्वाभाविक था। वह पदलोलुप नहीं थे लेकिन इस बात का उन्हें बड़ा रंज हुआ कि उन्हें उसके योग्य नहीं समझा गया। कांग्रेस ने जो नाम दिए थे वे यद्यपि प्रकाशित नहीं किए गए लेकिन यह बात छिपी बिना न रहा कि उनको शामिल नहीं किया गया है और इस लोगों ने पसंद नहीं किया। केन्द्रीय असेम्बली के सदस्यों ने तो इसे बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण माना।

मूलाभाई को उससे अलग क्यों रखा गया इसके कारण बताना मेरे लिए न तो उचित है और न आवश्यक लेकिन अपने बारे में मुझे बताना ही चाहिए कि जो सूची दी गई उससे खुद मुझे संतोष नहीं था यद्यपि उसका विकल्प भी कुछ नजर नहीं आता था कांग्रेस के माध्यम से की गई उनकी महान देश सेवा के बावजूद उन्हें लार्ड वेवल की मिनिस्टरी बनाने के लिए दी गई कांग्रेस की सूची में शामिल नहीं किया गया, इस पर मैं अफसोस जाहिर किए बिना नहीं रह सकता।"

राजेन्द्रबाबू जैसे कांग्रेस के बड़े सम्मानित नेता ने समय पर स्पष्ट रूप से जो कहा है, वही इस दुर्भाग्यपूर्ण काले अध्याय पर इतिहास का निश्चित निर्णय हो सकता है।

अंत में गांधीजी के उस पत्र का उल्लेख भी करना ही चाहिए जो पूना से 21 अक्तूबर, 1945 को उन्होंने भूलाभाई को लिखा था। पत्र गुजराती में लिखाया हुआ है और अंत में हस्ताक्षर की जगह 'बापू के आशीर्वाद' गांधीजी के अपने हाथ का लिखा हुआ है। इस सारे घटनाचक्र में गांधीजी का क्या योग रहा, इस पर उससे प्रकाश पड़ता है, अतः उसका पूरा अनुवाद अगले पृष्ठ पर दिया जाता है।

पूना,
21 अक्तूबर, 1945

प्रिय भूलाभाई

मेरे हाथ का लिखा पढना मुश्किल है, इसका मुझे पता है, इसलिए खुशखत लिखनेवाले अन्य व्यक्ति को बोलकर लिखा रहा हूं।

लेजिस्लेटिव असेम्बली के चुनाव में आपको उम्मीदवार बनाने के लिए मेरे और सरदार दोनों के पास बराबर तार आ रहे हैं। खुद मैं तो चुनाव में कुछ नहीं कर रहा हूं। सरदार के पास जो दरबार लगा रहता है उसका भी मुझे कोई पता नहीं। आमतौर पर इस बार में वह मुझसे कोई पूछताछ नहीं करते, न कोई बात ही करते हैं। मैं अपने रास्ते चलता हूं वह अपने। इस समय हमारा साथ एक कारण से है, उनकी प्राकृतिक चिकित्सा चल रही है जिसमें मेरा बड़ा विश्वास है। चीर फाड़ में काफी खतरा है। डा० गिल्डर को छोड़ और कोई डाक्टर शल्यचिकित्सा के पक्ष में नहीं है। प्राकृतिक चिकित्सा में मेरा विश्वास है इसी लिए मैं उन्हें यहां डा० मेहता के चिकित्सालय में ले आया हूं और उनकी प्राकृतिक चिकित्सा करा रहा हूं। डा० मेहता इसमें माहिर हैं, जबकि (प्राकृतिक चिकित्सा का) मेरा ज्ञान तो बिल्कुल अधूरा है। लेकिन यह सब तो भूमिका मात्र है।

असली बात तो यह है कि आप के बारे में सरदार के पास जो भी बात आती है उसे वह मेरे पास भेज देते है, ताकि मैं जैसा ठीक समझूं वैसा करूं। आपने मेरी बात मंजूर की है इसलिए मैं समझता हूं कि लेजिस्लेटिव असेम्बली में बने रहने की खुद आपकी कोई महत्वाकांक्षा नहीं है। इसीलिए मैं मानता हूं कि इसके लिए जो तार आ रहे हैं वे आपकी प्रेरणा से नहीं आ रहे। कुछ बड़े लोग स्वभावतः आपको लेजिस्लेटिव असेम्बली में देखना चाहते हैं। सच तो यह है कि इस निर्णय में मेरा हाथ न होना तो आपको असेम्बली में लाने के लिए जो दबाव डाला जा रहा है उससे आप सरदार भी ढीले पड जाते। लेकिन मैं दृढ हूं, क्योंकि मात्र आपके हित की दृष्टि से ही मैंने निर्णय किया है। मैं तो आपसे महत्त्व का काम लेना चाहता हूं—यदि आप मेरे लिए इसे कर सकें। आप जनसाधारण के प्रतिनिधि बनें, ऐसी मेरी इच्छा है। बुरा मैं आपका हर्गिज नहीं मानता। आप भी 125 वर्ष की आयु तक जिन्दा रहने की आकांक्षा क्यों न रखें। आप मेरी तरह ऐसा

इच्छा न रखते हों, तो भी मैं चाहता हूं कि दूसरे भी जनसाधारण की सेवा के लिए, इतना जीने की इच्छा रखें। मैं जो इच्छा रखता हूं उसके लिए शक्तिभर प्रयत्न भी करता हूं। मृत्यु आज ही आ जाए तो उसका भी मुझे कोई भय नहीं है। अलबत्ता आकांक्षा और चेष्टाप्रतिम सासतक नहीं छोड़ंगा क्योंकि मैं लोगों की सेवा करना चाहता हूं और अभी तक पूरी तरह ऐसा कर नहा पाया हूं। पूरी सेवा करने का मेरा इरादा है और मैं चाहता हूं कि हम सभी ऐसी इच्छा रखें।

इस भूमिका के साथ आपको मेरी सलाह है कि इस बार में आप खुद ही एक शिष्ट वक्तव्य दें। वक्तव्य में आप उन लोगों को धन्यवाद दें जो आपके लिए स्वेच्छा से यह प्रयत्न कर रहे हैं, पर साथ ही ऐसी घोषणा भी करें कि फिलहाल आप असेम्बली में नहीं जाना चाहते असेम्बली से बाहर रहते हुए जो सेवा की जा सके वही आप करना चाहते हैं और फिलहाल ऐसा ही करते रहेंगे। इसके अलावा यह भी लिखें कि अगर आपने दीर्घायु पाई और असेम्बली में जाने की आपकी इच्छा हुई तो आप स्वयं मतदाताओं से वैसा कहने में संकोच नहीं करेंगे।

(आजाद हिन्द फौज के) बन्दियों की इस समय आप जैसी पैरवी कर रहे हैं उस पर मुझे प्रसन्नता है। यह तो आपका क्षेत्र है ही और इसमें आपको शोहरत भी मिलती। पर मेरी यह भी इच्छा है कि जवाहरलाल और सरदार जिस तरह जनता के निकट सम्पर्क में आए उसी तरह आप भी करें। उनके बराबर तो नहीं पर मौलाना साहब (आजाद) भी थोड़ा जनसम्पर्क रखते हैं। इसका सर्वोत्तम उदाहरण तो मैं शायद राजेन्द्र बाबू का ही दे सकता हूं। राजेन्द्र बाबू जो रास्ता दिखाते हैं उसी पर बिहार चलता है, वह बिहार के पीछे नहीं चलते। और भी ऐसे उदाहरण दिए जा सकते हैं, पर निश्चय ही आपको उसकी जरूरत नहीं है। मेरे ख्याल में इतना भी ज्यादा ही है। आपके मामले में तो निश्चय ही अनावश्यक है। फिर भी मैं लोभसंवरण नहीं कर सकता। और लोभ को आध्यात्मिक रूप में लें तो उसके मात्र आध्यात्मिक होने के कारण उसको छिपाने की कोई जरूरत नहीं है।

आशा है कि आप ठीक हैं। अपने काम में आप कामयाब होंगे, इसका मुझे पूरा भरोसा है।

बापू के आशीर्वाद

इस पत्र से बिलकुल साफ है कि असेम्बली के कांग्रेस उम्मीदवारों की सूची में भूलाभाई का नाम न रखने में गांधीजी का रुख ही निर्णायक रहा। यह भी मालूम पड़ता है कि भूलाभाई इस स्थिति को स्वीकार कर लें और स्वतन्त्र रूप में असेम्बली के लिए चुनाव न लड़ें इसके लिए भी गांधीजी ने उन्हें समझाया बुझाया था। पत्र में कूटनीति और मीठा आग्रह भरा है और भूलाभाई के सामने असेम्बली के बाहर जनता में काम करने का मनोहर चित्र खींचा गया है। ऐसे सार्वजनिक जीवन का लुभावना चित्र खींचकर राजनीतिज्ञ महात्मा ने अपनी राजनीतिक चतुरता और मीठे ढंग से समझाने बुझाने की क्षमता का परिचय दिया है। शायद अहिंसा, असहयोग, सविनय अवज्ञा और चर्खे के बारे में भूलाभाई के जो विचार थे उनकी गांधीजी को जानकारी थी। भूलाभाई ने असेम्बली में जो प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया था और वाइसराय तथा मुसलमान नेताओं का विश्वास प्राप्त करने में उन्हें जो सफलता मिली थी उसके कारण गांधीजी को उनकी तरफ से संभवतः यह आशंका भी हो गई थी कि उसके कारण केन्द्रीय असेम्बली द्वारा बनने वाले मन्त्रिमंडल में कहीं वह ही सर्वप्रथम स्थान न प्राप्त कर लें। जो भी हो, यह स्पष्ट है कि भूलाभाई को असेम्बली से बाहर रखने की जो कार्रवाई कार्यसमिति ने की, उसमें गांधीजी का पूरा समर्थन था। यह पत्र भी निस्संदेह एक चतुर प्रयत्न था कि भूलाभाई स्वयं सार्वजनिक वक्तव्य द्वारा घोषणा कर दें कि असेम्बली में वह जाना ही नहीं चाहते, जिससे सरदार व गांधीजी पर उन्हें कांग्रेस का उम्मीदवार बनाने का जो दबाव पड़ रहा है वह ढीला पड़ जाए।

भूलाभाई को इन सब बातों से निश्चय ही बड़ा क्षोभ हुआ। इसमें भी कोई शक नहीं कि इससे जो मानसिक वेदना उन्हें हुई, उससे पहले ही गिर रहा उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया। क्षोभ और मानसिक वेदना को अस्वाभाविक भी नहीं कह सकते, क्योंकि उनके साथ जैसा व्यवहार हुआ वैसे व्यवहार का ब्रिटेन या अन्य देशों के संसदीय दलों के इतिहास में कोई उदाहरण पाना कठिन है। फिर भी उनके दृढ संकल्प और ऊंचे मनोबल की तारीफ करनी पड़ेगी कि जिन्होंने उनके साथ ऐसा क्रूर व्यवहार किया उनके प्रति कटुता या प्रतिशोध की कोई भावना उन्होंने अपने मन में नहीं आने दी। यही कारण है कि कार्यसमिति द्वारा खुले तौर पर अपमानित होने पर भी जिस संगठन (कांग्रेस) की सेवा में उन्होंने अपनी महान

बुद्धि और प्रतिभा का उपयोग करने मे कोई कसर नही रखी थी उसके प्रति उनकी वफादारी मे कोई कमी नही हुई और जरूरत पडने पर बीमार होते हुए भी उसकी सेवा का अवसर उपलब्ध होने पर एक बडी जिम्मेदारी उठाने को वह तैयार हो गए। राजेन्द्र बाबू ने बताया है कि 'इसके (उनके साथ जो व्यवहार हुआ उसके) बावजूद, जब सरकार ने आजाद हिन्द फौज के मेजर जनरल शाहनवाज खा और उनके साथियो पर बगावत का मुकदमा चलाया और हमने भूलाभाई से उनकी परवी करने को कहा तो स्वास्थ्य ठीक न होते हुए भी खुशी के साथ उन्होने हमारी बात मान ली। इस मुकदमे की परवी मे उनकी असाधारण वकालती कुशलता प्रकट हुई और बचाव के लिए उन्होने जो दलीलें दी उनकी गिनती दुनिया मे हमेशा सर्वोत्तम दलीलो मे की जाएगी। इस कठिन काय म उन्होने जो भारी परिश्रम किया एक तरह स उसी से उनका प्राणान्त निकट आया। मुकदमे के बाद उनकी बीमारी ने गभीर रूप ले लिया और उससे वे बच नही पाए।

भूलाभाई के साथ हुए अन्याय को जनता तो कभी नही भूल पाई। यही कारण है कि कायसमिति और गाधीजी ने उनके साथ जसा सलूक किया उसके बावजूद आजीवन उनकी लोकप्रियता ही नही बनी रहा बल्कि आजाद हिन्द फौज के मुकदमे म उन्होने जो स्मरणीय काय किया, उसके कारण इहलीला समाप्त करने के कुछ महीना पहले वह बहुत लोकप्रिय बन गए थे।

11

आजाद हिन्द फौज का मुकदमा

भारत की स्वतन्त्रता के लिए विभिन्न समय पर अनेक शक्तियों ने काम किया। सुभाष बोस ने आजाद हिन्द फौज का सगठन कर उसके द्वारा भारत की स्वतन्त्रता के लिए जो वीरतापूर्ण प्रयत्न किया उससे भारत पर ब्रिटिश हुकूमत का जुआ ढीला पड़ने में निश्चय ही बड़ी मदद मिली।

राष्ट्रीय आन्दोलन की नीव, स्वराज और स्वतन्त्रता के ब्रिटिश विचारों से प्रभावित शिक्षित भारतीयों ने कुछ उदार हृदय अंग्रेजों की सहायता से डाली। भारतीय राष्ट्रीय महासभा की स्थापना 1885 में हुई जिसे आमतौर पर उसके अंग्रेजी नाम कांग्रेस से ही सब जानते हैं। उस पर जब तक गरम दल के नाम से मशहूर पक्ष ने कब्जा नहीं किया, उसका प्रारम्भिक स्वरूप बहुत कुछ ढीलाढाला ही रहा। कांग्रेस पर गरम दल का कब्जा हो जाने पर नरम दलवाले जिन्हें आमतौर पर माडरेट कहा जाता था और बाद में लिबरल कहा जाने लगा उससे अलग हो गए। अलग होकर उन्होंने अपना पृथक दल बनाया पर धीरे धीरे उनका असर कम होने लगा और देश में उनका कोई खास प्रभाव नहीं रहा। फिर भी प्रसंग पड़ने पर और खासकर कठिनाई तथा गतिरोध उपस्थित होने पर कांग्रेस को उनकी सलाह और सहायता का लाभ अवश्य मिला। बीसवीं सदी शुरू होने पर वैधानिक आन्दोलन के अलावा क्रान्तिकारी आन्दोलन भी शुरू हुआ। बंगाल, पंजाब युक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) और महाराष्ट्र के नौजवानों का इसमें विशेष योग रहा और उन्होंने देश सेवा के लिए आत्मत्याग और शहादत के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए। इसके बाद अहिंसा और सविनय अवज्ञा का गांधीवादी आन्दोलन आया।

इस प्रकार कुछ वर्षों तक देश की मुक्ति के लिए सर्वथा भिन्न और परस्पर विरोधी दो आदर्शों से प्रेरित लोगों ने काम किया। इनमें एक वर्ग हिंसा और ताकत में विश्वास रखने वाले नौजवान क्रान्तिकारियों का था। और दूसरा अहिंसा और कष्टसहन में विश्वास करनेवाले विनम्र सत्याग्रहियों का। सुभाष बोस मानो इन दोनों के बीच कड़ी की तरह थे। ऐसा मालूम पड़ता है कि गांधीजी के महान नेतृत्व से प्रभावित हो क्रान्तिकारियों के कुछ दल अहिंसात्मक सविनय अवज्ञा के उनके आन्दोलन में शामिल होकर उसके उत्साही कार्यकर्ता बन गए थे। लेकिन एक समय ऐसा आया जब क्रान्तिकारी प्रवृत्तियां और सत्याग्रहियों का अहिंसात्मक आन्दोलन दोनों शिथिल पड़ गए और विदेशी सत्ता ने स्वतन्त्रता की भारतीय मांग को अस्वीकार कर दिया। यह तो दूसरे विश्व युद्ध से उत्पन्न परिस्थिति का ही परिणाम था जिसने देश को स्वतन्त्रता का सुअवसर प्रदान किया।

सुभाष बोस ने 'दिल्ली चलो' नारे के साथ हजारों भारतीय सैनिकों का—जो उस समय जापान के कब्जे में आए भारतीय युद्धबन्दी थे—संगठन कर निश्चय ही बड़ी सूझबूझ और साहस का परिचय दिया। बड़े उपयुक्त समय उनके नेतृत्व में यह विजय यात्रा शुरू हुई, जिसके दो परिणाम हुए। एक तो यह कि खास तौर पर जिन भारतीय सैनिकों के सहारे ही भारत में ब्रिटिश शासन टिका हुआ था, उनकी वफादारी में गहरी दरार पड़ गई। दूसरा यह कि भारतीय सैनिकों की वफादारी संदिग्ध हो जाने से भारत में ब्रिटिश शासन की नींव ढीली पड़ गई और उसके लिए ऐसा संकटकाल उपस्थित हो गया जिसमें वह बहुत देर तक सुरक्षित रूप में यहां कायम नहीं रह सकता था। फरवरी 1946 में बम्बई में नौसेना की बगावत ने उसे और भी धक्का लगाया क्योंकि थल सेना के साथ अब नौसेना और वायुसेना की वफादारी भी असंदिग्ध नहीं रही। आजाद हिन्द फौज के कारनामों की खबरें भारत में भी पहुंचने लगीं और उससे देश में आनन्द की लहर ही नहीं आई बल्कि देशसेवा की तीव्र भावना भी व्यापक और अभूतपूर्व रूप में फैली। जिस देश को अंग्रेज लोग कोई डेढ़ सौ वर्ष से भी अधिक समय से शोषण कर रहे थे उससे चले जाने का अन्तिम और निश्चयात्मक रूप से उन्होंने जो निर्णय किया उसका कारण सम्भवतः दूसरे विश्वयुद्ध के फलस्वरूप उनका कमजोर पड़ जाना ही

था। यह तो सच है कि युद्ध म ब्रिटेन की जीत हुई, लेकिन इसके मूल्यस्वरूप विश्व म महाशक्ति की स्थिति को वह खो बठा। युद्ध के बाद वह उतना शक्तिशाली नहीं रहा। विश्व राजनीति के मच पर रूस और अमरीका ही, दुनिया के सबसे शक्तिशाली राष्ट्रो के रूप मे प्रतिष्ठित हो गए।

सुभाष बोस और आजाद हिंद फौज के वीरतापूर्ण कार्यों की गाथा, उपन्यास की तरह अदभुत और रोमाचकारी है। सुभाष जनवरी 1941 म किस तरह रहस्यपूर्ण ढग से भारत से गए किस तरह जमनी म उन्होने भारत की स्वतत्रता के लिए काम किया और अन्त म जब जापान ने युद्ध मे शामिल हो 1942 की फरवरी मे सिंगापुर पर कब्जा कर लिया तो किस तरह पनडुब्बी से वह दक्षिण पूव एशिया पहुच कर जापानी फौज के साथ हो गए ये सब कपोल कल्पनाए न होकर ऐसे ऐतिहासिक तथ्य हैं जिनका मेजर जनरल शाहनवाज तथा अन्य कइयो ने अपनी पुस्तको मे वणन किया है।[1]

लेकिन हम तो अपने उद्देश्य के लिए इस रोमाचक कथा क उस हिस्से पर ही नजर डालनी है जिसका सम्बध दक्षिण पूव एशिया मे 1943 से शुरू हुई घटनाओ से है। यह इसलिए आवश्यक है कि आजाद हिन्द फौज क तीन व्यक्तियो पर 1945 के नवम्बर म दिल्ली के ऐतिहासिक लाल किले म फौजी अदालत के सामने बगावत का जो मुकदमा चला उसकी बुनियाद वही था और उन घटनाओ को ही उनकी पैरवी करते हुए भूलाभाई ने अपनी अविस्मरणीय दलीलो का आधार बनाया था। इग्लण्ड के प्रधान न्यायाधीश (लार्ड चीफ जस्टिस) ने एक मशहूर मुकदमे की परवी पर जिन शब्दो का उपयोग किया था, उन्हीं शब्दो मे हम कह सकते हैं कि भूलाभाई के तक वकालत की सर्वोच्च परम्पराओ के अनुरूप और न्याय के हक म थे।

सिंगापुर का पतन 15 फरवरी 1942 को हुआ। सिंगापुर पर जापानी कब्जे के फलस्वरूप 40 000 से अधिक भारतीय सनिक युद्धबन्दी बने जिन्ह ब्रिटिश सरकार की ओर स कनल हण्ट ने जापान सरकार के प्रतिनिधि कनल फूजीवारा के

1 'आई० एन० ए० एण्ड इटस नेताजी' देखिए।

सुपुर्द किया। प्रवासी भारतवासी इससे पहले ही इण्डियन इण्डिपेंडेंस लीग (भारतीय स्वातन्त्र्य संघ) की स्थापना कर चुके थे जिसके विविध देशों से आए सौ से अधिक प्रतिनिधियों का जून 1942 में बैंकाक में एक सम्मेलन भी हुआ। इसी सम्मेलन में इण्डियन नेशनल आर्मी संगठित करने का विचार सामने आया और एक प्रस्ताव द्वारा जर्मनी में भारत की स्वतन्त्रता के लिए काम कर रहे सुभाष बोस को पूर्वी एशिया में आमन्त्रित किया गया। इधर कर्नल फूजीवारा ने एक भारतीय सैनिक अधिकारी कप्तान मोहनसिंह को इण्डियन नेशनल आर्मी संगठित कर भारत की स्वतन्त्रता के लिए काम करने की प्रेरणा दी। उन्होंने यह भी कहा कि भारत की स्वतन्त्रता के काम में इस सेना को जापान का पूरा सहयोग मिलेगा। तब भारी तादाद में जो भारतीय सैनिक युद्धबन्दी के रूप में अंग्रेजों द्वारा जापानियों को सौंप गए थे उनके सामने यह विचार रखा गया। काफी तादाद में जब उन्होंने इस विचार से सहमति प्रकट की, तब मोहनसिंह के ही सेनापतित्व में उसे संगठित किया गया।

लेकिन शुरू में ही मोहनसिंह और इंडियन इंडिपेंडेंस लीग के प्रवक्ताओं में मतभेद पैदा हो गए, इसीलिए काम ठीक से आगे नहीं बढ़ा और जून 1943 में जब सुभाष बाबू पूर्वी एशिया पहुंचे तभी उसने सक्रिय रूप धारण किया। सुभाष बोस ने इस सम्बन्ध में जापान के प्रधानमन्त्री तोजो से बात की, जिसके फलस्वरूप जापान की संसद में प्रधानमन्त्री ने घोषणा की "जापान ने इस बात का दृढ़ निश्चय किया है कि भारत से भारतीय जनता के दुश्मन अंग्रेजों को हटाकर उनके प्रभाव को नष्ट करने और भारत में सच्चे अर्थों में पूर्ण स्वाधीनता कायम करने के प्रयत्न में वह अपने सभी साधनों द्वारा पूरी मदद करेगा।" इसके बाद सुभाष बाबू सिंगापुर गए। वहां पूर्वी एशिया के विविध देशों में बसे हुए 20 लाख से अधिक भारतीयों का प्रतिनिधित्व करने वाले 5 000 से अधिक भारतीयों की उपस्थिति में उन्होंने इंडियन इंडिपेंडेंस लीग का अध्यक्ष पद ग्रहण किया। वहीं अध्यक्षासन से सुभाष बोस ने अपनी योजना की घोषणा की, जिसके अनुसार भारत को स्वतन्त्र कराने के उद्देश्य से आरजी हुकूमत (अस्थायी सरकार) बनाकर आजाद हिन्द फौज को भारत को स्वतन्त्र करने के लिए आगे बढ़ाना था। इंडियन नेशनल आर्मी को

यहां आजाद हिंद फौज का नाम दिया गया और 'दिल्ली चलो' उसका युद्धघोष बना।

आरज़ी सरकार का श्रीगणेश 21 अक्तूबर 1943 को एक सार्वजनिक समारोह में बड़े उत्साह के बीच हुआ। एक सरकारी ऐलान द्वारा आरज़ी हुकूमत के क्या काम होंगे यह बताया गया "आरज़ी हुकूमत भारत से अंग्रेजों और उन के साथियों को निकाल कर भारत को आजाद करने की लड़ाई शुरू करेगी। और उसका संचालन करेगी। इसके बाद वह (आरज़ी हुकूमत) ऐसी स्थायी राष्ट्रीय सरकार बनाने का प्रयत्न करेगी जिसका निर्माण भारतीय जनता की इच्छानुसार होगा और जिसके लिए भारत की जनता का विश्वास प्राप्त करना आवश्यक होगा। अंग्रेजों और उनके साथियों को निकाल देने के बाद जब तक स्वयं भारत में आजाद हिंद की स्थायी राष्ट्रीय सरकार नहीं बन जाएगी तब तक आरज़ी हुकूमत ही धरोहर के रूप में भारतीय जनता की ओर से देश का शासन करेगी।" और भारतीय जनता से इस अनुरोध के साथ घोषणा समाप्त हुई "परमपिता परमेश्वर के नाम पर भारतीय जनता से हमारा अनुरोध है कि भारत की स्वतंत्रता के लिए हमने जो लड़ाई शुरू की है उसमें वह हमारा साथ दे। हमारा कहना है कि अंग्रेजों और उनके साथियों के विरुद्ध आखिरी लड़ाई शुरू कर दो और अंतिम विजय के पूरे विश्वास के साथ धीरज और बहादुरी से तब तक लड़ते रहो, जब तक कि दुश्मन को बाहर निकाल कर हमारा राष्ट्र फिर से स्वतंत्र न हो जाए।"

23 अक्तूबर को आरज़ी हुकूमत ने अपने मंत्रिमण्डल की बैठक में ब्रिटेन और अमरीका के खिलाफ लड़ाई घोषित करने का निश्चय किया। लड़ाई की यह घोषणा सुभाष बोस ने रेडियो से की जो मलयासियका रेडियो के जरिए दुनिया भर में सुनी गई। इसके कुछ ही दिन बाद आजाद हिन्द की आरज़ी हुकूमत को जापान, जर्मनी, इटली, कोरिया, बर्मा, थाईलैण्ड, राष्ट्रवादी चीन, फिलिपीन और मंचूरिया ने विधिवत मान्यता दे दी। जापान में तो आरज़ी हुकूमत का विधिवत मान्यता प्राप्त प्रतिनिधि भी रहने लगा। यही नहीं बल्कि टोकियो में नवम्बर 1943 में हुए एक सम्मेलन में जापानी प्रतिनिधि ने अण्डमान और निकोबार के द्वीप समूह आजाद हिन्द की आरज़ी हुकूमत के सुपुर्द करने के जापान सरकार के

निश्चय का भी ऐलान किया। इस तरह सबसे पहले यही प्रदेश आजाद हिन्द की आरज़ी हुकूमत के पास आया।

खर्चे के लिए आरज़ी हुकूमत ने टैक्स तथा चन्दे के रूप में धन एकत्र किया और कहते हैं कि इस तरह प्राप्त धनराशि बीस करोड़ रुपय से ऊपर हो गई थी। तब आज़ाद हिन्द फौज को अधिक कारगर बनाने के लिए कई ब्रिगेडों में बांटा गया। सुभाष, गांधी और आज़ाद उन ब्रिगेडों के नाम रखे गए।

आज़ाद हिन्द फौज की स्थिति पर सुभाष बोस और जापान के सैनिक अधिकारियों के बीच कुछ विवाद उठा मालूम पड़ता है। कहते हैं कि शुरू में जापानी आजादी हिन्द फौज की जापानी सेना से स्वतन्त्र स्थिति मानने को तैयार नहीं थे। उनका कहना था कि आज़ाद हिन्द फौज के सैनिक अंग्रेजी सेना की आरामतलबी के आदी होने से बर्मा और पूर्वोत्तर भारत के जंगलों की कठिनाई और दुर्गम मंजिल जापानी सैनिकों की तरह सुगमता से पार नहीं कर पाएंगे, इसलिए भारत को स्वतन्त्र करने की सारी जिम्मेदारी जापानी फौज के सुपुर्द कर आज़ाद हिन्द फौज को सिंगापुर में ही रहते हुए प्रचार तथा इसी तरह के दूसरे कामों में उसकी मदद करनी चाहिए। लेकिन सुभाष बोस ने शिष्टता और दृढ़ता के साथ जापानी अधिकारियों की इस बात से इन्कार करते हुए कहा, 'जापानी कुरबानियों से अगर हमने भारत की आजादी हासिल की तो वह तो गुलामी से भी बदतर होगी' और इस बात पर जोर दिया कि भारत की आजादी के लिए तो भारतवासियों को ही सबसे ज्यादा कुरबानी करनी चाहिए और उन्हीं का खून सबसे ज्यादा बहना चाहिए, इसलिए भारत की सीमा पर लड़ाई का नेतृत्व तो आज़ाद हिन्द फौज को ही करना होगा। आखिर सौभाग्यवश इस बात पर सहमति हो गई कि पहले आज़ाद हिन्द फौज की एक रेजिमेंट से यह काम लिया जाए और अगर वह इस काम में उपयुक्त निकले तो फिर आज़ाद हिन्द फौज के बाकी सैनिकों को भी लड़ाई पर भेज दिया जाए। जापानी फौज की विभिन्न टुकड़ियों के साथ उनको काम करना था।

सुभाष ब्रिगेड का मुख्य भाग जिसका संचालन शाहनवाज खां कर रहे थे, पीठ पर लगभग एक मन बोझ लादे औसत तौर पर कोई 25 मील रोज पैदल चलते

हुए कम से कम 400 मील का फासला तय कर 1944 की जनवरी के शुरू म रगून पहुचा। मोर्चे पर जल्दी से जल्दी पहुचने की उत्सुकता के कारण, जितना रास्ता जापानी सनिक पाच दिन मे तय करते थे उतना आजाद हिन्द फौज के भारतीय सनिक आमतौर से दो दिन म ही पूरा कर लेते थे।

सुभाष भी जनवरी म ही रगून पहुच गए थ। ऐसा प्रतीत होता है कि जापानियो से उन्होने यह तय कर लिया था कि आजाद हिन्द फौज की टुकडिया सनिको की सख्या की दृष्टि से बटेलियनो से छोटी रहेंगी, ऐसी हर एक टुकडी का सचालन पूणत भारतीय अधिकारियो के ही अधीन रहेगा, मोर्चे पर उनका अलग क्षेत्र रहेगा, भारत की जिस भूमि को मुक्त किया जाएगा उसको शासन के लिए आजाद हिन्द फौज के सुपुद किया जाएगा और मुक्त की हुई भारतीय भूमि पर एकमात्र भारतीय तिरगा झण्डा ही लहराएगा।

इसके बाद भारतीय और जापानी फौज ने लडाई शुरू की और आग बढते हुए बर्मा के कई स्थान फतह किए। इनमे एक दलेतमे भी था। वहा से भारतीय सीमा सिफ चालीस मील दूर रह गई थी और आगे बढती हुई सना जल्दी से जल्दी वहा पहुचने के लिए व्यग्र थी। 'भारतीय सीमा पर अग्रेजी फौज की निकटतम चौकी माउडोक मे थी जो काक्स बाजार के पूव मे लगभग पचास मील पर है। उसे रात के वक्त (मई 1944) अचानक आक्रमण कर कब्जे म कर लिया। अचानक आक्रमण म शत्रु टिक न सका और उसके सनिक भयभीत होकर भारी परिमाण मे हथियार गोलाबारूद तथा खाने पीने का सामान छोड भाग खडे हुए भारतीय प्रदेश म आजाद हिन्द फौज का प्रवेश बडे हृदयस्पर्शी ढग मे हुआ। जिम मातभूमि की मुक्ति के लिए युद्ध का अभियान किया गया था उसमे प्रवेश करते ही भारतीय सनिको ने उसकी पवित्र भूमि को श्रद्धापूवक दण्डवत किया और उसकी रज को मस्तक पर लगाया। इसके बाद बडे आनद और उत्साह के बीच आजाद हिन्द फौज का राष्टगान गाते हुए विधिवत झण्डा लहराया।* खाने पीने का सामान सुलभ न होने तथा जवाबी हमले की आशका से जापानी फौज ने माउडोक से हट जाने का निणय

---

* 'हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेण्ट इन इण्डिया' से (खड 3, पृ० 721 22)

किया और आज़ाद हिन्द फौज के कमाण्डर को भी ऐसा ही करने की सलाह दी लेकिन आजाद हिन्द फौज के सनिकों ने ऐसा करने से इनकार किया। उन्होंने कहा—'हमारा लक्ष्य तो दिल्ली का लाल किला है, क्योंकि हम तो यहां आदेश है कि पीछे लौट बगैर वहां पहुचने के लिए बढ़े चले जाओ।' आखिर यह तय रहा कि कप्तान सूरजमल के नेतृत्व में आजाद हिन्द फौज की एक कंपनी को झण्डे की निगरानी के लिए माउडाक छोडकर बाकी सैनिक वापस चले जाएं। जापानियों ने भी अपनी एक टुकडी भारतीय सेना के साथ वहां छोडी, जिसे कप्तान सूरजमल के ही सीधे नेतृत्व में रखा गया। जापानी सेना के इतिहास में शायद यही पहला अवसर था जब उसके सैनिक किसी विदेशी अधिकारी के नेतृत्व में रखे गए। स्पष्ट ही आजाद हिन्द फौज के वीरोचित बलिदान और पराक्रम से प्रभावित होकर बर्मा स्थित जापानी फौज का प्रधान सेनापति नेताजी के पास गया और सिर झुकाकर उनसे कहा, "महामहिम, आजाद हिन्द फौज के बारे में हमने जो ख्याल बनाया था वह गलत था। अब हमें पता चल गया है कि वे भाड़े के टट्टू नहीं बल्कि सच्चे देशभक्त हैं'।'[1]

आज़ाद हिन्द फौज की यह छोटी सी टुकडी कप्तान सूरजमल के नेतृत्व में 1944 के मई से सितंबर तक रही। इस बीच उस पर अंग्रेजी पक्ष से भारी तोपों और मोर्टर मशीनगनों के बार बार हमले हुए और कभी कभी साथ में हवाई जहाजों से बमवर्षा भी की गई लेकिन उसने डटकर सामना किया और हार नहीं खाई।

ब्रिगेड की बाकी बटालियन फरवरी 7 को रंगून से दूसरे मोर्चे पर चली गई। वहां भी जापानी जनरल ने जानबूझ कर उनको बडी कसौटी पर कसा, पर वे खरे ही साबित हुए और जापानी जनरल को भी पूरी तरह संतोष हो गया। तब यह हिदायत जारी की गई कि "ब्रिगेड का मुख्य भाग कोहिमा जाएगा और इम्फाल का पतन होते ही तेजी से ब्रह्मपुत्र को पार कर बंगाल पहुंचने के लिए तैयार रहेगा।" इसके अनुसार मई 1944 के अंतिम सप्ताह में 150 से 300 के बीच आदमियों को वहां छोड बाकी सबने असम की नागा पहाडी के सदरमुकाम

८

[1] हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेण्ट इन इंडिया' से (खंड 3, पृ० 722)

कोहिमा की तरफ कूच किया। आजाद हिन्द फौज के सैनिकों की अन्य टुकड़ियां भी बाद में उनमें आ मिलीं और उखरूल व कोहिमा पर उन्होंने अधिकार कर लिया। विजित प्रदेश की व्यवस्था का भार तब तक आजाद हिन्द दल को ही सम्हालना था जब तक कि वहां कोई नियमित शासन कायम न हो। इसके लिए उस लोगों के खाने पीने, बस्तों की सफाई आदि अनिवार्य नागरिक सुविधाएं तथा शान्ति व्यवस्था कायम रखने और वहां की भारतीय जनता का विश्वास सम्पादन करने जैसे सभी काम करने थे। नए-नए क्षेत्रों पर आधिपत्य होते ही आजाद हिन्द की आरजी हुकूमत के नाम पर आजाद हिन्द दल उनका भार सम्हाल लेता। इस तरह उसने काफी अच्छा काम किया। कोहिमा के आसपास ऊंचे ऊंचे पहाड़ों पर उसने तिरंगा झण्डा लहरा दिया।

मगर आजाद हिन्द फौज जब कोहिमा पहुंची उसके आसपास ही युद्ध का रुख जापान के खिलाफ हो गया। इम्फाल पर कब्जा करने में जापानी फौज को कामयाबी नहीं मिली और दीमापुर तथा कोहिमा की दिशा में शक्तिशाली अंग्रेजी फौज का आक्रमण शुरू हो गया। कोहिमा स्थित आजाद हिन्द फौज यद्यपि मोर्चे पर डटी रही और बड़ी बहादुरी से उसने दुश्मन के लगातार हमलों का सामना किया, फिर भी आखिर जापानी फौज के साथ उसे चिंदविन नदी के पूर्वी तट की ओर लौटना ही पड़ा।

आजाद हिन्द फौज की गांधी और आजाद ब्रिगेडों ने भी बड़ी बहादुरी दिखाई। अंग्रेजी सैनिकों से संख्या में कहीं कम होते हुए भी और शस्त्रास्त्र आदि की अपेक्षाकृत कमी के बावजूद हमले पर हमले होने पर भी अंग्रेजों को उन्होंने बारबार खदेड़ा। लेकिन अंग्रेजों के हमले को विफल कर देने पर भी उससे कहीं भयानक दुश्मन का उन्हें सामना करना पड़ा। वर्षा ने ऐसा महाप्रलय किया कि टामू पलेल सड़क टूट फूट कर बिल्कुल बह गई। उन्हें राशन और शस्त्रास्त्र मिलने का वही एकमात्र मार्ग था, उसके इस तरह नष्ट हो जाने पर स्थिति नाजुक बन गई। इतने पर भी आजाद हिन्द फौज के सैनिक—जिनका उस वक्त कोई 200 वर्गमील भारतीय प्रदेश पर कब्जा था जिसका नेताजी द्वारा भेजी आजाद हिन्द टुकड़ी द्वारा शासन किया जा रहा था मुक्त किए हुए उस प्रदेश से हटे नहीं। हटने के बजाय

उन्होंने नागाओं का सहारा लेना ही ठीक समझा और एक सम्मेलन करके उन्हें सारी स्थिति बताई। नागाओं ने इस पर उन्हें भागने से मना करते हुए कहा "आप तो भारत को मुक्त करने आए हैं ऐसी हालत में आपको वापस नहीं जाना चाहिए खाने की खुराक की बहुत कमी और कठिनाई है फिर भी जितना भी हो सकेगा हम आपके लिए जुटाएंगे और साथ साथ जीयेंगे या मरेंगे।" असल में वे (नागा लोग) अंग्रेज और जापानी दोनों ही के खिलाफ थे। उन्होंने कहा "अपने प्रदेश पर न तो हम अंग्रेजों का कब्जा चाहते हैं, न जापानियों का। हम तो नेताजी सुभाष ग्राम को ही अपना राजा बनाना पसंद करेंगे।" लेकिन कोहिमा से आजाद हिन्द फौज के हट जाने से नागालैण्ड में गांधी ब्रिगेड की स्थिति सुरक्षित नहीं रही थी, इसलिए उसे भी वहां से हटना ही पड़ा।

भारत बर्मा मोर्चे पर आजाद हिन्द फौज की हलचलों को सुभाष ब्रिगेड के कमाण्डर शाहनवाज खां ने इस प्रकार वर्णन किया है— जापानी फौज के साथ मिल कर आजाद हिन्द फौज ने 1944 के मार्च में जो मुख्य लड़ाई शुरू की थी उसका इस तरह अन्त हुआ। लड़ाई में आजाद हिन्द फौज ने कहीं घटिया युद्ध सामग्री और रसद तथा शस्त्रास्त्र की उपलब्धि और बहुत कमजोर व्यवस्था के बावजूद कोई डेढ़ सौ मील भारतीय भूमि पर कब्जा किया। आजाद हिन्द फौज की इस चढ़ाई में उल्लेखनीय बात यह है कि लड़ाई के मोर्चे पर हमारी फौज एक बार भी परास्त नहीं हुई और दुश्मन के पास हमसे कहीं ज्यादा सैनिक और युद्ध सामग्री होते हुए आजाद हिन्द फौज की एक भी चौकी पर वह कभी कब्जा नहीं कर सका। इसके विपरीत ऐसा बहुत कम बार ही हुआ जबकि आजाद हिन्द फौज ने किसी ब्रिटिश चौकी पर हमला करके सफलता न पाई हो। लड़ाई में आजाद हिन्द फौज के कोई 4 000 आदमी शहीद हुए।[1]

अंग्रेजों के जवाबी हमले ने 1944 45 की सर्दियों में जोर पकड़ा, जिसके फलस्वरूप जापानियों को पीछे हटना पड़ा। रंगून छोड़ते वक्त जापानी उसे आजाद हिन्द फौज के सुपुर्द कर गए थे। 1945 की मई में अंग्रेजों ने उस पर कब्जा कर

---

[1] 'हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमण्ट इन इंडिया' (खंड 3, पृष्ठ 730)

लिया और आजाद हिन्द फौज वालो को नि शस्त्र करके बन्दी बना लिया। सुभाष बोस को फिर से लडाई करने की अभी भी आशा थी, इसलिए वह रगून से बैंकाक चले गए। किस कठिनाई से वह बैंकाक गए इसका अनुमान इस बात म लगाया जा सकता है कि यात्रा मे उन्हे इक्कीस दिन लगे। बकाक से हवाई जहाज म वह सिंगापुर गए और मध्य अगस्त मे जापान के आत्म समपण कर दन पर अत म हवाई जहाज म ही सैगोन से तोकियो गए। इसी यात्रा म दुघटना से उनका हवाई जहाज चकनाचूर हो गया और दुघटना मे लगी चोट मे उनका प्राणान्त हुआ।

आजाद हिन्द फौज के उत्थान, पराक्रम और शौय का यह वणन भारतीय लेखको द्वारा प्रस्तुत विवरण के आधार पर दिया गया है, जिनमे स एक (शाहनवाज खा) का तो इन घटनाओ से सीधा सम्बन्ध रहा है।[1] इसलिए इसका दृष्टिकोण भारतीय होना स्वाभाविक है और अग्रेजो का दृष्टिकोण निश्चय ही इसस भिन्न बल्कि सवथा विपरीत भी हो सकता है। आकिनलेक के जीवनीकार जान कानेल का विवरण इसका प्रमाण है जिसमे घटनाओ पर अग्रेजो के दृष्टिकोण से प्रकाश डाला गया है। उन्होने लिखा है

'आजाद हिन्द फौज की जो दु खद और जटिल समस्या सामने आई वह अग्रेजों की 1942 मे दक्षिणपूव एशिया म हुई पराजय का परिणाम थी। उस वष की फरवरी मे जब सिंगापुर का पतन हो गया तो मलाया म बची हुई अग्रेजी सना क कोई 85,000 सनिको को जापान के आगे आत्म समपण करना पडा। इसमे लगभग 60 000 भारतीय थे—जिनमे अफसर वी सी ओ एन सी ओ तथा जवान सभी तरह के लोग थे।

"युद्ध मे और उसके बाद इन्होने जो काम किए और उनके जो परिणाम सामने आए उसका मूल्याकन करते समय हमे इस तथ्य का ध्यान रखना होगा कि जापान के कब्जे म गए इन बन्दियो मे 35 000 युद्ध बन्दी ऐसे भी थे जिन्होंने नमक हरामी नही की और फौज मे भर्ती होते वक्त वफादारी का जो शपथ ली थी उस पर पूरी तरह कायम रहे। उन्होने बिना किसी हिचकिचाहट के कठिनाई, मुसीबत,

1इण्डियाज स्ट्रगल फार फ्रीडम ए० सी० चटर्जी द स्प्रिंगिंग टाइगर ह्यू टोयी, लदन

/

1945 में जापान की ओर से बर्मा के मार्चे पर लड़ाई में शामिल हुआ था। जापानी सेना ने इनसे दो तरह के काम लिए। एक तो आंशिक रूप में प्रचार का (जो सर्वथा असफल रहा) और आंशिक रूप में ही गुरिल्ला युद्ध या हल्की लड़ाई का (जिसे इन्होंने बेमन से जस तस सम्पन्न किया)। इनके पास न हवाई जहाज थे, न तोपखाना, न भारी मोटर मशीनगन न टैंक या बख्तरबन्द गाड़ियां, इन्हें तो 1941 की किस्म का शस्त्रास्त्र मिला और ऐसी बन्दूकें दी गई जो अंग्रेजी फौज से जापानियों के हाथ लगी थी और इस तरह इनकी एक हल्की पदल सेना ही थी। इसी का नतीजा था कि बर्मा की प्रत्येक उल्लेखनीय लड़ाई में अंग्रेजों से इन्हें बुरी तरह पराजित होना पड़ा। इनका नेतृत्व स्फूर्तिदायक नहीं था। लड़ाई में कुल तीन अफसर मरे, एक जापानी संतरी के हाथों मरा और एक की वायुयान दुर्घटना में मृत्यु हुई। बर्मा में जापान की अंतिम पराजय तक आजाद हिन्द फौज के कुल 750 आदमी लड़ाई में मारे गए जबकि 1,500 बीमारी और भुखमरी से मरे 2,000 भागकर स्याम चले गए तथा 3,000 ने या तो आत्मसमर्पण किया या फौज से पलायन कर गए। नौ हजार बन्दी बनाए गए।'

इन दोनों वर्णनों की संगति बैठाना असंभव है। जहां तक हमारी जानकारी है जो कहा गया उसे दस्तावेजों से पुष्ट करने का प्रयत्न इन दोनों ही वर्णनों में नहीं है। फिर भी अतिशयोक्ति की गुंजाइश रखते हुए, जैसा कि ऐसी परिस्थितियों में स्वाभाविक है पहला वर्णन ही स्पष्ट रूप से अधिक प्रामाणिक और ग्राह्य मालूम पड़ता है। उनमें से कुछ तो ऐसे आदमियों के आंखों देखे स्वानुभव हैं जिन्होंने उनमें अपना भी सक्रिय योगदान किया। फिर यह भी स्मरण रखने की बात है कि उनमें दी हुई अनेक प्रमुख घटनाओं की आजाद हिन्द फौज के मुकदमे में पुष्टि भी हो चुकी है।

आजाद हिन्द फौज के अन्य लोगों का क्या हुआ, इस बारे में जान कानेल ने बताया है कि युद्धकाल में भारतीय जनता को आजाद हिन्द फौज के बारे में या तो कुछ भी नहीं मालूम था या मालूम था तो बहुत कम। मई 1944 से जब उन्होंने आत्मसमर्पण करना शुरू किया या उन्हें बन्दी बनाया जाने लगा तब उन्हें भारत लाकर उनके अपराध के अनुसार उनका अलग अलग वर्गीकरण करके नजर

बन्द कैम्पों में भेजा गया। आजाद हिन्द फौज का सैनिक मामला माना गया, यानी भारतीय सेना के अनुशासन और मनोबल का मामला। युद्ध समाप्त होने के पहले ही कोई तीस वी० सी० ओ० एन० सी० ओ० और सीनियर सिपाहियों पर, जिन्हें या तो लड़ाई में बन्दी बनाया गया या पनडुब्बी अथवा हवाई छतरी से भारत-प्रवेश करते हुए पकड़ा गया था, फौजी अदालत में मुकदमा चल चुका था। इनमें से दो को मौत की सजा भी दी गई थी, जिन पर जासूसी या तोड़फोड़ के आरोप थे।"

लेकिन 18 अगस्त 1945 को सुभाष बोस की मृत्यु हो जाने पर, उसके दूसरे दिन भारत सरकार ने एक विज्ञप्ति निकाली, जिसमें सुभाष बाबू की मृत्यु की खबर के साथ आजाद हिन्द फौज के संबंध में भी कुछ बताया गया। इससे लोगों में कुछ उत्तेजना पैदा हुई और आजाद हिन्द फौज की कारगुजारियों की खबर सारे देश में बिजली की तरह फैली ही नहीं उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप कुछ हिंसात्मक काण्ड भी हुए जिनका शायद सरकार ने पहले कोई अनुमान नहीं लगाया था। फिर जब आजाद हिन्द फौज के तीन अफसरों पर फौजी अदालत में बगावत का मुकदमा चलाने का सरकार ने निश्चय किया तब तो लोगों में और भी उबाल आया।

आजाद हिन्द फौज के बारे में जवाहरलाल नेहरू से उनके विचार पूछे जाने पर 19 अगस्त को उन्होंने कहा था: 'मेरा विचार था और अब भी यही विचार है कि इस फौज के नेता और अन्य व्यक्ति कई तरीकों से गुमराह हुए। जापानियों के साथ गठबंधन करते समय उन्होंने उसके व्यापक परिणामों का ठीक तरह ख्याल नहीं किया। तीन साल पहले कलकत्ता में मुझसे पूछा गया था कि भारत की मुक्ति के लिए सुभाष बाबू सेना लेकर भारत पर चढ़ाई करें तो मैं क्या करूंगा। मैंने जवाब दिया था कि मैं उसका मुकाबला करने में जरा भी आगा पीछा नहीं करूंगा, हालांकि सुभाष बाबू की नीयत पर मुझे कोई शक नहीं है। मैं मानता हूं कि वह और उनके साथी जापानियों के हाथ के खिलौने किसी तरह नहीं हैं और भारत को आजाद करने की तमन्ना से ही यह सब कर रहे हैं, फिर भी मैं कहूंगा कि जापानियों के तत्वावधान में काम करके वह गलती कर रहे हैं। इसीलिए इन लोगों

का उद्देश्य कुछ भी क्यों न हो, भारत में या उससे बाहर उनका मुकाबला करना ही होगा।"

लेकिन इसके दूसरे ही दिन उनके विचारों में कुछ परिवर्तन हो गया मालूम पड़ता है। इसी बारे में फिर से बोलते हुए उन्होंने कहा—"आजाद हिन्द फौज के अफसर और सिपाही बहुत बड़ी तादाद में बंदी बने हुए हैं और उनमें से कम से कम कुछ को मौत के घाट भी उतारा जा चुका है। उनके साथ बहुत सख्ती से पेश आना किसी भी समय ठीक नहीं कहा जा सकता था, फिर इस वक्त तो—जबकि कहा जाता है कि भारत में बड़े परिवर्तन होने वाले हैं—ऐसा करना बड़ी भारी गलती होगी और अगर उनके साथ मामूली बागियों जैसा व्यवहार किया गया, तो उसके बड़े दूरगामी परिणाम हुए बिना नहीं रहेंगे। उन्हें सजा देना तो एक तरह सारे भारत को और सभी भारतीयों को दण्डित करना है जिससे लाखों करोड़ों हृदयों पर गहरा आघात लगेगा।"

यह तथा इस तरह के दूसरे वक्तव्य सरकार के लिए ऐसी चेतावनी थे जिससे उसे सावधान हो जाना चाहिए था और आजाद हिन्द फौज के तीन अफसरों के खिलाफ फौजी अदालत में मुकदमा चलाने का खतरा नहीं उठाना था। लेकिन एक तरह सरकार चक्कर में पड़ गई थी। ऐसा लगता है कि सैनिक अधिकारियों को इस बात की जानकारी नहीं थी कि अंग्रेजी फौजों के बर्मा पर फिर से कब्जा करने के बाद आजाद हिन्द फौज और अंग्रेजों की (भारतीय) सेना के लोग आपस में खूब हिले मिले थे, जिससे भारतीय सेना में ऐसी राजनीतिक चेतना आ गई थी जैसी कि पहले कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। दूसरी ओर यह सवाल था कि आजाद हिन्द फौज का नेतृत्व करने या उसमें प्रमुख भाग लेने वालों को अगर कोई सजा न दी गई तो उससे भारतीय सैनिकों की वफादारी पर क्या असर नहीं पड़ेगा? बहुत सोच विचार के बाद आखिर सरकार ने घोषणा की कि जवानों को तो सजा नहीं दी जाएगी लेकिन जिन अफसरों पर अत्याचार के आरोप हैं उनके विरुद्ध अवश्य कारवाई की जाएगी।

सजा देने के लिए सरकार क्या क्या करेगी, इसकी तफसील सामने आने के पहले ही सितम्बर में कांग्रेस की महासमिति का अधिवेशन हुआ। उसमें जवाहर

लाल ने आजाद हिन्द फौज के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव रखा, जिसमे राजनीतिक और सैनिक परिस्थिति का उल्लेख करते हुए कहा गया कि इन स्त्री पुरुष अफसरो को भारत की स्वतन्त्रता के लिए काम करने के कारण दंडित किया गया तो वह बडे दुख की बात होगी। इसलिए कांग्रेस महासमिति दिल से आशा करती है कि उन्हे बिना दण्ड दिए रिहा कर दिया जाएगा।" साथ ही उन्होंने यह भी घोषणा की कि आजाद हिन्द फौज के बन्दियो के बचाव की व्यवस्था करने के लिए कांग्रेस ने एक डिफेंस कमेटी बनाई है, जिसमे सर तेजबहादुर सप्रू और भूलाभाई देसाई हैं तथा अन्य पक्षो को भी उसमे शामिल होने के लिए आमन्त्रित किया गया है। बाद मे स्वयं जवाहरलाल आसफअली, कैलाशनाथ काटजू आदि और लोग भी उसमे शामिल हो गए।

अक्तूबर मे सरकारी घोषणा सामने आई कि प्रारम्भ मे आजाद हिन्द फौज के तीन अफसरो पर फौजी अदालत मे मुकदमा चलाया जाएगा, मुकदमा अगले महीने से दिल्ली के लाल किले मे शुरू होगा और कारवाई गुप्त नहीं, खुली होगी। लाल किले का चुनाव, कहते हैं कुछ तो व्यावहारिक दृष्टि से और कुछ भावनात्मक दृष्टिकोण से किया गया था। लाल किले का ऐतिहासिक महत्व है, क्योंकि यहीं मुगल दरबार होते थे। वहां मुकदमा चलाकर सरकार वफादार भारतीय सैनिकों पर यह असर डालना चाहती थी कि जिन पर मुकदमा चलाया जा रहा है उनके अपराध कितने संगीन है और ऐसे अपराधो पर कैसी सख्त सजा दी जाती है। लेकिन भारतीयो की भावना पर सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया, जो लाल किले को अपने देश की मुक्ति के लिए विदेशी सत्ता के प्रति संघर्ष करने का प्रतीक मानते है। जिन तीन अफसरो पर मुकदमा चलना था वे थे कप्तान शाहनवाज खां, कप्तान सहगल और लेफ्टिनेण्ट जी० एम० ढिल्लो। शाहनवाज खां ने इंडियन मिलिटरी अकादमी से तलवार प्राप्त करने का सम्मान हासिल किया था और आजाद हिन्द फौज मे मेजर जनरल थे। *1945 मे बर्मा स्थित, डिवीजन की कमाण्ड उन्ही के हाथ मे थी।* कप्तान सहगल और लेफ्टिनेण्ट ढिल्लो शाहनवाजखां के सैनिक डिवीजन मे अलग अलग बटालियनो के कमाण्डर थे। सरकार ने मुकदमा चलाते समय इस बात की सावधानी रखी मालूम पडती है कि सभी अभियुक्त एक ही जाति के न हो।

सभवत इसीलिए हिंदू, मुसलमान, सिख सभी प्रमुख जातियों में एक एक व्यक्ति को मुकदमे के लिए चुना गया।

डिफेंस कमेटी ने, मालूम पडता है, वाइसराय से मुकदमा उठा लेने या उसे कुछ समय के लिए स्थगित कर देने का अनुरोध किया, पर वाइसराय ने दोनों ही बातों के लिए साफ इनकार किया। आकिनलेक (कमाडर-इन-चीफ) की वाइसराय को यह सलाह थी कि न्याय के मामले को, जिस तरह कमेटी ले रही है वैसे रोके रखना ठीक नहीं होगा।" लेकिन जैसाकि बाद में खुद सरकार को भी मालूम पड गया, मुकदमा चलाने का निर्णय ही बडी भारी गलती थी। जवाहरलाल के एक जीवनीकार (फ्रैंक मारेस) के शब्दों में वह तो उससे 'आजाद हिंद फौज नाटकीय रूप में राष्ट्रीय एकता का प्रतीक बन गई।' कांग्रेस ने ही आजाद हिंद फौज के आदमियों के प्रति सहानुभूति नहीं दिखाई मुस्लिम लीग ने भी वैसा ही रुख अख्तियार किया। सारे देश में देशभक्ति की भावना और उनके प्रति सहानुभूति की लहर छा गई। भारत के विविध भागों में सरकार-विरोधी प्रदर्शन भी हुए। कलकत्ता में ऐसे कुछ प्रदर्शनों के बीच कुछ हिंसात्मक काण्ड हुए। दिल्ली में लोगों ने सरकारी इमारतों को आग लगाने और सार्वजनिक सम्पत्ति को नष्ट करने का प्रयत्न किया। ऐसे वातावरण के बीच लाल किले में शाहनवाज, सहगल और ढिल्लों पर बगावत का फौजी मुकदमा शुरू हुआ।

मुकदमे में सफाई के सत्रह वकील उपस्थित थे। इनमें जवाहरलाल भी थे जिन्होंने तीस साल के बाद बरिस्टरी का चोगा धारण किया था। लेकिन पैरवी में सर्वप्रमुख भाग भूलाभाई का ही रहा जिन्होंने करारी जिरह करके सारे देश में ख्याति अर्जित की। डा० काटजू इसमें उनके मुख्य सहायक थे।

भूलाभाई का स्वास्थ्य पहले ही ठीक नहीं था, देसाई लियाकत समझौते के बाद की घटनाओं और उस समझौते के कारण कार्यसमिति ने उनके प्रति जैसा रुख ग्रहण किया उससे वह और बिगड गया था। आजाद हिंद फौज के अविस्मरणीय मुकदमे का काम जब उन्होंने सम्भाला उस वक्त उनकी जो हालत थी, उस पर उनके एक ऐसे डाक्टर मित्र ने प्रकाश डाला है जो उनके परिवार के सदस्य जैसा था और

सहायता बगैर, मुहजबानी दिया। इस दृष्टि से उसका महत्व और भी बढ जाता है कि मुकदमा साधारण न्यायालय के बजाय फौजी अफसरो की फौजी अदालत म था। मामला ऐसा था जिसम मुख्य आधार अन्तर्राष्ट्रीय विधान के सिद्धान्तो पर था और प्रमुख वकीलो तथा राजनीतिज्ञो के प्रमाण प्रस्तुत करके ऐसी भाषा म अपने पक्ष का प्रतिपादन करना था, जो फौजी अफसरो की समझ म आ जाए। इसलिए मेहनत की और ज्यादा जरूरत थी। इसमे शक नही कि स्पष्ट प्रतिपादन उनका बहुत बडा गुण था, लेकिन इस मुकदमे म कानूनी मुद्दो का ऐसे सरल रूप मे प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी जिससे मुकदमे की सुनवाई करने वाले फौजी अफसरो की समझ मे वह आ सके। भूलाभाई ने ऐसा ही किया और ऐसे सीधे सादे तरीके से अपनी बात रखी कि उनके भाषण को कोई भी व्यक्ति आज भी बिना किसी कठिनाई के पढ समझ सकता है।

तीनो अभियुक्तो पर तीन आरोप थे (1) आजाद हिन्द फौज की भारत से बाहर हुई कारवाइयो म उन्होने सयुक्त रूप म सम्राट के विरुद्ध लडाई लडी, (2) आजाद हिन्द फौज के अफसरो के रूप मे काम करते हुए, लडाई के सिलसिले मे, कुछ व्यक्तियो को मौत के घाट उतारा और (3) हत्या के ऐसे कामो म उन्होने मदद की।

मुकदमे म एक अजीब बात यह हुई कि जिस सबूत पर अभियोग पक्ष अभियुक्तो को सम्राट के विरुद्ध युद्ध करने का दोषी ठहराना चाहता था, उसी को सफाई के वकील (भूलाभाई) ने सफाई का आधार बनाया। उन्होने यह सिद्ध करने का यत्न किया कि अन्तर्राष्ट्रीय विधान के मान्य सिद्धान्तो के अनुसार अभियुक्तो को आरजी हुकूमत (अस्थायी सरकार) के तत्वावधान म सगठित सेना के अन्तगत अपने देश को पराधीनता से मुक्त करने के लिए सशस्त्र युद्ध करने का हक है और ऐसी सगठित सेना के अग बनकर किए कामो को भारत के नागरिक विधान (म्युनिसिपल ला) के अन्तगत अपराध करार नही दिया जा सकता। उन्होने बताया कि अन्तराष्ट्रीय विधान के अनुसार भारतीय दड विधान उन पर लागू नही होता। अभियोग पक्ष ने अपने लिए जो लम्बा सबूत तयार किया था उसका सफाई के वकील ने जितने बडे पैमाने पर अपने पक्ष म उपयोग किया उसपर ध्यान गए बिना नही

रहता। जिन्होंने बडी मेहनत से उसे तयार किया था, उन्होंने शायद ही यह सोचा होगा कि उनकी मेहनत का उपयोग उल्टे अभियुक्तो के पक्ष मे ही होगा।

सफाई पक्ष से जिरह का काम ज्यादातर भूलाभाई ने ही किया। उन्होंने उसम न केवल अपनी वकालती कुशलता का पूरा उपयोग किया बल्कि वकालत की सवश्रेष्ठ परपरा का भी पूरी तरह निर्वाह किया। ऐसा उन्होंने कसे किया इस पर एक नजर डालना उपयोगी होगा। अत मुकदमे मे उपस्थित एक व्यक्ति द्वारा बनाई कुछ घटनाओ का यहा हम उल्लेख करेंगे।

कप्तान धरगलकर अभियोग पक्ष के एक गवाह थे। डिफेंस कमेटी के एक सदस्य को इस बात की जानकारी मिली कि पिता के साथ उसके अच्छे सम्बन्ध नही हैं, इसलिए जिरह करते हुए उनके पिता का कही उल्लेख कर दिया जाए तो वह भडक उठेंगे और गवाही गडबडा जाएगी। भूलाभाई तक जब यह बात पहुचाई गई जिससे जिरह के वक्त वह इसका ध्यान रखें, तो भूलाभाई न तत्काल यह जवाब दिया था "यह ठीक नही, मैं ऐसा गदा तरीका हर्गिज नही अपनाऊगा।" अगले दिन जब भूलाभाई ने उनसे जिरह की तो उनके साथ बडी सभ्यता से पश आए और बडी शिष्टता से एक के बाद एक सवाल किए। भूलाभाई ज्यो ज्यो सवाल पर सवाल पूछने गए, गवाह गडबडा गया और एसे जवाब दन लगा जो असगत और परस्पर विरोधी थे। नतीजा यह हुआ कि वह घबरा गया और बार-बार यही कहने लाग कि मुझे कुछ याद नही।' जब कई बार एसे ही जवाब मिले तो भूलाभाई न जज की ओर मुखातिब होकर कहा "जिनको कुछ दिन पहले के अपन बयान म कही बातो का कोई पता नही सब कुछ भूल गया मालूम पडता है एस गवाह से और जिरह करना फजूल है।' इस तरह गवाह को गडबडान क लिए नागवार सवालो का सहारा लिए बगर ही उन्होंने उसकी शहादत निकम्मी कर दी।

एक अन्य घटना म तफसील की बातो को भी याद रखन की उनकी अ स्मरणशक्ति का पता चलता है। भारतीय सेना के एक सूबदार का जिरह अभियोग पक्ष का गवाह था भूलाभाई न एडवोकेट जनरल के पूछने किसी बात का हवाला दिया और अपनी याददाश्त से उसक क

सुनाए। एडवोकेट जनरल ने कहा 'गवाह से ऐसी बात कबूल करवाने की कोशिश की जा रही है जो, जहा तक मेरी याददाश्त काम करती है उसने कही ही नही थी। फौजी अदालत के अध्यक्ष ने इसपर भूलाभाई से कहा यह तो आप ठीक नही कर रहे।' उधर डा० काटजू ने भी जो भूलाभाई की सहायता कर रहे थे, चुपचाप उन्हे बताया कि जो बात आपने कही वह हूबहू ऐसी नही थी। लेकिन एडवोकेट जनरल अदालत के अध्यक्ष और काटजू किसी की भी बात से जरा भी विचलित हुए बगैर भूलाभाई ने अदालत से कहा, 'अदालत की कारवाई का ब्योरा तो रखा ही जाता है, उसे क्यो न देख ले।' तब ब्योरे के ढेर मे गवाह के बयान की खोज शुरू हुई। लेकिन उसके लिए वह रुके नही और एडवोकेट जनरल ने जो सवाल गवाह से किए थे उसके जवाब की तफसील दी। इस बीच गवाह की गवाही का ब्योरा मिल गया था और उसे देखने पर भूलाभाई ने जो कुछ कहा था वही बिल्कुल ठीक निकला। एडवोकेट जनरल इसपर बड़े शर्मिन्दा हुए और तत्काल भूलाभाई से उन्होने माफी मागी।

मुकदमा खत्म होते होते भूलाभाई का स्वास्थ्य और भी बिगड गया था, फिर भी उन्होने अपनी जिम्मेदारी का कितना ध्यान रखा यह बताने वाली एक घटना का इस सिलसिले मे हम और वर्णन करेंगे। मुकदमे के बाद रोज डाक्टर उनकी परीक्षा करते थे। एक शाम उनके पाव की सूजन को बढते हुए देखकर डाक्टरो ने कहा कि यदि आप इसी तरह काम करते रहे और अदालत मे भाषण देते रहे तो आपकी जान खतरे मे है। आपके हृदय पर बडा जोर पड चुका है और विश्राम की आपको बहुत जरूरत है।' उन्होने डाक्टरो की बात को उडा देने की कोशिश की पर डाक्टर अपनी बात पर अडे रहे और कहा कि आपको हमारी बात माननी ही पडेगी। तब जाकर भूलाभाई किसी तरह उनकी बात मानने को तैयार हुए और तुरत डा० काटजू को बुलाया। काटजू से जल्दी मे उन्होने मुकदमे के बारे मे सलाह की और समझाया। फिर भी डाक्टरो से इस बात की स्वीकृति उन्होने ले ही ली कि मुकदमे की वह खुद चाहे पैरवी न करें पर मुकदमे के वक्त वकीलो के कमरे मे वह जरूर रहेंगे जिससे जरूरत पडने पर उनसे सलाह मशवरा हो सके। घटना चक्र कुछ ऐसा हुआ कि अगले दिन एक अन्य वकील ने, जो डिफेंस कमेटी के सदस्य भी थे, पर

जिन्हें न तो मामले की पूरी जानकारी थी और न वे पिछले दिन की बातचीत में ही शामिल हुए थे, बाटजू की मौजूदगी के बावजूद मामले की पैरवी शुरू कर दी। ऐसी हालत में जो होना था वही हुआ। मामला बिगड़ने लगा। भूलाभाई को जब यह पता लगा तो उनसे न रहा गया। उन्होंने अदालत के कमरे में जाने का आग्रह किया और वहां पहुंचकर खुद ही पैरवी करना शुरू कर दिया। तत्काल उन्होंने कुछ कानूनी मुद्दे उठाए जिन पर विचार के लिए न्यायाधीशों को समय की दरकार थी। अतः अदालत थोड़े समय के लिए उठ गई। भूलाभाई अपनी कुर्सी पर वकीलों के कमरे में ले जाए गए तब डिफेंस कमेटी के दूसरे वकीलों के सामने ही उन्होंने इस वकील से कहा — भले आदमी, उन्हीं को पैरवी क्यों नहीं करने देते, जो मामले को समझते हैं। साथ ही कहा कि अदालत का काम शुरू होने पर मैं खुद ही पैरवी करूंगा। मौत आती हो तो आ जाए पर अपने महान् देशभक्तों की जान खतरे में नहीं डाल सकता। इसी भावना से मुकदमे के अंत तक उन्होंने काम किया जिसके फलस्वरूप जल्दी ही उन्हें प्राणों से हाथ धोना पड़ा।

आश्चर्य की बात है कि फौजी अदालत के काम में बुरी तरह व्यस्त रहते हुए भी अपने विपक्षियों से हेलमेल बढ़ाने और सामाजिक कार्यों के लिए वह किसी न किसी तरह समय निकाल ही लेते थे। एक अंग्रेज प्रोफेसर (एल० सी० ग्रीन) ने, जो लंदन और सिंगापुर के विश्वविद्यालयों में कानून के प्रोफेसर रह चुकने के बाद उस समय ब्रिटिश सेना के सदस्य के रूप में नई दिल्ली में थे और लालकिले के मुकदमे को जिन्होंने देखा था, कहा है कि "भूलाभाई ने लाल किले में हुए आजाद हिन्द फौज के मुकदमे की जिस तरह पैरवी की और अपने फौजी विपक्षियों के प्रति जिस तरह का रुख रखा, उससे यह भलीभांति कहा जा सकता है कि वह महान वकील तो थे ही, साथ ही आदमी भी वह बहुत ऊंचे दर्जे के थे।" मुकदमे के साथ अखबारों में प्रकाशित उसके समाचारों से लोगों में बड़ी उत्तेजना थी। इतने पर भी भूलाभाई ने मुकदमे को पेश करने वाले सबसे बड़े फौजी अफसर के साथ खाना खाने का समय निकाल ही लिया। इसलिए वह जनरल हेडक्वार्टस के आफिसर्स मेस आए जहां बावर्चियों ने अपनी रीत छोड़कर श्री देसाई के लिए बड़े उत्साह से शाकाहारी भोजन बनाया। भोजन के बाद जैसा मित्रों के बीच होता है, अनौपचारिक

बातचीत भी चली। यह तो याद रखने लायक बात है ही पर सबसे प्रमुख बात श्री देसाई के बारे में हमेशा मुझे याद रहती है वह है मुकदमे के उपसंहार का उनका भाषण जो निस्सन्देह बहुत ऊंचे दर्जे का था। मुकदमे के वक्त वह बूढ़े हो चले थे, वह बीमार भी थे फिर भी सफाई का मुख्य भार उन्होंने ही सम्हाला और मुकदमे के अंत में बीमारी के कारण कुर्सी पर लाए जाने पर भी अभियुक्तों की सफाई में उन्होंने ऐसा बढ़िया भाषण दिया जो अंग्रेजी के सर्वोत्तम वकालती भाषणों में स्थान पा सकता है। भाषण के उनके पास पहले से तैयार किए नोट नहीं थे, फिर भी बड़े सौम्य ढंग से और एक बार भी कहीं पुनरावृत्ति किए बगैर ऐसा धाराप्रवाह बोले कि, जिन्हें उसे सुनने का सुअवसर मिला वे उसे कभी भूल नहीं सकते।'

भूलाभाई का विशिष्ट गुण यह था कि अपने निजी संबंधों को धंधे की बातों से परे रखते थे। विपक्ष के वकीलों से अदालत में कभी ही बड़ी झड़प क्यों न हो, अपना ऐसा अदालती बाना वह अदालत के कमरे तक ही रखते थे। उससे बाहर, जब अदालत कुछ समय के लिए स्थगित होती या अदालत की छुट्टियां होतीं, वह शिष्ट और सज्जन पुरुष की तरह सभी साथियों के साथ, चाहे उनके पक्ष के हों या विपक्ष के, बड़े प्रेम से मिलते जुलते थे।

आकिनलेक के जीवनीकार ने नई दिल्ली के चम्सफोर्ड क्लब में भारतीय सेना के एक वरिष्ठ अधिकारी से हुई भूलाभाई की बातचीत का उल्लेख किया है। उन्होंने बताया है कि यह प्रतिष्ठित वकील अदालत की तरह ही अदालत से बाहर भी खुलकर बातचीत करता था। आजाद हिन्द फौज के मुकदमे को चलते दस दिन हो चुके थे, उस समय की बात है। 15 नवम्बर का वह दिन था। जनरल हेडक्वार्टस में काम करने वाले सेना के एक वरिष्ठ अधिकारी चम्सफोर्ड क्लब आकर इनसे मिले। जो बातचीत हुई उसका निम्न ब्यौरा उन्होंने आकिनलेक (कमाण्डर इन चीफ) को भेजा।

बातचीत का मुख्य विषय आजाद हिन्द फौज और उसके आदमियों पर चलने वाला मुकदमा था। कोई एक घण्टा बातचीत हुई जिसमें ज्यादातर भूलाभाई ही बोले। इन विषयों पर बातचीत चली

कमाण्डर इन चीफ की अपनी कोई राय नही होती बल्कि उन्हें अपने सलाहकारो के अनुसार करना पड़ता है।"

मुकदमे का रुख जब अभियुक्तो के पक्ष म होने लगा, तो भूलाभाई को सतोष का अनुभव होना ही था। 1 दिसम्बर 1945 को दिल्ली स अपन घर वालो को पत्र मे इन्होने लिखा 'इस समय अदालत मे और अदालत से बाहर सरकार को बडी कठिनाई का सामना करना पड रहा है। जिरह बडी कामयाब रही—इतनी कि जितनी की मैंने कल्पना भी नही की थी। सभी को इससे बडी खुशी हुई। डा० सप्रू ने आज लिखा है कि गवाहियो का वह बारीकी से अध्ययन कर रहे हैं और इसम कोई शक नही कि जिरह बहुत कारगर रही।"

उसी दिन एक दूसरे पत्र मे घरवालो को उन्होने लिखा "सरकार झुकना चाहती है, पर उसकी समझ म यह नही आ रहा कि झुका कसे जाए। श्री चन्दूलाल त्रिवेदी कल मुझे मिले थे। मैंन उन्ह बताया कि सरकार चाहे तो उसके लिए रास्ता मौजूद है। मुकदमे को तो उठाना ही पडेगा, क्योकि अभियुक्तो पर व्यक्तिगत रूप म अत्याचार करन का कोई अभियोग नही है। लेकिन इसमे कठिनाई बताते हुए उन्होने कहा, सरकार इतना आगे बढ चुकी है कि अब लौटना मुश्किल है। जहा तक मुकदमे का सबध है, अभियोग पक्ष गुरुवार को अपना वक्तव्य समाप्त कर दगा और तब हम अपना सबूत पेश करेंगे। फौजी अदालत के कायदे के अनुसार पहले अभियुक्तो का वक्तव्य होगा। मेरा भाषण तो सबूत दज हो जाने के बाद ही शुरू होगा।"

भूलाभाई का सबस बडा काम, जसा हम पहले ही बता चुके हैं, बचाव के लिए दिया हुआ उनका अविस्मरणीय भाषण था। उस भाषण मे बडे साहस के साथ जो देशभक्तिपूण रुख उन्होने अपनाया उसन देशवासियो की भावनाओ को नई कल्पना और स्फूर्ति प्रदान की। भूलाभाई ने फौजी अदालत को समझाने की दृष्टि से बडे सरल शब्दो म अपना पक्ष प्रस्तुत किया।

उन्होने गरजकर कहा, "यह आजाद हिन्द फौज के सम्मान और विधान का मामला है", "यह पराधीन राष्ट्र के अपनी दासता से मुक्ति के लिए युद्ध करने के

अधिकार का प्रश्न है।' अभियोग पक्ष की इस दलील पर कि अफसरों (अभियुक्तो) ने अपनी वफादारी की शपथ के विरुद्ध काम किया है उन्होने कहा, "जब तक कि आप अपनी आत्मा को ही न बेच दें, स्वदेश की मुक्ति के लिए युद्ध का प्रसग उपस्थित होने पर आप किसी अन्य वफादारी की शपथ के नाम पर उससे कैसे पीछे हट सकते हैं। इसका तो यही मतलब है कि दासता स्थायी बन जाए और उससे मुक्ति कभी हो ही नही सकती।'

भूलाभाई के तर्क का मूल आधार यह था कि 'किसी भी राष्ट्र मे या राष्ट्र के किसी अश मे एक अवस्था ऐसी आती है जब परतत्रता से अपनी मुक्ति के लिए युद्ध करने का उसे पूरा हक होता है।' वस्तुत यही सवमा य अन्तराष्ट्रीय विधान है। अगर मेरी यह बात ठीक है तो राष्ट्र की मुक्ति के लिए उसके सदस्यो के कामो के लिए, अन्तर्राष्ट्रीय विधान के अनुसार देश के नागरिक प्रशासन का (म्युनिसिपल) कानून लागू नही किया जा सकता। और खुद अभियोग पक्ष ने अपने मामले की पुष्टि के लिए जो सबूत पेश किया है यह बात तो उसी से स्पष्ट है कि आजाद हिन्द सरकार स्वतत्र भारत की आरजी हुकूमत (अस्थायी सरकार) थी—वह भारत का ऐसा पथक स्वतत्र राज्य था जो सकडो हजारो भारतवासियो को पराधीनता से मुक्त करने के लिए ही युद्ध कर रहा था। घटनाक्रम पर प्रकाश डालते हुए उन्होने बताया कि आजाद हिन्द फौज की स्थापना सवप्रथम सितबर 1942 मे हुई थी। दिसबर 1942 मे उसे भग कर दिया गया और उसके मुखिया कप्तान मोहनसिह गिरफ्तार कर लिए गए। उसके बाद दूसरी बार आजाद हिन्द फौज सगठित हुई, जिसका नेतत्व सिगापुर पहुचने पर सुभाषचद्र बोस ने ग्रहण किया। दूसरी महत्वपूर्ण घटना बृहत्तर पूर्वी एशिया सम्मेलन (ग्रेटर ईस्ट एशियन कान्फ्रेंस) का आयोजन था जिसमे सुदूरपूर्व के विभिन्न भागो से आए भारतीयो ने भाग लिया। इसके एक प्रस्ताव द्वारा स्वतत्र भारत की आरजी हुकूमत (अस्थायी सरकार) बनाने का निश्चय किया गया। इसके बाद 21 अक्तूबर 1943 को स्वतत्र भारत की उस अस्थायी सरकार के निर्माण की घोषणा की गई। सुभाष बोस उसके मुखिया बने और सरकार के काम को विभिन्न विभागो मे बाट कर उनके लिए मत्रियो की नियुक्ति हुई और उन्होने (अस्थायी सरकार के प्रति) वफादारी की शपथ ली। इस

तरह विधिवत उस सरकार का निर्माण हुआ और विधिवत स्थापित उस सरकार ने ब्रिटेन और अमरीका से युद्ध की विधिवत घोषणा की। इस तरह नई सरकार बन जाने पर, इस नए राज्य के आदेशानुसार ही आजाद हिंद फौज ने काम किया।

अदालत में पेश गवाहियों द्वारा अस्थायी सरकार के अस्तित्व की जो पुष्टि हुई थी, उस पर ध्यान आकर्षित कर उन्होंने कहा कि यह एक संगठित सरकार थी। बीस लाख से ज्यादा आदमी उसके प्रति वफादार थे जिनमें से 2,30,000 ने तो वस्तुतः मलाया में ही वफादारी की शपथ ली थी। शहादतों से यह भी स्पष्ट है कि इस सरकार को धुरी राष्ट्रों की मान्यता प्राप्त थी। इस नए राज्य की सेना का संगठन विधिवत् और अच्छी तरह किया गया था। उसके अपने खास बिल्ले थे और चिह्न थे। बाकायदा नियुक्त अफसरों के मातहत वह काम करती थी। जिस खास काम के लिए सेना संगठित की गई वह बहुत महत्वपूर्ण था। 'भारत को पराधीनता से मुक्त करने के लिए लड़ना उसका उद्देश्य था जैसाकि अदालत के सामने अच्छी तरह सिद्ध हो चुका है। यह अस्थायी सरकार भारत का नया राज्य था, इसकी असंदिग्ध पुष्टि इस बात से भी होती है कि जापान की सरकार ने 50 वर्ग मील क्षेत्रफल वाले अण्डमान और निकोबार द्वीपसमूह को इस भारतीय राज्य के सुपुर्द कर दिया था। इस बात के भी सबूत पेश हुए हैं कि नए भारतीय राज्य ने चार से छह महीने तक मणिपुर और विष्णुपुर इलाकों पर भी शासन किया। इस नए प्रदेश के शासन के लिए नए राज्य ने एक कमिश्नर नियुक्त किया था। उस कमिश्नर को नए प्रदेश का कार्यभार सौंपने के लिए एक समारोह किया गया था। समारोह में जल और थल सेनाओं के अधिकारियों ने, जिनके अधीन उस समय वहां का शासन था, द्वीपसमूह को बाकायदा उस कमिश्नर के सुपुर्द किया। इसके बाद उन द्वीपों का पुराना नाम बदलकर नया नाम शहीद और स्वराज द्वीप रखा गया।

जियावाड़ी प्रदेश का क्षेत्रफल, अदालत में पेश गवाहियों के अनुसार, लगभग पचास वर्गमील था और जनसंख्या 13,000 थी। वहां रहने वाले सभी भारतीय थे। लगभग 15 000 आबादी वाले मणिपुर और विष्णुपुर इलाका पर भी उपयुक्त समय तक, आजाद हिंद की अस्थायी सरकार की तरफ से आजाद हिन्द फौज का

शासन रहा, यह ऐसा तथ्य था जिसका खडन नही किया जा सकता था। कितने समय तक शासन रहा इस बारे म मतभेद हो भी तो उसका कोई खास महत्व नही था। मुद्दे की बात तो यही थी कि ऐसे राज्य का अस्तित्व था जिसके पास निश्चित रूप मे काफी प्रदेश था और उसम काफी बडी सख्या मे भारतीय आबादी थी।

"फिर यह भी याद रखने की बात थी कि धन व साधन भी उसके पास थे। "वस्तुत करीब बीस करोड रुपये चन्दे से प्राप्त हुए थ जिससे नागरिक प्रशासन और फौज का खच चलाया गया।' यह साबित हो चुका है। साथ ही इस बात के सबूत भी है कि इस सरकार का अपना सिविल एण्ड आर्मी गजट भी था।

' यही नही बल्कि शहादतो के अनुसार इम्फाल के लिए डाक के टिकट की डाइया भी ढाली जा चुकी थी और टिकट छापने की तयारी की जा रही थी। टिकट पर दिल्ली के लालकिले की छायाकृति के साथ यह अकित होने वाला था – 'आजाद हिन्द की आरजी हुकूमत के नाम पर दिल्ली चलो।'

"इस तरह एक ऐसे भारतीय राज्य का अस्तित्व था जिसकी सील मुहर थी और जिसका बाकायदा शासन था अत अन्तर्राष्ट्रीय विधान के अनुसार दूसरे देश से युद्ध करने का उसे हक था, जिसका उपयोग करके ही उसने भारत की स्वतन्त्रता के लिए युद्ध किया। युद्ध शुरू करने के बाद लडाई म किए कामो के लिए, अन्तर्राष्ट्रीय विधान के अनुसार, नागरिक प्रशासन का विधान (म्युनिसिपल ला) लागू नही किया जा सकता। अन्तर्राष्ट्रीय विधान के अनुसार दो स्वतन्त्र देश या दो राज्य एक दूसरे से युद्ध कर सकते है और युद्ध मे किए कामो के लिए नागरिक कानून के अन्तगत कोई कारवाई नही की जा सकती। हत्या और तोडफोड क काम साधारणत जुम माने जाते हैं पर लडाइ म तो यही कत्तव्य बन जात है, अत सेना क अगभूत लोग सेना क सामान्य कत्तव्य के रूप म ऐसा करें तो व्यक्तिगत रूप स उनम स किसी को उसक लिए अपराधी नही ठहराया जा सकता।"

आगे उन्होने अन्तर्राष्ट्रीय विधान के इस सवमान्य सिद्धान्त का उल्लेख किया कि ' दो राष्ट्र जब एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दें तो फिर उसके उचित

अनुचित होने का प्रश्न ही नही रहता। एक राष्ट्र के किसी दूसरे राष्ट्र के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देने पर यह सवाल ही नही उठ सकता कि ऐसा करना उचित और न्याययुक्त था या नही और ऐसा करने का उस राष्ट्र को हक था या नहीं।

अन्तर्राष्ट्रीय विधान ऐसा स्थिर विधान नही है जो समय के अनुसार बदलता न रहे। सभ्यता की प्रगति के साथ साथ समय समय पर उसमें परिवर्तन होता रहा है। अब वह जिस रूप मे है उसके अनुसार "स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र ससार के किसी एक भाग के बजाय, सारे ही ससार के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। अत पराधीनता से मुक्ति के लिए किया जानेवाला कोई भी युद्ध आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय विधान के अनुसार पूरी तरह न्यायोचित है।' इसके बाद उन्होने कहा "यह न्याय का मजाक नही तो क्या है कि इग्लण्ड की स्वतन्त्रता के लिए तो जमनी, इटली और जापान तक से लडने को हमसे कहा जाए, पर खुद अपने देश का दासता से मुक्त करने के लिए - चाहे वह दासता इग्लैंड की ही क्यो न हो—स्वतन्त्र भारतीय राज्य के प्रयत्न को गलत माना जाए ? हम इस स्थिति को स्वीकार नही कर सकते और हमारी यह निश्चित धारणा है कि, अतर्राष्ट्रीय विधान के अनुसार, उसे अनुचित नही ठहराया जा सकता।"

उन्होने तर्क किया कि युद्ध करने वाले दोनो पक्षो का स्वतन्त्र या सार्वभौम राष्ट्रों के रूप मे मान्य होना आवश्यक नही है। "एक राज्य और उस पर आधिपत्य रखने वाले अधिपति के बीच भी युद्ध हो सकता है जैसा कि बोअर युद्ध मे हुआ। और ब्रिटिश इतिहास से तो आप परिचित ही है—चार्ल्स प्रथम की मृत्यु कैसे हुई ? मैग्नाकार्टा की क्या कहानी है ? जेम्स द्वितीय का क्या हुआ ? यह सब इतिहास के पन्नो मे दर्ज है। इन सबसे इसके सिवा और किसी नतीजे पर नही पहुचा जा सकता कि कभी ऐसी स्थिति आती ही है जब जिन्हें आप बागी कह या विद्रोही वे सगठित रूप से दासता से मुक्ति का प्रयत्न करते हैं और युद्ध शुरू हो जाने पर फिर तो वह सब होता ही है जो युद्ध मे आम बात है।' उन्होने दृढ स्वर मे कहा 'कोई भी पराधीन राष्ट्र मुक्ति के लिए युद्ध शुरू कर दे तो युद्ध करने वाले दोनो ही पक्षों के सैनिको द्वारा किए गए युद्धजनित कामो के लिए इस तरह मुकदमा नही चल सकता। इसको और स्पष्ट करने के लिए बिल्कुल सहज भाव से मैं पूछूगा इस

युद्ध में अंग्रेजों की तरफ से लड़ने वालों के लिए क्या कहा जायेगा? उन्होंने क्या कभी लोगों को मारा? तो क्या उन पर भी इस अदालत में इस तरह के मुकदमे चलाया जाएगा? यह बड़ा विचित्र बात होगी।

उन्होंने अमरीका के गृहयुद्ध का भी हवाला दिया, जिसमें दक्षिण के ११,१२ राज्य अमरीका के राज्य संघ (संयुक्त राज्य) से अलग होने के लिए उत्तरी प्रदेश के उन राज्यों से लड़े थे जो संयुक्त रहने के पक्ष में थे। उन्होंने कहा, "अमरीका के उत्तरी और दक्षिणी राज्यों के बीच युद्ध का उदाहरण हमारे सामने है, जिसे अब्राहम लिंकन से लेकर सभी ने ठीक ठहराया और युद्ध समाप्त होते ही सब मामला ठीक हो गया।"

अन्तर्राष्ट्रीय विधान की युद्ध सम्बन्धी कसौटियों का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि उनके अनुसार विद्रोहियों का वास्तविक रूप में ऐसा राजनीतिक संगठन होना चाहिए जो स्वरूप, जनसंख्या और साधनों की दृष्टि से राज्य संचालन की क्षमता रखता हो, उसके पास बाकायदा भरती की हुई सेना हो और दोनों पक्ष युद्ध के नियम बरतें। जहां ये सब बातें हों उसे निस्सन्देह युद्ध स्थिति कहा जायगा। इस दृष्टि से विचार करें तो इस मामले में यह पूरी तरह सिद्ध हो चुका है कि विद्रोहियों का इस तरह का राजनीतिक संगठन था। वे विद्रोही थे, इससे कोई इनकार नहीं करता, लेकिन उन्होंने जो कुछ और जिस तरह किया वह अंतर्राष्ट्रीय विधान के अनुसार दो राष्ट्रों के बीच होने वाला युद्ध ही था।

अंत में उन्होंने कहा, "अगर आप इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इस तरह का राजनीतिक संगठन था जिसके पास जनसंख्या व साधन थे जो युद्ध घोषित करे और संगठित सेना द्वारा युद्ध चला सके तो आपका निर्णय उनके पक्ष में ही हो सकता है उसी तरह जिस तरह कि अपने आदमियों (सैनिकों) द्वारा दूसरों को मारने जैसे कामों पर आप गर्व करते और उन्हें ठीक समझते हैं।"

युद्ध घोषणा के अधिकार के लिए अस्थायी सरकार का क्या विदेशों की मान्यता होनी आवश्यक थी? इस सवाल को उठाकर उन्होंने कहा, "यह कल्पना ही व्यर्थ है, क्योंकि जिस देश की दासता से छूटने के लिए प्रयत्न किया जा रहा हो

वह देश बगावत सफल हुए बिना उसको मान्यता नहीं दे सकता। अलबत्ता युद्ध स्थिति से इनकार नहीं किया जा सकता और युद्ध स्थिति का मतलब है लड़ाई में आमतौर पर जो कुछ होता है उसे साधारण दण्ड विधान के क्षेत्र से बाहर रखना।

युद्धरत पक्ष (बेल्जिरेंट) की हैसियत के बारे में अनेक प्रमाण प्रस्तुत करने के बाद उन्होंने चर्चिल के उस भाषण का उल्लेख किया जो उन्होंने 1937 में हुए स्पेन के गृह युद्ध के समर्थन में ब्रिटिश पार्लियामेंट में दिया था 'विपक्ष के माननीय सदस्य ने विद्रोहियों के बारे में जो कुछ कहा उसे सुनकर मुझे उनको याद दिलानी पड़ती है कि किसी पार्टी के सदस्य होते हुए भी वह किन सिद्धान्तों की उपेक्षा कर रहे हैं। विद्रोह का अधिकार उनका पहला सिद्धान्त था उन्नीसवीं सदी के इतिहास को हम देखें तो हमें ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं मिलेगी जब स्वयं ब्रिटिश सरकार ने विद्रोहियों का पक्ष लिया। ग्लाइडसाइड पार्टी के नेता (मि० मक्सटन) ने अपने खरे स्वभाव के कारण विद्रोहियों का स्पष्ट समर्थन करने में आगा पीछा नहीं किया। उनके अनुसार देखने की बात सिर्फ यही है कि विद्रोह जिस उद्देश्य से हुआ है वह हमें पसंद है या नहीं। इसलिए हमें यह सिद्ध करने की जरूरत नहीं कि स्पेन की सरकार का पक्ष ही बिल्कुल ठीक है और विद्रोही गलत रास्ते पर हैं हो सकता है कि उन्हें (विद्रोहियों को) सफलता न मिले, मगर इस बीच वे *युद्धरत पक्ष के हकों के अधिकारी हैं।'*

आगे उन्होंने कहा कि इस मुकदमे में जिस अस्थायी सरकार की बात है, उसके पास तो भू भाग था, पर ऐसा न होता तो भी उसके युद्धरत पक्ष होने के हक में कोई फर्क न पड़ता। पिछले और इससे पहले के महायुद्ध के समय बेल्जियम तथा अन्य देशों की जो प्रवासी सरकारें लंदन में थीं, उनके पास तो एक इंच भी अपना प्रदेश नहीं था, फिर भी इस अदालत के सामने ऐसा कहने की कौन जुर्रत कर सकता है कि हालैण्ड, पोलैण्ड, फ्रांस या युगोस्लाविया की (यानी ऐसी प्रवासी सरकारों की) सेना को अपने देश की मुक्ति के लिए नहीं लड़ना चाहिए था और उनके सैनिकों को युद्धरत पक्ष के अधिकार नहीं मिलने चाहिए थे।

अभियोग पक्ष की ओर से यह मुद्दा उठाया जा सकता था कि उनकी बात आजाद हिन्द फौज वालों पर इसलिए लागू नहीं हो सकती क्योंकि उन्होंने वफादारी की शपथ के विरुद्ध आचरण नहीं किया था, जबकि आजाद हिन्द फौज वालों ने सम्राट की वफादारी की शपथ के बावजूद सम्राट के विरुद्ध युद्ध किया। इस दृष्टि में रख भूलाभाई ने कहा कि वफादारी की बात इस मुकदमे में आड़े नहीं आती, क्योंकि बुनियादी वफादारी से आजाद हिन्द फौज वाले कभी नहीं हटे। इंगलैण्ड के सम्राट के प्रति वफादारी की प्रचलित शपथ, भारतीय सेना में प्रवेश के समय उन्होंने जरूर ली थी, पर किसी की भी बुनियादी वफादारी तो अपने देश के ही प्रति हो सकती है। दोनों वफादारियों के बीच टक्कर होने पर, उन्होंने विदेशी राजा की वफादारी से अपने देश की वफादारी को ऊंचा स्थान देकर इतिहास में श्रेष्ठ उदाहरण ही प्रस्तुत किया।

इस सम्बन्ध में उन्होंने यह भी बताया कि 17 फरवरी को फरर पार्क में जो कुछ हुआ उसके बाद सम्राट के प्रति वफादारी की कोई बात रही ही नहीं। फौज के अंग्रेज अफसरों और जवानों को भारतीय अफसरों और जवानों से अलग करके भारतीय सैनिकों को फरर पार्क में इकट्ठे होने का आदेश दिया गया। 30,000 से 45 000 तक उनकी कुल संख्या थी। वहां उन्हें इकट्ठा कर, कर्नल हण्ट ने एक वक्तव्य या भाषण द्वारा उन्हें ब्रिटिश सरकार की ओर से जापान सरकार के प्रतिनिधि कर्नल फूजीवारा को सौंप दिया। उसके बाद कर्नल फूजीवारा ने जापानी में भाषण करते हुए जिसका अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी में भी अनुवाद किया गया, कहा कि जो भारतीय युद्धबंदी अपने देश की मुक्ति के लिए सेना संगठित करना चाहें वे ऐसा कर सकते हैं और जिन्होंने ऐसा करना चाहा उन्हें उसने कप्तान मोहनसिंह के सुपुर्द कर दिया। तब कप्तान मोहनसिंह ने भाषण दिया जिसमें उन्होंने कहा कि भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई के लिए आजाद हिन्द फौज संगठित करने को वे तैयार हैं। वहां उपस्थित सभी भारतीय युद्ध बंदियों ने इसका स्वागत किया।

' पुनरावृत्ति होने पर भी मैं कहना चाहता हूं कि अपने लोगों और अपने देश को विदेशी सरकार की दासता से मुक्त करने के लिए जो विद्रोही लड़े उसमें वफादारी का सवाल उठता ही नहीं।" उन्होंने कप्तान अरशद अहमद के इस स्पष्ट

वक्तव्य का हवाला दिया "'हमारी वफादारी तो एकमात्र अपने देश के प्रति ही हो सकती है।' और कहा कि लडाई जब नाम के लिए सम्राट के खिलाफ हो, पर दरअसल की जाए अपने देश की स्वतंत्रता के लिए तब (सम्राट के प्रति) वफादारी का कोई सवाल हो ही नही सकता। इससे कोई फर्क नही पडता कि आजाद हिन्द फौज जापानी फौज के साथ या उसके निर्देश में लड रही थी यह भी कहा जा सकता है कि वह जापानियो की कठपुतली सरकार की ओर से लड रही थी। लेकिन उसका उद्देश्य भी वही था जो बेल्जियम और फ्रांस को स्वतंत्र करने वालो का था जो मित्र राष्ट्रो के साथ लड रहे थे। क्या एक कमान के मातहत लडने से कोई दूसरे का कठपुतला हो जाता है। ब्रिटिश फौज जनरल आइसेनहावर की कमान मे लड रही थी, तो क्या अग्रेज अमरीकनो के कठपुतले कहे जाएगे।"

आजाद हिन्द फौज की वफादारी के प्रश्न पर उन्होने कहा "प्रचलित अर्थ मे आजाद हिन्द फौज के सदस्यो की वफादारी सम्राट के प्रति थी लेकिन उनकी वफादारी अपने देश के प्रति भी थी, और उन्होने अनुभव किया कि वक्त आ गया था जब दोनो वफादारियां में टक्कर थी। और ऐसा ही उदाहरण हम इतिहास में भी मिलता है। यह एसे देश का है, जिसने आज दुनिया की रक्षा की है और प्रथम महायुद्ध मे भी, और जिसने मानव सभ्यता के लिए करिश्मे कर दिखाए है। यह देश अमरीका (सयुक्त राज्य) है। यदि आप इस उदाहरण को नही मानेंगे, तो यह न्याय की हत्या होगी।

अमरीका की 4 जुलाई, 1776 को की गई स्वतंत्रता की घोषणा का उल्लेख कर उन्होने कहा "अमेरिका को आखिर युद्ध ही करना पडा, जिसके फलस्वरूप 1781 में सयुक्त राज्य अमरीका की दुनिया के एक स्वतन्त्र प्रजातन्त्र के रूप में स्थापना हुई। इतिहास की यही परपरा है। उन्होने फिर आजाद हिन्द की अस्थायी सरकार के प्रति वफादारी की शपथ की, अमरीका की स्वतन्त्रता की घोषणा से तुलना की और कहा "दोनो का उद्देश्य एक ही है।"

वफादारी के प्रश्न के अलावा, आजाद हिन्द फौज वालो के युद्धबदी होने के कारण क्या स्थिति में कोई अतर हो गया ? यह सवाल इस तर्क के कारण उठा कि

फरर पाक म कुछ भी क्यो न हुआ हो फिर भी उनकी गिनती तो युद्धबन्दियो मे ही रही । भूलाभाई न इस पर कहा कि युद्धवन्दियो का स्वेच्छा से अपन देश की स्वतत्रता के लिए लडन का कोई रुकावट नही है । फिर आजाद हिन्द फौज का जहा तक सबध है, अदालत म पश सबूत से स्पष्ट है कि वह तो थी ही अपने देश की स्वतत्रता के लिए और इसम रुकावट डालनेवाले सभी स—यहा तक कि जापान स भी—लडन को वह तयार थी। यदि यही उसका सच्चा इरादा था तो युद्धबदी क्या कर सकता है क्या नहीं, यह प्रश्न नही उठता । वे दुश्मन की लडाई लडने के लिए दुश्मन के साथ नही मिले थे । पहले पहल बनी आजाद हिन्द फौज तो बल्कि इसीलिए भग हो गई थी क्योकि मोहनसिंह को आशका थी कि उनकी अनुपस्थिति मे जापानी कही अपने मतलब के लिए ही उसका उपयोग न करने लगें । इस प्रकार मोहनसिंह जहा इस बात के लिए उत्सुक थे कि भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए सेना का सगठन किया जाए वहा इस बात की भी उन्हें पूरी चिन्ता थी कि वह जापानियो के हाथ की कठपुतली न बनें । बाद की घटनाओ से यह स्पष्ट भी है कि आजाद हिन्द फौज जापानियो के हाथ की कठपुतली नही थी बल्कि जापानियो से मित्र सेना के रूप म सहायता प्राप्त हुए भी उसन एकमात्र भारतीय स्वतत्रता के लिए ही काम किया । बैंकाक का प्रस्ताव भी इसी बात की पुष्टि करता है जिसम असदिग्ध रूप मे कहा गया कि आजाद हिन्द फौज का उपयोग केवल इन कामो के लिए होगा—(1) भारत म ब्रिटिश या अन्य विदेशी शासन के खिलाफ लडाई, (2) भारत की स्वतत्रता को प्राप्त करना और उसे सुरक्षित रखना तथा (3) भारतीय स्वाधीनता।"

अदालत म पश शहादतो के आधार पर उन्होंने यह भी बताया कि आजाद हिन्द फौज के सभी अफसर एकमात्र भारतीय ही थे और कुल मिलाकर फौज पूरी तरह स्वतत्र थी । सनिक उसम बिना किसी दबाव के, स्वच्छा से शामिल हुए थे यह भी इस बात स सिद्ध है कि अभियुक्तो तथा सुभाष बोस न हर मौके पर भाषण करत हुए यही कहा कि जो कोई इससे अलग होना चाहे वह इस छोडकर जा सकता है । इसके सिवा भी इसके स्वच्छा से सगठित होने का सबसे बडा प्रमाण यह है सेना म कुछ ही लोगो को हथियार दिए जा सके और लडाई की ट्रेनिंग दी जा सकी, बाकी बहुत से आदमी साधनो की कमी के कारण उससे वचित ही रहे ।

सम्राट के विरुद्ध लडाई के मुख्य आरोप ाी इस तरह सफाई के बाद उन्होंने
हत्या के आरोप का लिया और गवाहियों के तपमोल स विश्लेषण के बाद निष्कर्ष
निकाला कि उनसे उसकी पुष्टि नही होती।

अत म अन्तर्राष्ट्रीय विधान पर आधारभूा कानूनी स्थिति पर जोर देते हुए
उन्होंने कहा कि अभियुक्तो पर जो आरोप लगाए गए हैं वे उन पर लगने ही नहीं
चाहिए। मगर मुकदमे का परिणाम तो एक तरह जानाबूझा ही था। अन्तर्राष्ट्रीय विधान
के मुद्दो पर तो ऐसा हा न्यायालय ठीक विचार कर सकता था जो फौजी अदालत
के वातावरण स मुक्त होता। अस्तु फौजी अदालत न शाहनवाज का न केवल
सम्राट के खिलाफ लडाई का अपराधी ठहराया बल्कि मुहम्मद हुसेन की हत्या मे
सहयोग का दोषी भी माना। सहगल और ढिल्लो को सिर्फ सम्राट के खिलाफ
लडाई का ही दोषी माना। तीनो को जन्मभर द का दड दिया गया, साथ ही उनकी
तनख्वाह और भत्ते जब्त कर लिए गए।

इन तीनो पर मुकदमा चल रहा था, उसी बीच सनिक अधिकारियो को
आजाद हिन्द फौज के बाकी ऐसे लोगो के बारे मे भी विचार करना पडा। इसके लिए
कमाण्डर-इन चीफ आकिनलेक ने 11 नवम्बर 194 को दिल्ली मे फौजी कमाण्डरो
को सलाह के लिए बुलाया। आकिनलेक के जीवनीकार के अनुसार उस समय 'आजाद
हिन्द फौज के मामले पर न कवल देश भर म उत्तेजना फली हुई थी बल्कि स्वय
सेना के बहुत जिम्मेदार और वरिष्ठ अधिकारी तक उससे प्रभावित हुए बगर नही
रह थे। (आजाद हिन्द फौज के बाकी लोगो के बारे म) क्या किया जाए, इस बारे
म इस सम्मेलन म और इसके बाद भी बडा मतभेद रहा। एक जनरल ने आकिन
लक को लिखा कि वतमान स्थिति म सेना की वफादारी ही सबसे अहम सवाल
है—म इस बात से सहमत हू कि प्रचार को रोकना वाछनीय है, क्योकि उसका
भारतीयो पर ही नही बल्कि दूसरे बहुत से लोगो पर भी बुरा असर पड रहा है।
लेकिन मेरा कहना यह है कि उदारता या ढिलाई से हमारा तात्कालिक उद्देश्य सिद्ध
नही होगा।" मगर सनिक उच्चाधिकारियो के ऐसे विचार के बावजूद कि भारतीय
सेना की वफादारी (अग्रेजो के प्रति) बनाए रखने के लिए आजाद हिन्द फौज के प्रति
उदारता खतरनाक होगी, आकिनलेक न यहा सिर्फ रिश की मालूम पडती है कि

बाकी लोगों पर सम्राट के विरुद्ध लड़ाई का मुकदमा न चलाया जाए। [illegible] 1945 को उन्होंने वाइसराय को लिखा : 'भारतीय सैनिकों के [illegible] से मैं जानता हूँ कि उनकी आंतरिक भावनाओं को [illegible] मुश्किल है, चाहे वे अफसर [illegible] ही क्यों न हों और [illegible] वाले क्यों न हों। इतिहास भी यही बताता है। भारतीय सैनिकों में आजाद हिन्द फौज के बारे में क्या भावना है, इसका आज किसी [illegible] है ऐसा मैं नहीं समझता। मेरा तो ख्याल है और विभिन्न सूत्रों से [illegible] इसकी पुष्टि करती है कि उनमें आजाद हिन्द फौज के प्रति सहानुभूति [illegible] रहा है, साथ ही ऐसी प्रवृत्ति भी [illegible] और बढ़ रही है [illegible] [illegible] द्वारा जो [illegible] किया गया और [illegible] लिए वह कोई ऐसी बात नहीं है जिसके लिए [illegible] आचरण के [illegible] अपनी जाति के [illegible] संभव नहीं है।

सजा को बहाल रखा जाए।" एसा ही किया गया और बाकी लोगो पर सम्राट के विरुद्ध लडाई का जो मुकदमा चलने वाला था, उसे भी रोक दिया गया।

अंग्रेज कमाण्डर इन चीफ आकिनलेक बडी कठिन स्थिति म फस गए थे। जैसा कि उनके जीवनीकार ने लिखा है, वाइसराय को अपने ज्ञापन मे उन्होने "अपने दिल को इस तरह खोलकर रख दिया जैसा अंग्रेजी राज के इतिहास मे किसी कमाण्डर इन-चीफ ने नही किया। यह ब्रिटिश शासन का सध्याकाल था। साम्राज्य का सूर्य डूब रहा था। अपने या अपने ऊपर निर्भर बहादुर, परेशान और दुखी, अंग्रेज अफसरो के मार्गदर्शन के लिए कोई रागनी उनके पास नही थी। अत अपने साहस, चालीस साल के अनुभव और भारतीय जनता की शुभकामना के अलावा उनका और कोई मार्गदर्शक न था।

लाल किले म हुए आजाद हिन्द फौज के मुकदमे पर पटाक्षेप करने से पहले जवाहरलाल नेहरू के उस पत्र का उल्लेख भी आवश्यक है जो उन्होने मुकदमे के काफी समय बाद लिखा था। 4 मार्च 1946 को लिखे उस पत्र म उन्होंने आजाद हिन्द फौज के लोगो के खिलाफ सभी मुकदमे उठा लेने के लिए धन्यवाद देते हुए आकिनलेक को लिखा था "मुझे निश्चय है कि इस निर्णय का व्यापक स्वागत होगा और वैसा वातावरण बनाने म मदद मिलेगी जैसा कि हम सभी बनाना चाहते हैं।" पत्र में आजाद हिन्द फौज के बारे म भारतीय भावना का सही चित्रण है, इसलिए उसका कुछ अंश यहा देना अप्रासंगिक न होगा

"दक्षिणपूर्व एशिया म भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के कुछ नेताओ ने जो राजनीतिक और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाया वह मुझे पसद नही था। यही नहीं बल्कि इससे पहले भी अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय मामलो मे मेरा उनसे मतभेद रहा है। फिर भी, वे हमारे ही आदमी हैं। हमारा उनसे भाईचारा और सहानुभूति भी है। उनके विरुद्ध कोई भी कारवाई हुई तो भारतीय जनता पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी, यह भी मैं जानता हू। बडी तादाद म उनको फौजी अदालतसे कडी सजा की सभावना से मुझे बडी चिंता हुई। न केवल उन लोगो की खातिर बल्कि इसलिए भी मुझे चिंता हुई कि भारत पर उसका बहुत बुरा असर पडेगा। यह

सोचकर ही मैंने आजाद हिन्द फौज के बारे में सार्वजनिक रूप से कुछ कहा और उसे दोहराया। उस वक्त मुझे इस बात का कोई ख्याल नहीं था कि उसका राजनीतिक लाभ भी उठाया जा सकता है। लेकिन उस पर जो प्रतिक्रिया हुई वह बड़ी अद्भुत और आश्चर्यजनक थी। आश्चर्यजनक इसलिए कि लोगों पर व्यापक रूप से और उसका गहरा असर हुआ। भारतीय जनता की भावना का पता तो मुझे था, पर यह इतनी गहरी और व्यापक है, इसका पूरा भान मुझे नहीं था। आजाद हिन्द फौज की कहानी इतनी तेजी से फैली कि कुछ ही सप्ताहों में दूर दूर के गांवों तक जा पहुंची और सभी जगह उसकी सराहना होने लगी तथा उसके सैनिकों (अभियुक्तों) के भविष्य की चिंता व्याप्त हो गई। कोई भी राजनीतिक संगठन भारत में ऐसी व्यापक और विशाल प्रतिक्रिया पैदा नहीं कर सकता था, चाहे वह कितना ही मजबूत और कार्यक्षम क्यों न हो। यह उन अनोखी बातों में थी, जो एकदम मनुष्य के दिल को छू लेती है और जन भावना में बाढ़ पैदा कर देती हैं। कारण स्पष्ट है। आजाद हिन्द फौज के बारे में जनता को कोई खास जानकारी नहीं थी और उसमें भाग लेनेवाले व्यक्तियों को कोई नहीं जानता था। लेकिन जैसे ही उसकी कहानी प्रकट हुई, लोगों को वह भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई का ही एक पक्ष लगा और उसमें योगदान करनेवाले स्वातन्त्र्यवीर बन गए। कोई इससे सहमत हो या नहीं, यह तो समझना ही चाहिए कि कैसी घटनाएं घट रही है और कौनसी शक्तियां उनके पीछे काम करती हैं। जनता में जो व्यापक उत्साह प्रकट हुआ वह तो आश्चर्यजनक था ही, पर उससे भी आश्चर्यजनक बात यह है कि भारतीय सेना में भी—बहुसंख्यक जवानों और अफसरों सभी में—उसकी वैसी ही प्रतिक्रिया हुई है। राजनीतिज्ञ या आन्दोलनकारी ऐसी भावना उत्पन्न नहीं कर सकते, न उन्होंने ऐसा किया। आजाद हिन्द फौज के मामले में यही बुनियादी बात है जिसे भूलना नहीं चाहिए। और सब बातें इसके आगे गौण हैं चाहे वे कितनी ही महत्वपूर्ण क्यों न हों।"

आजाद हिन्द फौज के इन विविध पहलुओं और उनके तीन अफसरों पर चले मुकदमे में सामने आई बातों से पता चलता है कि भारत की स्वतन्त्रता के लिए भारत के महान सपूत सुभाष बोस ने दक्षिण पूर्व एशिया में कितनी महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक भूमिका अदा की। उसके बाद, लाल किले के मुकदमे में भारत के

महान वकील और राष्ट्रीय नेता भूलाभाई ने आजाद हिन्द फौज में लड़नेवाले उसके तीन अफसरों के बचाव में जो प्रमुख योगदान किया उसे भी भुलाया नहीं जा सकता। सुभाष बोस की महानता उनकी दूरदृष्टि और कल्पना शक्ति के साथ-साथ अपने विचारों को कार्यान्वित करने के लिए प्रदर्शित उनके अपूर्व साहस में है। इस बात को हमें भूलना नहीं चाहिए कि अहिंसा के अनेक पुजारी और उस पर आचरण करनेवाले बहुत से लोग ऐसे हैं जिनका गांधीजी की तरह धार्मिक सिद्धान्त के तौर पर उसमें विश्वास नहीं है। उनके लिए तो अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए अन्य साधनों की तरह यह भी एक साधन ही था और उन्होंने इसे अपनाया सिर्फ इसलिए कि भारत की स्थिति में अन्य साधनों से उन्हें वह अधिक उपयुक्त लगा। आम लोगों ने यानी गांवों के लोगों ने—जिनका जवाहरलाल ने उल्लेख किया है—जब सुना कि सुभाष बोस और आजाद हिन्द फौज के लोगों ने देश की आजादी के लिए कैसी बहादुरी दिखाई तो वह उन्हें पूजने लग गए। उनकी आंखों में वे राजद्रोही नहीं, देश की स्वतन्त्रता के लिए अपूर्व बलिदान करने वाले देशभक्त थे। भूलाभाई की महानता इसमें है कि उन्होंने इनकी वीरगाथा को अनोखे ढंग से प्रस्तुत किया। स्वतन्त्र भारत की अस्थायी सरकार की स्थापना और उसके द्वारा देश की आजादी के लिए युद्ध की योजना के पीछे जो चमत्कारी साहस और कल्पना था, वैसी ही भूलाभाई की प्रखर बुद्धि थी, जिसने यह सिद्ध कर दिया कि अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए विद्रोह करना कानून की नजर में भी उचित था।

जिस शानदार ढंग से भूलाभाई ने यह काम किया उसको देखते इसमें आश्चर्य नहीं कि मुकदमे के बाद जनवरी 1946 में बम्बई लौटने पर उनका शानदार स्वागत हुआ। वहां पहुंचने के कुछ ही समय बाद 13 जनवरी 1946 को पत्रप्रतिनिधियों के एक समूह की ओर से ताजमहल होटल में उनका सम्मान किया गया। आजाद हिन्द फौज के मुकदमे की पैरवी के रूप में देश की जो महान सेवा उन्होंने की उसके लिए उन्हें चांदी की मंजूषा में रखकर मानपत्र भेंट किया गया। बंबई के मेयर तथा अन्य सम्भ्रान्त नागरिकों ने उनकी प्रशंसा में भाषण किए। इस अवसर पर एक वक्ता ने देसाई-लियाकत समझौते को लेकर कांग्रेस द्वारा उनके साथ किए सलूक का भी उल्लेख किया। कुछ तीखेपन से उसने कहा "जिन भूलाभाई ने कांग्रेस

की इतनी सेवा की, और काग्रेस का आदोलन जब बिल्कुल शिथिल पड गया था और काग्रेस के सभी नेता जेलो म थे तब काग्रेस को जिन्दा रखने की जिन्होने भरसक कोशिश की, उन्हे 1945 के चुनाव मे असेम्बली म जाने से क्यो रोका गया यह समय मे नही आता ।"

अत मे हम जवाहरलाल नेहरू का वह पत्र और प्रस्तुत करेंगे जो उन्होने 6 फरवरी 1946 को लखनऊ से भूलाभाई को भेजा था । उसमे उन्होने लिखा था 'आज नन्दन मुझे मिले । उन्होने मुझे बताया की वह बबई मे आपस मिले थे और आजाद हिन्द फौज के पहले मुकदमे की समाप्ति पर मेरा कोई पत्र या तार न पाकर आपको बहुत निराशा हुई । आपकी यह भावना उचित है और मैं सचमुच कसूरवार हू । वास्तव म मुकदमे की जिस तरह आपने परवी की और खास कर उसमे जो आपका आखिरी भाषण हुआ वह प्रशसनीय है और अपने भाषणो और वक्तव्यो म कई बार मैंने यह कहा भी है । जहा तक आपको पत्र न लिखने का सवाल है, बात कुछ यो हुई कि इन दिनो मैं यहा से वहा घूमता रहा हू जिससे लिखने को बहुत कम वक्त मिलता था । बाद मे बदकिस्मती से दौरे के बीच ही पेचिश हो गई । इसलिए मैं आशा करता हू कि मेरी कोताही के लिए आप मुझे माफ करेंगे । बाद म मैंने लिखने का विचार किया भी था, लेकिन पता नही क्यो ऐसा लगा कि अब बहुत देर हो गई है और लिखना व्यर्थ होगा । लेकिन, जैसा मैंने बताया, जिस तरह आपने मुकदमा लडा उससे निस्सदेह मै बहुत प्रभावित हुआ हू ।"

आजाद हिन्द फौज के मुकदमे म भूलाभाई ने स्मरणीय योगदान किया वह काग्रेस और मातभूमि के लिऐ उनकी महान सेवा थी । यही नही देश के लिए यह उनकी महान आत्मत्याग भी था क्योकि इसम किए भारी परिश्रम के कारण, वह कुछ महीनो से ज्यादा जिंदा न रह सके ।

12

अन्तिम यात्रा

जनवरी 1946 मे बबई लौट आने पर भूलाभाई का स्वास्थ्य बहुत बिगड गया। हालत इतनी नाजुक हो गई था कि डाक्टर रोज उन्ह देखते थे। उनके डाक्टर (डा० आर० एन० कूपर) के शब्दो म "उनका मस्तिष्क तो उस वक्त भी बहुत सक्रिय और स्पष्ट था। पर उनकी विनोद वृत्ति जाती रही थी। वह हताश हो गए थे। उन्होने शेष जीवन जन-सेवा मे लगाने की आशा की थी, पर उससे उन्हे वचित होना पडा। काग्रेस के साथियो ने उन्हे त्याग दिया, इसका उन्ह बडा क्षोभ था और कोई भी इलाज कारगर नही हो रहा था। उन्ह इस बात का बडा रज था कि अपने देश की उन्होने जो बहुमूल्य सेवा की और उसके लिए जो त्याग किए उसका ऐसा प्रतिफल उन्ह मिला। फिर भी किसी क प्रति कोई कटुता उनम नही थी।"

बीमारी के आखिरी महीनो म गाधीजी दो बार उन्ह देखने गए। लेकिन दोनो ही बार अपन मौन दिवस पर ही गए और पहुचते ही सकेत से भूलाभाई को बता दिया कि मौन के कारण वह कोई बातचीत नही करेंगे। भूलाभाई के लिए यह बडी निराशा की बात था, क्योकि वह गाधीजी से ही यह सुनना चाहते थे कि काग्रेस ने उनके साथ ऐसा अनुचित व्यवहार क्यो किया। भावावेश म उन्होंने गाधीजी से बडे स्पष्ट शब्दा मे कहा कि मेरे साथ अन्याय हुआ है और यह खेद प्रकट किए बिना भी नही रहे कि आप जानबूझ कर मौन के दिन आते हैं जिससे आपके साथ कोई बात ही न हो सके। भावावेश म होने पर भी उन्होन दीनता नहीं दिखाई। उन्होने गाधीजी से साफ कहा—आपकी या अन्य किसी की कोई कृपा मुझे नही चाहिए, मैंने तो पूरी वफादारी के साथ देश की सेवा की है इसीलिए

मुझे पूरा भरोसा है कि कांग्रेस न चाहे जो अन्याय किया देश मेरे साथ न्याय करेगा।" गांधीजी ने इसका कोई जवाब नहीं दिया।

अन्याय और निराशा की यह भावना उन्हें बराबर पीडित करती रही, यह उनके निकटवर्तियों तथा उन्हें देखने आने वालों से छिपा नहीं रहा। गीली आंखों और वेदना भरे स्वर में वह अपने साथ हुए अन्याय का जिक्र करते और कहते—कांग्रेस ने कैसा ही सलूक क्यों न किया हो, देश और वे लोग जो मुझे जानते हैं तथा जिन्हें पता है कि देश के लिए मैंने क्या और क्या काम किया मेरे साथ जरूर न्याय करेंगे।

1946 के आखिरी दिनों में उनका मस्तिष्क जवाब देने लगा। बातचीत में उनको उपयुक्त शब्द न मिल पाते। आखिर अंत की घड़ी आ ही गई, जिसका वर्णन उनके डाक्टर (कूपर) के ही शब्दों में करना ठीक होगा "डा० कोट्टियार और मैं दिन में तीन बार उन्हें देखते थे। भूलाभाई ने यह समझ लिया था कि उनका अंत आ गया है, इसलिए रात को जब हम उन्हें देखने जाते तो चलते समय वह विदा मांगते। वह सोचते थे कि सवेरे हम उन्हें जीवित न देख पाएंगे। उनकी मानसिक शक्ति तेजी से नष्ट हो रही थी। कभी-कभी तो उनका मस्तिष्क बिल्कुल शून्य हो जाता था। 6 मई 1946 के बड़े सवेरे वह बेहोशी में डूब जा रहे थे। उनकी पुत्रवधू माधुरी ने 'भाई' कहकर उन्हें पुकारा, तभी उन्होंने आंखें खोलीं और होंठ कुछ हिलाए। माधुरी ने उनके मुंह में थोड़ा पानी डाला और वह अमरता की गोद में चले गए।

उनका शव उनकी लाइब्रेरी में रखा गया, जहां सैकड़ों व्यक्तियों ने देश के महान स्वातंत्र्य योद्धा को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

शवयात्रा में उनके पुत्र धीरूभाई, आजाद हिंद फौज के मुकदमे के नायक शाहनवाज खां, डा० कूपर और उनके एक अन्य साथी ने पहले उनके शव को कंधा लगाया। 'जय हिंद' की ध्वनि के साथ उन्हें लाइब्रेरी की मेज से कंधों पर उठाकर अर्थी पर रखा गया। वार्डन रोड के उनके मकान से अर्थी कांग्रेस भवन गई और वहां से सारे शहर में होता हुई श्मशान। शवयात्रा के कांग्रेस भवन पहुंचने

तक उनके साथ चलने वाले नर-नारियों की अपार भीड़ हो गई थी। कांग्रेस भवन से उनके शव को एक खुले ट्रक में रखा गया और आगे उसी में ले जाया गया। शवयात्रा में शामिल लोगों की संख्या अब हजारों पर पहुंच चुकी थी और शवयात्रा के सण्डहर्स्ट रोड, कालबादेवी रोड तथा प्रिंसेज स्ट्रीट से गुजरते समय, आसपास के मकानों से जन समुदाय ने अर्थी पर फूल बरसाए। यह सिलसिला अर्थी के मरीन लाइंस के श्मशान पहुंचने तक बराबर जारी रहा।

बुधवार 6 अगस्त 1947 को शेरिफ द्वारा बुलाई गई बंबई के नागरिकों की सभा में उन्हें श्रद्धांजलियां अर्पित की गईं। सर चिमनलाल सीतलवाड़ सभापति थे। बंबई की सभा में उन्हें भारत का सपूत बताते हुए कहा गया "वह हमारे बीच से उठ गए, पर भले आदमियों की स्मृति में और इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठों में वह सदा मौजूद रहेंगे।"

जवाहरलाल, सरदार पटेल तथा अन्य लोगों ने उनकी मृत्यु पर शोक संदेश भेजे। सरोजिनी नायडू ने अपने शोक संदेश में उन्हें अपना 'पुराना और सम्मानित मित्र' बताते हुए कहा "मैं उन्हें बड़ी प्रशंसा और स्नेह की दृष्टि से देखती थी। उनमें विविध गुणों का ऐसा समुच्चय हुआ था, जैसा हमारी पीढ़ी में कुछ ही को सौभाग्य हुआ होगा। प्रखर बुद्धि सभ्य व्यवहार, मर्मस्पर्शी वक्तृत्व शक्ति, हृदय की उदारता तथा स्वभाव की परम शालीनता के कारण राष्ट्रीय जीवन में उन्होंने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। भारत की स्वतंत्रता में उनके योगदान का अभी मूल्यांकन नहीं किया गया है पर उनकी सेवाएं इतनी महान हैं कि उनका नाम अमर रहेगा। खासकर लाल किले में की गई उनकी अंतिम और सर्वोच्च सेवा के कारण तो वह राष्ट्र के प्रेम और कृतज्ञता के पात्र बन गए हैं।" राजा जी ने "प्रिय भूलाभाई को प्रेमपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा, वह परलोक चले गए परंतु भले आदमियों की स्मृति और भारतीय इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठों में वह सदा मौजूद रहेंगे।" मौ० आजाद ने कहा कि "शरीर से वह हमारे बीच नहीं रहे लेकिन उनकी याद बनी है। उम्मीद करता हूं कि भूलाभाई ने हिंदुस्तान की जो खिदमत की, उसे बंबई कभी नहीं भूलेगा और हिन्दुस्तान तथा बंबई इस सर्वश्रेष्ठ सपूत के लिए उपयुक्त यादगार कायम करेगा।" राजेन्द्र

बाबू ने कहा "भूलाभाई आज जिंदा होते तो अपने परिश्रम और बलिदान को सफल होते देख उनका हृदय प्रसन्न हुए बिना नहीं रहता। हमें उनकी सेवाओं का स्मरण करके उनकी विरासत के उपयुक्त बनने का निश्चय करना चाहिए।"

भूलाभाई की यादगार कायम करने के लिए जो धन संग्रह हुआ उससे बाद में बंबई के रिक्लेमेशन ग्राउण्ड में एक सभा भवन बनाया गया। भूलाभाई आडिटोरियम उसका नाम है और अनेक सार्वजनिक समारोह अक्सर वहीं होते हैं।

13

भूलाभाई का व्यक्तित्व

भूलाभाई के अड़सठ वर्ष के जीवन पर हमने अधिक से अधिक प्रकाश डालने की चेष्टा की है। उनके सार्वजनिक भाषणों, निजी पत्रों तथा उनकी डायरी का भी इसके लिए हमने उपयोग किया है और उद्धरण देकर उनके चिन्तन और विचारों की झांकी प्रस्तुत की है। इतने पर भी उनके व्यक्तित्व का हम सही आकलन कर पाए हैं, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि, जैसा बरसों तक उनके साथ काम करने वाले एक वकील मित्र ने बताया, 'उनका व्यक्तित्व परस्पर विरोधी गुणों का ऐसा समुच्चय था जिससे सहज ही सही रूप में उसका समझना कठिन था और उनके ऊपरी आवरण से कोई भी धोखे में पड़ सकता था।'

भूलाभाई मझोले कद और इकहरे बदन के थे। रंग गेहुंआ था और आकृति सुन्दर। चेहरा गोल, नाक सीधी और ठुड्डी तीखी। आवाज उनकी स्पष्ट और मधुर थी, बोलने का ढंग शिष्टतापूर्ण, वाक्यशैली मंजी हुई और चेहरा मुस्कुराता हुआ। जो भी उनके सम्पर्क में आता वह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। उनकी भावुक मुखमुद्रा और घनी भौंहों के बीच से झांकती हुई आंखों का कुछ ऐसा असर पड़ता था जिसको भुलाया नहीं जा सकता। उनके व्यक्तित्व को शब्दों में बांधना और उसकी विशेषताओं तथा आकर्षणशक्ति का सही वर्णन करना कठिन कार्य है। सिवा इसके कि उनके आगे के बाल उड़ गए थे और कान के पास के बाल अधपके होने लगे थे, उन्हें देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि वह आयु के अड़सठ वर्ष पार कर चुके हैं। सबसे बड़ी बात तो यह कि दांत, आंख और कान (श्रवणशक्ति) पर उनकी आयु का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। चश्मा भूलाभाई ने कभी

नहीं लगाया। हमेशा नीची नजर किए चलते थे जिससे लगता था मानो चलते हुए भी वह विचार मग्न रहते थे।

वकालत के शुरू में उन्होंने परंपरागत पोशाक—लम्बा कोट पाजामा और पगड़ी—धारण की, पर बाद में उसको छोड़कर अंग्रेजी वेशभूषा अपनाई। लेकिन केन्द्रीय असेम्बली में तथा औपचारिक अवसरों पर अचकन तथा चूड़ीदार पाजामा ही पहनते थे। पोशाक उनकी बिल्कुल साफ सुथरी और करीने से पहनी होती थी। वकालत शुरू करते वक्त छोटी हुई मूछें भी रखते थे, पर बाद में मूछें मुंडा दीं।

भूलाभाई सादगी पसंद थे। खूराक उनकी कम थी। जीवन के उत्तरकाल में तो उन्होंने सुबह का खाना भी बन्द कर दिया था। वसे उन्हें जिन्दगी आराम की पसंद थी और जीवन का आनन्द लेते थे। वह शाम को कुछ मद्यपान करते और मित्रों के साथ गपशप में समय बिताते।

दिन भर उन्हें पेचीदा कानूनी मामलों में उलझे रहना पड़ता था, जिनके लिए कानून और तथ्य की पूरी छानबीन करते। इसके अलावा असेम्बली का तथा अन्य राजनीतिक काम भी उन पर आ पड़ता था। इस सबके लिए इतना परिश्रम करना पड़ता था कि बहुधा रात को ठीक से सो भी नहीं पाते थे।

उनकी सफलता के दो प्रमुख कारण मालूम पड़ते हैं। एक प्रखर बुद्धि और अद्भुत स्मरणशक्ति के साथ किसी भी मामले के आवश्यक मुद्दों को तुरन्त छांट लेने की उनकी क्षमता, जो प्रारंभिक जीवन में विस्तृत पुस्तकाध्ययन से ही उनमें आई मालूम पड़ता है। दूसरे अपनी क्षमता में यह पूर्ण विश्वास कि जब जैसी स्थिति होगी उसके अनुसार रास्ता निकाल ही लेंगे, जो वस्तुतः पहली स्थिति से ही उत्पन्न हुआ।

छात्रावस्था में भूलाभाई ने इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। इससे इंगलैण्ड, यूरोप तथा प्राचीन यूनान के राजनीतिक इतिहास की उन्हें अच्छी जानकारी हो गई थी। अरस्तू की 'पालिटिक्स' तथा प्लेटो की 'रिपब्लिक' का उन्हीं दिनों उन्होंने अध्ययन किया, साथ ही जान स्टुअर्ट मिल की 'आन लिबर्टी

तथा बर्क के 'रिफ्लेक्शंस आन द रिवोल्यूशन इन फ्रांस' को भी बड़ी दिलचस्पी से पढ़ा था। गुजरात कालेज में इतिहास और अर्थशास्त्र के प्राध्यापक होने के कारण इन विषयों का ज्ञान उन्होंने बाद में और भी बढ़ा लिया था।

विविध भाषाएं सीखने की उनमें स्वाभाविक अभिरुचि थी। कालेज में द्वितीय भाषा फारसी होने से फारसी साहित्य की उन्हें अच्छी जानकारी थी। इसी वजह से वह मुहावरेदार उर्दू में भी बात कर सकते थे और कभी-कभी सभाओं में उर्दू में उन्होंने भाषण भी किए। संस्कृत उन्होंने नहीं पढ़ी थी लेकिन जीवन के उत्तरकाल में उन्होंने गीता तथा अन्य धार्मिक ग्रंथ पढ़ने की चेष्टा की। जब वह प्राध्यापक थे, उनके एक वरिष्ठ साथी आनन्दशंकर ध्रुव ने उन्हें अपने द्वारा संपादित गुजराती पत्र 'वसंत' के लिए गुजराती में लेख लिखने को प्रेरित किया। उसी से भूलाभाई को गुजराती लिखने बोलने का शौक लगा और उसमें उन्होंने इतनी प्रगति की कि 1934 में गुजराती साहित्य परिषद के अध्यक्ष बने। अध्यक्ष पद से उन्होंने जो भाषण दिया वह बड़ा पांडित्यपूर्ण था।

वह गुजरात कालेज में दो साल प्राध्यापक रहे। इसमें वह बहुत कामयाब रहे। लेकिन उनके मन में तो वकील बनने की आकांक्षा समाई हुई थी। अपने बाल्यकाल में, जब वह स्कूल में पढ़ते थे, उन्होंने चिमनलाल सीतलवाड़ को देखा था। वह उनके घर चुनाव में उनके पिता का वोट मांगने गए थे। उन्हें देखकर ही शायद उनके मन में वकील बनने की इच्छा पैदा हुई होगी। लेकिन पिता की मृत्यु और परिवार की स्थिति के कारण उन्हें अहमदाबाद में प्राध्यापक का काम सम्हालना पड़ा। विवश होकर दो बरस तक उन्होंने वह काम किया, पर वकील बनने की तमन्ना न छोड़ी। सफल प्राध्यापक का सुविधापूर्ण काम छोड़कर, जबकि, विद्यार्थी और साथी सभी उनसे बहुत खुश थे, बंबई में वकालत का बीहड़ रास्ता पकड़ने का निश्चय आसान बात नहीं थी। वह जोखिम उठाने के समर्थक ज्यादा नहीं थे। लेकिन आनंदशंकर ध्रुव उनकी प्रतिभा, विचारों की स्पष्टता और वाकपटुता से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने इस विचार का समर्थन ही नहीं किया बल्कि इसमें उन्हें प्रोत्साहित किया। फिर भी यह साहसी कदम अंत में उठाया उन्होंने शायद अपनी आंतरिक प्रेरणा से ही, क्योंकि वकालती समृद्धि और शोहरत

के कारण उस ओर उनकी प्रवृत्ति पहले से ही थी और उसमें सफलता के लिए उनका आत्मविश्वास कम नहीं था।

राजनीति में भूलाभाई के अल्पकालीन प्रवेश की बात हम पहले बता चुके हैं और यह भी बताया जा चुका है कि 1920 में उनका वह प्रयोग समाप्त हो गया था। उनकी अदालती कारगुजारी के सिलसिले में हम यह भी जान चुके हैं कि 1920 से आगे के सात आठ सालों में उनकी वकालत कैसी चमकी। उनकी ख्याति देश व्यापी हो गई थी और कैसा भी जटिल मामला क्यों न हो उसको वह सम्हाल लेते थे, इसीलिए महत्व के तथा पेचीदा मामलों के लिए देश भर में उनकी माँग रहने लगी थी। अपनी ऐसी सफल वकालत के बावजूद 1928 के बाद, वह फिर राजनीति में पड़े और उसके लिए वकालत की भारी कमाई का भी उन्होंने मोह नहीं किया। यह कैसे हुआ ?

यह बड़ा पेचीदा सवाल है जिसका थोड़ा बहुत जवाब भारत के राजनीतिक घटना चक्र से मिल सकता है जब राजनीति में गांधीजी के महान नेतृत्व का बोलबाला हुआ और अहिंसा तथा सत्याग्रह (सविनय अवज्ञा) के उनके सिद्धान्तों का व्यापक रूप से प्रसार हुआ। 1927 तक भूलाभाई के विचार बहुत कुछ नरम दलवालों (लिबरलों) जैसे ही थे। लेकिन अपनी बौद्धिक पृष्ठभूमि, ऐतिहासिक दृष्टि, राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य में विश्वास और राजनीति के अध्ययन के कारण ज्यादा समय तक वह राजनीतिक गतिविधि से अलग नहीं रह सकते थे। फिर भी चारों तरफ बढ़ रहे प्रवाह में पड़ने का निश्चय वह अभी नहीं कर पाए थे। इसका कारण शायद यह हो कि वकालत के पेशे से हो रही भारी कमाई से वह हाथ नहीं धोना चाहते थे। या यह हो सकता है कि सक्रिय राजनीति में पड़ने का उनका मन अभी पूरी तरह तैयार नहीं हो पाया था। यह भी हो सकता है कि स्वभाव से लिबरल होने के कारण कांग्रेस की राजनीति को पूरी तरह स्वीकार न कर पाए हों, और यह भी हो सकता है कि क्रांति के बजाय विकास या क्रमिक सुधार को वह अच्छा समझते थे। जो भी हो तत्व की बात यह है कि 1920 से 1927 तक वह राजनीति में सक्रिय नहीं रहे।

इस समय जब वह वकालत में सर्वोच्च स्थिति को पहुंच गए थे, अचानक देशसेवा की पुकार पड़ी। जैसा हम पहले बता चुके हैं, गांधीजी ने उन्हें बारडोली के किसानों की पैरवी के लिए लिया। यह अनुमान लगाना गलत नहीं होगा कि ब्रूमफील्ड कमेटी के सामने बारडोली के किसानों का पक्ष प्रस्तुत करते हुए उन्हें किसानों की स्थिति का जो अनुभव हुआ, उसने उनकी मनोवृत्ति को बिल्कुल बदल दिया। उन्हें ऐसा लगने लगा कि कोई भी भारतवासी जनसाधारण की स्थिति सुधारने का पूरा प्रयत्न किए बिना सच्चा देशभक्त नहीं हो सकता। साथ ही इस बात की भी उन्हें अनुभूति हो गई कि सफलतापूर्वक यह काम भारत के स्वतंत्र होने पर ही संभव है। संभवतः इसी मनोवृत्ति से उन्होंने बारडोली के किसानों का काम किया और परिश्रम तथा आर्थिक हानि का ध्यान किए बिना कई महीने उस काम में लगाए।

इस बात में भी कोई संदेह नहीं कि उस वक्त भारत का सारा वातावरण पूरी तरह बदल गया था। लोगों के दृष्टिकोण को गांधीजी ने क्रांतिकारी रूप में बदल दिया था। लोगों की अब तक की मान्यताएं एकदम बदल गई थीं। आदर्शों के लिए, जीवन की वास्तविकताओं की उपेक्षा कर अपना सब कुछ बलिदान करने के लिए लोग तैयार थे। सौ साल से अधिक समय से पददलित, राष्ट्र जाग उठा था और विदेशी आधिपत्य को चुनौती देते हुए लोग साहसपूर्वक उसके कानूनों का उल्लंघन करने लगे थे। यह क्रांतिकारी और रचनात्मक आंदोलन लगभग सारे देश में फैल गया, जिससे प्रेरित हो मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए सैकड़ों हजारों नर नारी स्वेच्छा से हर तरह के बलिदान के लिए उत्सुकतापूर्वक आगे आने लगे। ऐसे लोग भी, जो अनपढ़ और अनजान थे तथा बड़ी बातों को नहीं समझते थे, राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए अपनी संपत्ति तथा जान तक देने को तैयार हो गए। दुनिया के सब से शक्तिशाली साम्राज्य के विध्वंस के लिए सशस्त्र राष्ट्र को अपने नए हथियार (अहिंसा) से परास्त करने के लिए मात्र 82 पौण्ड वजन के एक आदमी को, जिस की आयु साठ के आसपास थी, खुराक जिसकी नाम की और जीवन धारण भर के लिए थी, शरीर से जो बिल्कुल क्षीणकाय तथा कुरूप सा था, तन ढकने के लिए मात्र लंगोटी और सहारे के लिए लठिया लिए आगे बढ़ते देख भूलाभाई जैसा सूक्ष्म बुद्धि मनुष्य प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था।

निस्सदेह गाधीजी ने राष्ट्र को जगाकर उसमे प्राण फूक दिए थे। उससे लोगो मे जो उत्साह आया वह धार्मिक जोश से कम नही था। उसके फलस्वरूप परपराए टूटने लगी रूढिया छूट गइ, सदियो से चले आए पूर्वाग्रहमिट गए और असभव समझी जाने वाली बाते सभव हो गइ। देश म जो लहर आई उसे सवथा राजनीतिक आन्दोलन ही नही कहा जा सकता। वह तो ऐसी हलचल थी जिसके प्रभाव से व्यक्ति तो क्या राष्ट्र का जीवन भी अछूता न रह सका, समूचे राष्ट्र को सभी दृष्टियो से उसने प्रभावित किया। भला ऐसी सवव्यापी लहर से भूलाभाई का भाव प्रवण मन प्रभावित हुए बिना कसे रह सकता था?

मगर आदमी पर असर किसी एक बात का ही नही होता, बल्कि आमतौर पर कई तरह की भावनाओ और दृष्टियो से आदमी काम करता है। इसलिए यह कहना बिल्कुल ठीक न होगा कि खाली भावना मे वह कर भूलाभाई राजनीति म आए। हो सकता है कि इसके साथ कोई महत्वाकाक्षा भी काम कर रही हो जिसने उन्ह राजनीति मे पडने के लिए प्रेरित किया। सभव है कि वकालत मे जो सफलता उन्होने प्राप्त कर ली थी वही उनकी महत्वाकाक्षा को सतुष्ट करने के लिए काफी नही थी। कहते हैं कि 1929 मे किसी समय उन्होने एक मित्र से कहा कि मैं मर गया तो मुझे कौन याद करेगा?' इस पर उनके मित्र ने कहा सिर्फ बबई क कानूनी क्षेत्र मे लोग आपको याद करेंगे। 'साथ ही यह भी बताया कि समाज तो उसी को याद रखेगा जो अपने जीवन मे उसके लिए कुछ कर जाएगा। भूलाभाई ने कहा, "मैने किसी का नुकसान तो कभी नही किया।" पर इस बात को स्वीकार किया कि देशवासियो के हृदय म जो बस जाए उसी को समाज याद रख सकता है। इस पर से ऐसा लगता है कि किसानो तथा जनता के आन्दोलन का जो अनुभव उन्ह हुआ और वकालत की सफलता से ही उनकी महत्वाकाक्षा सतुष्ट न हुई उसी से उनके अन्दर देशसेवा के क्षेत्र मे पड कर उसके लिए त्याग की प्रेरणा हुई। सही बात कुछ भी हो इसमे कोई सदेह नही कि वकील मडली के सधे हुए और असदिग्ध मस्तिष्क वाले नेता का कानून तोडनेवाले असहयोगी के रूप मे जिस तरह उनम परिवतन हुआ, उसे क्रातिकारी मानसिक परिवतन ही कहा जाएगा।

भूलाभाई के मामले मे यह परिवतन और भी महत्वपूण है, क्योकि जीवन का उनका दृष्टिकोण आदशवादी न होकर सवथा भौतिक या भोगवादी था। वह

अक्सर यही कहा करते थे कि असली चीज वही है, जो जीवन में आनन्द दे। कला और संस्कृति में भी उनकी खास अनुरक्ति नहीं जान पड़ती थी। वह मूलतः व्यक्तिवादी थे। समाजवाद उन्हें नापसंद था। समाज में प्रचलित अन्याय और असमानता को दूर करने की बात उन्हें प्रभावित नहीं करती थी। वह कहा करते थे कि न्याय और औचित्य का कोई निरपेक्ष मापदण्ड नहीं है। उचित और न्यायोचित जो कुछ भी है वह है यह उनका सिद्धांत था। दुनिया में उन्हीं का अस्तित्व रह सकता है जो दूसरों से बलवान हों, ऐसा उनका विश्वास था। गुण और क्षमता वाले जिंदा रहते हैं अयोग्य खत्म हो जाते हैं। उनके अनुसार असमानता को मिटाने की बात केवल भावुकता है। समाज में समानता लाना संभव नहीं। मानव स्वभाव जैसा है उसमें समानता असंभव है और मानव स्वभाव को आप बदल नहीं सकते। आचरण में केवल सहानुभूति को लाया जा सकता है। पूंजीवाद के विरुद्ध उठाई जानेवाली आवाज उनकी नजर में ईर्ष्या के कारण थी, जो निराश और निकम्मे आदमियों का एक मात्र सहारा है। यह वह जरूर मानते थे कि समाज का जैसा रूप है, उसमें अनुचित करों तथा अन्य साधनों द्वारा धनियों से अधिक धन उगाहने की काफी गुंजाइश है और उस धन का उपयोग दूसरों की गरीबी तथा भुखमरी मिटाने में किया जा सकता है। उनके विचारों का उचित विवेचन कुछ भी हो लेकिन एक उच्चकोटि के वकील से वह जिस प्रकार असहयोगी राजनीतिज्ञ बने उसे क्रांतिकारी परिवर्तन कहा जा सकता है।

लेकिन इस भारी परिवर्तन के बावजूद वकालत से उनका सम्बन्ध आजीवन रहा और उसमें आलोचना की जो वृत्ति बनी वह भी दूर नहीं हुई। मूलतः सहृदय स्नेही और भावुक होते हुए भी इसके कारण बहुत बार उनका व्यवहार ऐसा होता था, जिससे यह प्रतीत होता कि उनमें सहानुभूति का अभाव है और पीड़ितों के दर्द के प्रति वह लापरवाह हैं। मगर सचाई यह है कि लोगों को कष्ट और मुसीबत में देखकर उनके भावुक मन को बड़ी चोट लगती थी और उसके लिए जो कुछ उनसे हो सकता वे वह करते थे।

बंबई के अंतिम अंग्रेज चीफजस्टिस सर ल्योनार्ड स्टोन ने 1944 में बम्बई के बन्दरगाह में हुए विस्फोट के समय की एक घटना का उनके सम्बन्ध में उल्लेख

किया है। 'वह (भूलाभाई) निश्चय ही बहुत ऊंचे दर्जे के आदमी थे। उनकी प्रायः म प्रच्छाई की झलक थी और उनके सम्पर्क म आने पर उनके व्यक्तित्व के आकर्षण म प्रभावित हुए बिना कोई नही रह सकता था। यह बताकर 14 अप्रल, 1944 की घटना का उन्होंने इस प्रकार वर्णन किया है 14 अप्रल, 1944 को बबई के बन्दरगाह मर्मान्तावाल्द म भरे एक जहाज म भयकर विस्फोट हुआ था। उसी दिन शाम की बात है। सयोग की बात है कि मैंने और मेरी पत्नी ने उस रात रात पर कुछ लोगा को बुलाया था, क्योंकि हाईकोर्ट की उस दिन से छुट्टिया होने वाली थी। रात्रि भोज म शामिल होने वालो म से किसी को विस्फोट का पूरा हाल मालूम नही था, जबकि उसके बारे म जानना हर एक चाहता था। भूलाभाई समेत हम कुल बीस आदमी थे। विस्फोट के कारण किसी म उल्लास नही था और जस-तस खाना समाप्त होने ही एक ने सुझाया कि हम सब भूलाभाई के घर क्यो न चलें वह मलाबार हिल के उस तरफ है और वहा से बन्दरगाह अच्छी तरह दिखाई पड़ता है। इसके अनुसार हम भूलाभाई के घर गए और उनके साथ पिछले बरामदे म पहुच। वहा जाकर हमने जो कुछ देखा उसी से हम विस्फोट की भयकरता का ठीक पता चला। जलते हुए जहाजो के साथ गोदामो मे लगी आग की लपटो म दमकता हुआ आसमान वहा से साफ दिखाई पडता था। उसे देख भूलाभाई ने तत्काल कहा "हमको वहा चलकर देखना चाहिए।" और जल्दी ही उसकी व्यवस्था की गई। जो चार जातिवाले वहा थे उनके प्रतिनिधि स्वरूप भूलाभाई, सर कावसजी जहांगीर, चागला और मैं ये चार मेरी मोटर म बैठे और हम बन्दरगाह को चल दिए। वहा लपटो से बचते हुए जहा तक जाना सभव था वहा तक गए। भूलाभाई वहा आग बुझाने वालो के पास जाकर आग बुझाने के लिए उन्हे प्रोत्साहित करने लगे। वे थके हुए थे, मगर उनकी उपस्थिति और उनके प्रोत्साहन स उनम उत्साह का सचार हुआ और वे आग बुझाने का काम दूने उत्साह स करने लगे। वहा के कुछ दृश्य तो बडे भयावने थे—आदमियो की लाशे, मृत शरीर के इधर उधर पडे टुकडे और खून से भीगी धरती। एक बहुत ही वीभत्स दृश्य देखने से मैंने उन्हे रोकना चाहा, पर उन्होने कहा—नहो अगर हम कुछ मदद करनी है तो आग बुझाने वालो की ही तरह हमे भी सब कुछ देखना होगा। हमे डरना नही चाहिए। उनका यह व्यवहार इतना निस्स्वार्थ और उच्च था कि

उसकी स्मृति आज भी वैसी ही बनी हुई है मानो अभी कल की ही बात हो।"

इस घटना से हम यह उक्ति सच मालूम पड़ती है कि "संकट काल में ही मनुष्य की खरी परीक्षा होती है।

किसी भी विषय पर उनसे बातचीत बड़ी रोचक और ज्ञानवर्धक होती थी। बातचीत में उन्हें बड़ा मजा आता था। मित्रमंडली में तो वह खूब खुलते थे। तरह तरह के मजेदार किस्से सुनाकर मित्रों का मनोरंजन करते, जिनमें से बहुत से तो उन्हीं से सम्बन्धित होते थे। इसीलिए कभी-कभी यह शिकायत भी होती कि यह तो बस अपनी ही बातों में मगन रहते हैं।

जीवन के प्रति उनका बड़ा अनुराग था और जीवन का भरपूर आनंद लेने में विश्वास करते थे। वे रसिक और विनोदी स्वभाव के थे।

अंतरंग मित्र उनके बहुत नहीं थे पर जिन थोड़े से व्यक्तियों से उनका निकट संपर्क रहा उनसे हार्दिक सम्बन्ध रहे। मानवता की उनमें कमी नहीं थी और मित्रों से वह स्नेह और सच्चाई बरतते थे।

घरवालों से उन्हें बड़ा स्नेह था। पत्नी इच्छाबेन की लम्बी बीमारी के बाद 1924 में मृत्यु हो गई थी। उससे उन्हें बड़ा दुख हुआ था और ऐसा आघात लगा जिसने बहुत दिनों तक उन्हें व्यग्र और उदासीन रखा। पुत्र और पुत्रवधू से उन्हें कितना गहरा स्नेह था यह उनके पत्रों से स्पष्ट है जिनका पहले उल्लेख किया जा चुका है।

पुत्र धीरूभाई के सिवा भूलाभाई के कोई संतान नहीं थी। धीरूभाई ने भरूच के हाईस्कूल की शिक्षा समाप्त करने के बाद बम्बई के एलफिस्टन कालेज में पढ़ाई की। वहां से इतिहास और अर्थशास्त्र में स्नातक हुए। इसके बाद बंबई विश्वविद्यालय से एल० एल० बी० पास कर बरिस्टरी के लिए लंदन गए। बरिस्टर होकर 1931 में भारत वापस आए और बंबई हाईकोर्ट की ओरिजिनल साइड में वकालत शुरू की। माधुरी बहन से उनका विवाह हुआ था, जिनसे उन्हें बड़ा प्रेम था। अपने परिश्रम, मीठे स्वभाव, शिष्ट व्यवहार और सामाजिक सौजन्य से

वकालत मे उन्होंने अच्छी सफलता पाई। थोडे ही समय मे उनके पास काफी काम आने लगा और वकीलो मे उनकी लोकप्रियता बढ गई। भूलाभाई तो उनपर दीवाने थे। इतना अधिक प्रेम उन्हे अपने पुत्र पर था कि उसे अनुरक्ति ही कहा जा सकता है। इसी प्रकार पुत्रवधू माधुरी बेन को भी वह बहुत प्यार करते थे। भूलाभाई की मृत्यु के बाद सरदार पटेल ने धीरूभाई को स्विटजरलैंड मे भारत का राजदूत बनने के लिए कहा। तब अच्छी चलती हुई वकालत को छोड वह स्विट्जरलण्ड गए। भारत द्वारा अब तक नियुक्त राजदूतो मे वही सबसे कम उम्र के थे और राजदूत के रूप मे उन्होने बडा अच्छा काम किया लेकिन दुर्भाग्यवश तीन वर्ष मे ही उनकी असामयिक मृत्यु हो गई। उनके कोई सतान नही हुई थी केवल माधुरी बेन ही उनकी यादगार के रूप मे रह गई। अनेक सामाजिक और सास्कृतिक प्रवृत्तियो मे वह सलग्न हैं।

भूलाभाई के पत्रो से जो उद्धरण हमने दिए हैं उनसे यह स्पष्ट है कि पूजा-पाठ के रूढिगत विधि विधान मे कोई आस्था न होते हुए भी भूलाभाई नास्तिक नही थे। प्रत्येक विषय की उसके सभी पहलुओ से पडताल करते रहने से उनका मन वस्तुत बुद्धिवादी बन गया था। बस वह यह मानते थे कि मनुष्य को किसी अलौकिक सत्ता मे अवश्य श्रद्धा रखनी चाहिए जिससे उसे मानसिक और आध्यात्मिक सहारा मिले। एक मित्र से उन्होने कहा था कि मैं ऐसा बुद्धिवादी और आलोचक बन गया हू कि किसी भी बात मे तर्क वितर्क किए बिना नही रह पाता, इससे मेरा मन शान्त नही रह पाता। उनकी मानसिक उद्विग्नता और अकेलेपन की भावना का शायद यही कारण था। यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि अपने बहुमुखी अध्ययन, विपुल ज्ञान और व्यापक अनुभव के बावजूद राजनीतिक मित्रो द्वारा हुए अनुचित व्यवहार पर वह स्थिर चित्त न रह सके। आतरिक व्यग्रता और श्रद्धा के अभाव के कारण ही शायद ऐसा हुआ।'

मानव अस्तित्व का क्या उद्देश्य है इस बारे मे उनके कोई स्पष्ट विचार थे या नही यह कह सकना कठिन है। यह जरूर है कि भगवदगीता को पढकर उन्हे बडा सतोष होता था। मरने के बाद क्या होगा इसकी उन्हे कोई चिन्ता मालूम नही पडती थी। इसको एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करना अप्रासगिक न होगा। एक

वार एक किताब उन्होंने पढ़ी जिसका सार उसके ऊपरी आवरण पर ताड़ के वृक्ष द्वारा प्रकट किया गया था। पुस्तक पढ़कर वह इतने प्रभावित हुए कि एक दिन शाम को न्यायालय से निपटकर अपने चम्बर के एक मित्र के साथ एलफिंस्टन सकल वाले बाग में गए जहां पुस्तक में दिए पेड़ जैसे ताड़ के अनेक पेड़ थे। उनमें से एक में फूल निकलने शुरू हुए थे जो उसके ऊपर दिखाई दे रहे थे। मित्र के साथ उसे देखकर भूलाभाई ने कहा था "ताड़ के इस पेड़ का जीवन मानव जीवन का ही प्रतीक है। बरसों तक बढ़ते रहने के बाद एक ही बार फूल आते हैं और फूलने के बाद फिर मृत्यु हो जाती है।" तीन महीने बाद उस मित्र के साथ दुबारा जब वह वहां गए तो ताड़ के पेड़ का सचमुच अंत हो चुका था।

भूलाभाई के बड़े प्रशंसक एक मित्र ने जिसने कई साल तक उनके साथ काम किया था और उनके निकट सम्पर्क में रहा था, उनकी सफलता से अभिभूत हो एक बार उनसे पूछा था कि उससे उन्हें पूरी तरह संतोष है या नहीं और मृत्यु के बाद फिर से पैदा होकर उस तरह की जिन्दगी बिताने की क्या वह कामना नहीं करेंगे? समय समय इस बारे में उनके बीच बातें होती रहीं। कुछ समय बाद एक दिन भूलाभाई ने उस मित्र को हाल्डेन की आत्मकथा लाकर दी और उसके एक अंश पर उनका ध्यान दिलाते हुए कहा कि जीवन सम्बन्धी मेरे दृष्टिकोण का यही सही चित्रण है। संभवतः उनके बहुत में काम उनके उसी दृष्टिकोण के फलस्वरूप थे। हाल्डेन का वह अंश इस प्रकार है

"जहां तक बाह्य परिस्थिति का सम्बन्ध है मुझे फिर से जिन्दगी बिताने का अवसर मिले तो मैं इसे पसंद नहीं करूंगा। दुनिया का काफी अनुभव रखने वाले एक विशिष्ट राजनीतिज्ञ ने एक बार मुझसे पूछा था कि क्या मैं अपने अनुभव से प्राप्त ज्ञान का लाभ उठाकर नए सिरे से जीवन बिताना चाहूंगा? मेरा उत्तर इनकार में था। 'क्योंकि', मैंने कहा, 'हमारी सफलता तो भाग्य और संयोगों के कारण ही हुई और नए जन्म में भी ऐसा ही होगा यह नहीं कहा जा सकता।' इस पर उन्होंने भी कहा, 'तब तो मैं भी फिर से जन्म लेना न चाहूंगा। भाग्य का जब कोई ठिकाना नहीं कि कब अनुकूल और कब प्रतिकूल, तो मैं ही यह कैसे मान लूं कि नए जन्म में भी मुझे ऐसी ही सफलता मिलेगी?' निश्चय ही जीवन में भाग्य

का बड़ा हाथ है, जिसके कारण ही अत्यन्त सुव्यवस्थित जीवन मे भी यह अनिश्चितता बनी रहती है कि पता नही कब क्या हो जाए। अत दर्शनशास्त्र से हमे अनासक्ति की शिक्षा लेनी चाहिए और अनुकूल प्रतिकूल सभी परिस्थितियो मे मन को सतुलित, और शात रखने का अभ्यास करना चाहिए। साधारण मनुष्य तो ज्यादा से ज्यादा यही कर सकता है कि अच्छे फल की आशा से अपना काम करता रहे। बीमारी, दुर्भाग्य या मृत्यु से हो सकता है कि उसकी इच्छानुकूल फल न निकले, फिर भी यह सतोष तो रहेगा ही कि अपनी तरफ से हमने कोई कसर नही रखी। ऐसी मनोवृत्ति से जो सुख मिलेगा वह किसी भी लौकिक लाभ से कही सुखद होगा।

अपनी विशिष्टताओ को भूलाभाई ने लगभग अपनी मृत्यु तक कायम रखा। उनकी मृत्यु से कुछ समय पहले उनसे मिलने वाले एक विदेशी महानुभाव लिखते है "श्री देसाई कैंसर की बीमारी से घुल रहे थे, लेकिन भारत के सर्वश्रेष्ठ वकीलो मे उनकी गिनती थी। भारत की स्वतत्रता के बाद दूसरी बार मैं उनसे प्रभावित हुआ था और अब, जब वह क्षीणकाय हो गए है और आवाज मे खरखरापन आ गया है, यह देखकर मै सराहे बगैर नही रह सकता कि उनका दिमाग अब भी उस्तरे की तरह तेज है। कानूनी चर्चा छिड़ने पर वह ऐसी स्पष्टता से विवेचन करते थे कि सामान्य व्यक्ति भी उसे समझ सकता था। मुद्दो की पकड़ उनकी ऐसी जबरदस्त थी कि फौरन छाँट लेते थे कि उनमे से कौन से मान्य हैं किन पर विवाद है, कौन से ऐसे हैं जिनकी साक्षी नही हैं और किन को पारिस्थितिक तथा लिखित या मौखिक साक्ष्य के सहारे सिद्ध किया जा सकता है। श्री देसाई से एक बार मैंने फिर सीखा कि अच्छा वकील कैसा होना चाहिए। हमे यह मानने मे कोई सकोच नही होना चाहिए कि भारत मे वकालत की परपरा ब्रिटेन से आई है, पर भारत के वकीलो ने वकालत मे जो सर्वोच्च कुशलता प्राप्त की है वह निश्चय ही इसी देश की देन है। यहा ऐसे कुछ वकील हुए हैं और अब भी हैं जिन्हें दुनिया के बढिया से बढिया वकीलो की श्रेणी मे रखा जा सकता है। उनके कारण राष्ट्र की शक्ति बहुत बढी है।" और यह बताकर कि उनकी भेंट के सात सप्ताह बाद ही भूलाभाई की मृत्यु हो गई, उन्होने कहा "एक आदर्श हिन्दू की तरह बड़े शात भाव से उन्होने मृत्यु का आलिंगन किया।"

भूलाभाई के अडसठ बरस से ऊपर के जीवन पर दृष्टिपात करके हमने उनके बहुमुखी और जटिल व्यक्तित्व को समझाने की चेष्टा की है। स्कूल और कालेज के उनके जीवन के साथ ही उनके प्राध्यापक जीवन का भी हमने अवलोकन किया। हाई कोर्ट जूनियर के रूप में वकालत शुरू करके धूमकेतु की तरह उसमें चमकते हुए जीवन के लगभग अंतिम समय तक उसकी चोटी पर हमने उन्हें देखा। कम से कम दो अविस्मरणीय प्रसंग हमने ऐसे भी देखे जब मातभूमि की सेवा में उन्होंने अपना अनुपम कानूनी कुशलता और महान बौद्धिक प्रतिभा का उपयोग किया। दस वर्ष से अधिक समय तक अपनी वाद विवाद पटुता और सुन्दर वक्तृत्वकला का उपयोग केन्द्रीय विधान सभा के मंच पर देश के वीर योद्धा के रूप में किया। विलासी जीवन के अभ्यस्त होते हुए भी, जेल जीवन की तनहाई और कठिनाई उठाने का समय आने पर वे जरा भी विचलित नहीं हुए। जेल में भी उन्होंने देश के गरीब, अनजान, पददलित लोगों के उत्थान का ही चिन्तन किया। यह अनुभव करते हुए भी कि मेरे साथ अच्छा सलूक नहीं हुआ और बुरी तरह मुझे अपमानित किया गया देश सेवा की पुकार होने पर अपने जीवन को खतरे में डालकर भी अपनी पूरी योग्यता और शक्ति के साथ, सफलतापूर्वक वह काम किया। उनका अध्ययन व्यापक था, शालीनता अपार थी, मन और स्वभाव में उदारता थी, इससे जो भी उनके संपर्क में आया उसी ने उसकी सराहना की। देश के लिए और देश सेवा में लगे कार्यकर्ताओं के लिए उनका हाथ खुला रहता था। साथ ही मित्रों के प्रति वह कभी भी कच्चे नहीं साबित हुए। घर-वालों से उन्हें बड़ा स्नेह था—जो 1924 में इच्छा बेन के मरने तक उन पर और उनके बाद पुत्र और पुत्रवधू (धीरूभाई और माधुरी बेन) पर प्रकट हुआ, जिन्होंने मरणपर्यंत उनकी सेवा की।

दोष और त्रुटियाँ निस्संदेह उनमें थीं। अपनी बौद्धिक क्षमता में उनका इतना अधिक विश्वास हो गया था कि उनमें कुछ अहंकार का आभास मिलने लगा था। अपने बारे में बढ़ा चढ़ाकर बात करने की उन्हें लत पड़ गई थी। संभवतः ऐसे विश्वास के कारण ही मित्रमंडली में वही बराबर बोलते रहते थे और इस दोषारोपण के पात्र बने कि अपनी ही बातों में वह मगन रहते हैं। इस अत्यधिक आत्मविश्वास के कारण ही, सलाह के लिए आने वाले तथा उनसे प्रशिक्षण के लिए उनके साथ काम करने वाले जूनियर वकीलों के साथ बहुत बार वह ऐसे रूखेपन से पेश आते

थे, जिसे अभद्रता ही कहा जा सकता है। यह भी अजीब बात है कि सावजनिक कार्यों के लिए उदारता से रुपया देन म उन्होंने कभी कसर नहीं की, देश के लिए काम करन वाले साथियो की खातिरदारी को खुले हाथो तयार रहत थे—देश का काम करने वालो के लिए उनके घर के द्वार सदा खुले रहे लेकिन अपने चम्बर मे काम करन वाले जूनियर वकीलो के प्रति अपन इस गुण का उन्होने शायद ही कभी परिचय दिया हो। अक्सर उन पर ईर्ष्या का दोष भी लगाया जाता था, क्या कि जूनियर वकील के अच्छा काम करने पर उसकी सराहना का एक शब्द भी कभी उनके मुह से नही निकलता था। कभी कभी अपने बराबरी क और अपने से वरिष्ठ वकीलो के बारे म वह एसी हलकी बातें कर बठत थे जिसस उन पर लोभ और ईर्ष्या का आरोप लगाया जा सकता था। इसमे सदह नही कि मौजमजे के साथ जिन्दगी बिताना उन्हे पसद था और ऐसी ही जिन्दगी उन्होन बिताई।

भूलाभाई की जिन्दगी के दोनो पक्ष हमने प्रस्तुत किए हैं। उन पर दृष्टिपात करके, मैं समझता हू, हम न्यायपूवक यह कह सकत है कि उनम गहरी मानवता थी, बुद्धि के वह धनी थे, वकील के रूप म उनकी दक्षता बजोड थी, वाकपटु और ससद कुशल थे मातभूमि के वफादार सेवक थे, तथा उसकी सेवा के लिए सदा कटिबद्ध रहते थे।

स्वतत्र भारत क निर्माण मे अनेक श्रेष्ठ और देशभक्त लोगो न अपना योगदान किया है। पर भूलाभाई का योगदान भी किसी से कम ठोस और महत्वपूर्ण नही है।